मानव संघर्ष

लेखक

श्याम दत्त, एम० ए०

यंग मैन एण्ड कम्पनी

पुस्तक प्रकाशक दिल्ली

प्रथम संस्करण १९५३ मूल्य ढ़ाई रुपया

आमुख

इस छोटी सी पुस्तक को अपने देश वासियों के समक्ष रखने का साहस करते हुए, मैं यह अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि ऐसा करने का कारण स्पष्ट करूँ। हम भारतीय अब एक स्वतन्त्र एवं आदरणीय देश के नागरिक हैं तथा हमारा परम कर्त्तव्य यह है कि हम संसार के अन्य महान् देशों के नागरिकों की समकक्षता प्राप्त करने का निरन्तर प्रयास करें। सभ्य मानव के अनेक गुणों में से एक मुख्य गुण यह है कि वह नवीन विचारों की उत्पत्ति करे। यह उचित ही है कि हम अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति पर गौरव-अनुभव करें। किन्तु यह सर्वथा अक्रियात्मक पग होगा यदि हम अपने जीवन को सर्वथा प्राचीन बनाने का प्रयास करने लगें और प्राचीन सभ्यता के पुनर्निर्माण के लिये अपनी शक्ति तथा चेष्टाएँ अर्पित कर बैठें। हमें भूत काल से बहुत कुछ सीखना है परन्तु हमें भविष्यत् ही में जीवन-यात्रा करनी है। यदि हम नवीन से भयभीत होकर प्राचीन में आश्रय खोजने लगेंगे तो निःसन्देह यह कायरता होगी और हमारे विनाश का कारण बनेगी।

अपने देश, अपनी सभ्यता एवं अपनी संस्कृति को सर्वोच्च समझना राष्ट्रीयता की आधार-शिला है। इस प्रकार की धारणा तथ्य से कितनी दूर होती है इसके विषय में कुछ भी न कहना ही उचित है। वास्तव में मुझे उन साथियों के विचारों पर कोई आपत्ति नहीं है जो भारत-भूमि के प्रेम और उसकी महानता पर गौरव करते हैं। मुझे तो केवल इस दृष्टिकोण को सामने रखना है कि यदि हम महान् हैं तो अन्य भी महान् हो सकते हैं तथा हैं। हमें दूसरों की अवहेलना से कोई लाभ नहीं है। महानता के अनेक

पार्श्व हैं और संसार में उन्नति अपनी न्यूनताओं के प्रति सचेत होने से होती है गुणों का वर्णन करने से नहीं। और फिर यह सत्य है कि हमारी न्यूनताएँ हिमालय से भी गुरुतर हैं। प्रायः यह देखने में आ रहा है कि हम अपने देश की प्रशंसा में—जो वास्तव में आत्मस्तुति के अतिरिक्त कुछ नहीं है—इतने खो जाते हैं कि प्रगतिशील संसार की वास्तविकता को न समझ कर उसकी क्षुद्रता को परम सत्य मानते हैं। इस प्रकार का आचरण केवल अपनी हीनता के अनुभव एवं विश्वास से होता है। हम अपने आलस्य, प्रमोद एवं अयोग्यता के कारण उन्नतिशील होने की सम्भावना नहीं देखते, अतएव अपने विगत और नष्ट गौरव का बढ़ा-चढ़ा वर्णन करके ही मनस्तुष्टि करते हैं।

यदि हमें तथा हमारे देश को संसार में उचित स्थान प्राप्त करना है तो हमें यह मनोवृत्ति शीघ्र ही बदलनी चाहिये। ऐसा कोई कारण नहीं है कि इस अपनी प्राचीनता के उन पचड़ों में सदा उलझे रहें जिनका आधुनिक सभ्यता में कोई स्थान हो ही नहीं सकता। हम क्यों उन निराधार वस्तुओं में विश्वास करते चले जायें जो असंख्य बार असत्य सिद्ध हो चुकी हैं। हमें अपने आप पर विजय पाकर संसार पर विजय पाना है। अतएव हमें सहस्रों वर्षों की निद्रा का परित्याग करके आधुनिक विचार-धाराओं के प्रति सजग होना है। हमें अपनी प्राचीनता को अपना दुर्गुण नहीं बनने देना है। आधुनिक विज्ञान ने यदि हमारी त्रुटियों को प्रदर्शित किया है तो कोई आश्चर्य नहीं। जो साधन इस समय मानव को प्राप्त हैं वे पहले थे ही नहीं। अतएव जो अभूतपूर्व उन्नति अब हो रही है उससे हमारे पूर्वजों की सफलताओं पर कोई आँच नहीं आती। प्राचीन काल का क्षुद्र या त्रुटिपूर्ण ज्ञान ही वर्तमान उन्नति की आधार-शिला है। ज्ञान-

विज्ञान की पूर्णता न इस युग में प्राप्त है तथा न कभी पहले प्राप्त थी। विज्ञान एवं ज्ञान का अन्वेषण उस आदर्श की प्राप्ति के लिये आन्दोलन है जहाँ मानव कभी न पहुँचा था तथा न कभी पहुँचेगा।

अतएव प्रस्तुत पुस्तिका में विश्व में मानव की वर्तमान स्थिति का परिचय दिया गया है। इस बात का निरन्तर प्रयास किया गया है कि वर्णन सीधा-सादा और मनोरंजक हो। गहन गवेषणात्मक प्रणाली को कोई स्थान नहीं दिया गया है क्योंकि लेखक का उद्देश्य कोई विश्व-कोष प्रस्तुत करना नहीं है। उसका ध्येय तो साधारण भारतीयों तथा विद्यार्थियों के लिये उनकी राष्ट्र-भाषा में संसार की आधुनिक खोज एवं प्रगति को प्रस्तुत करना है। उसकी आशा यह है कि इस प्रकार के लेखों तथा पुस्तकों द्वारा परम्परागत कूप-मंडूकता नष्ट हो जाय और वह अज्ञानान्धता सदा के लिए मिट जाय जो साधारण भारतीय के लिये नवीन विचारों को प्रस्तुत करने में सदा बाधामय होती है।

२०, डासना द्वार
गाजियाबाद

श्याम दत्त

विषयानुक्रमणिका

अध्याय १
विषय प्रवेश

हमारी यह सुन्दर पृथ्वी जो इस समय हमारा निवास स्थान है हमारे जीवन का आश्रय है। हम इस से अपना भोजन वस्त्र तथा अन्य सब आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करते हैं। हम जीवन भर पृथ्वी पर ही रहते हैं तथा अधिकतर मनुष्य अपने ही देश में—जो पृथ्वी का एक छोटा सा भाग है—अपना सारा जीवन बिता देते हैं। हम सब अपने देश से प्रेम करते हैं तथा उसकी रक्षा और स्वतन्त्रता के लिये अपने प्राण भी देने को प्रस्तुत हैं। किन्तु हमें यह भी समझना चाहिये कि हमारा—मानव जाति का—घर यह सारी पृथ्वी है तथा हम सब मनुष्य जो इस पृथ्वी पर रहते हैं भाई-भाई हैं। जब हम सब एक बार इस भ्रातृत्व को समझ लेंगे तो हमारे बहुत से कष्ट दूर हो जायेंगे।

पृथ्वी क्या है ? पृथ्वी मिट्टी, पत्थर, नमक, धातु आदि का बना एक गोला है जिसका लगभग तीन चौथाई भाग जल से ढका है। जल से ढके भाग को समुद्र कहते हैं तथा शेष को स्थल। स्थल पर बड़े बड़े महाद्वीप हैं। जल के नीचे समुद्र की तह में भी स्थल है। जल की सापेक्ष गहराई केवल ढाई मील है जबकि पृथ्वी का व्यास लगभग ८,००० मील है। अर्थात् पृथ्वी के लिये यह जलीय आवरण बड़ा पतला है। जलगोल के नीचे स्थलगोल है जो पृथ्वी के चारों ओर सैंकड़ों मील की गहराई तक है तथा पृथ्वी के भीतरी भारी चट्टानों के गोले को एक छिलके के समान ढके हुए है। परन्तु जैसा

कि अभी बतलाया गया है, यह स्थलगोल, कहीं कहीं जलगोल के बाहर निकला हुआ है तथा इन स्थानों को महाद्वीप कहते हैं। जल-गोल तथा स्थलगोल के हर ओर वायुगोल है जो पृथ्वी के चारों ओर लगभग दो सौ मील तक विस्तृत है। इस वायु-मंडल के चारों ओर आकाश या शून्य स्थान है जिसे शेष भी कह सकते हैं।

महाद्वीपों का स्थलीय भाग अपनी सुन्दरता तथा उपयोगिता के कारण पृथ्वी का सबसे अधिक आवश्यक स्थान है। ऊँचे ऊँचे बर्फ़ से ढके पहाड़, गहरी हरी भरी उपत्यकायें, कलरव करते झरने, अन्न के भरे मैदान, निर्जन मरुस्थल, गहरे सघन वन आदि प्राकृतिक दृश्य इसी भाग में मिलते हैं तथा मिल सकते हैं। विभिन्न प्रकार के पेड़, पौधे,पशु, पत्ती एवं मनुष्य इस भाग में उत्पन्न हुए हैं तथा रहते हैं। पिछली शताब्दी में एक बड़े परिमाण पर सामूहिक व्यापार आरम्भ हुआ उससे पहिले समुद्र से मनुष्य अधिक लाभ नहीं उठा सकता था। वायु में आना जाना तो इसी शताब्दी की बात है। इस समय भी मनुष्य समुद्र तथा वायु से बहुत कम आवश्यकताएं पूरी कर सकता है।

मनुष्य ने अपने उत्पन्न होने के समय से लेकर अब तक प्रकृति से जो महान् युद्ध किया है उसको पूर्णरूप से जान लेने पर हम यह समझ जाते हैं कि इस संसार में हमारी जाति संसार के अन्य जीव-धारियों से श्रेष्ठ है तथा हमने इस समय तक जो उन्नति की है वह बहुत है किन्तु अभी हमारी क्षमता बहुत है तथा हम उन्नति एक से एक ऊँचे शिखर पर पहुचेंगे तथा किसी समय यह पृथ्वी ही नहीं किन्तु इससे बाहर सुदूरवर्ती ग्रहों में हमारी पहुँच होगी। मानसिक उन्नति के बड़े बड़े महासागर हम पार कर सकेंगे तथा अपनी शक्ति को बढ़ा सकेंगे। हम अपनी पूरी क्षमता तथा शक्ति का अनुमान तब ही लगा सकेंगे जब हम प्रकृति तथा मनुष्य के बड़े युद्ध के इतिहास को

पढ़ लेंगे। हम यह भी जान लेंगे कि मनुष्य तथा अन्य पशु-पक्षियों में कितना बड़ा भेद है तथा किस प्रकार श्रेष्ठतर पशु-पक्षियों की आगामी उन्नति का द्वार बन्द है।

बात यह है कि उन्नति की इच्छा थोड़ी या बहुत प्रत्येक प्राणी में है। भेद केवल यह है कि और सब पशु-पक्षियों ने अपनी नई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये अपने शरीर के अंगों की पुष्टि की किन्तु मनुष्य ने इसी उद्देश्य के लिये अपने मस्तिष्क से काम लेने का प्रयास किया। इसी प्रकार जहाँ अन्य पशु केवल अपने शरीर को पुष्ट कर सके। मनुष्य ने अपने मस्तिष्क से आश्चर्य-जनक बातें कर दिखाईं। आज पृथ्वी के अधिकतर भाग पर मनुष्य का पूर्ण अधिकार है। यहाँ उसकी उदर-पूर्ति के लिये अन्न उत्पन्न होता है, या उसकी दूसरी आवश्यकताओं के लिये कारखाने हैं, या उसके रहने के लिये नगर गांव या मकान है, या उसके आने जाने के लिये बड़े बड़े मार्ग हैं। तात्पर्य यह है कि स्थल के अधिकतर भाग पर मनुष्य का ऐसा अधिकार है जैसा किसी का अपनी भूमि पर होता है। यहाँ अन्य जीव मनुष्य की इच्छा पर ही रहते हैं। मनुष्य ने अपने मित्र जीवों का पालन करके उनकी संख्या को सैंकड़ों गुना बढ़ा दिया तथा अनावश्यक शत्रु जीवों को जहाँ तक हो सका नष्ट कर दिया तथा कुछ को तो संसार ही से उठा दिया।

अपनी उन्नति करते हुए मनुष्य ने अपना राजनैतिक संगठन, सामाजिक गठन तथा मानसिक रूपरेखा को भी परिवर्तन कर दिया। वास्तव में मनुष्य ने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में जो उन्नति की है वह एक ही प्रगति के भाग हैं तथा एक ही महान् यात्रा के अंग हैं। इस लिये जब हम मनुष्य का एक प्रकार का विकास पढ़ते हैं तो हमारा ज्ञान अपूर्ण तथा निःसार सा रहता है। मनुष्य की उन्नति के हर अंग पर दृष्टि डाल कर ही उसके तथा प्रकृति के महान् संघर्ष का ठीक पता चल सकता है।

हम किसी भी युद्ध का अध्ययन जब ही कर सकते हैं जब हम उस रणभूमि के विषय में परिचित हो जायँ जहाँ वह युद्ध हुआ हो। इसलिये हमें पृथ्वी की रूप रेखा पर भी दृष्टि डालनी चाहिये। पृथ्वी की दशा जो इस समय है, सदा ऐसी नहीं थी। पृथ्वी में महान् परिवर्तन हुए हैं। तथा मनुष्य के प्रकृति से युद्ध के साथ भी इसका बड़ा सम्बन्ध है। अतएव हमें पृथ्वी का इतिहास भी जानना आवश्यक होता है। पृथ्वी पर इस समय जो पर्वत, नदी, झीलें, बन, पशु, पक्षी आदि हैं पहिले ये नहीं थे। इससे पहले यह संसार कुछ और ही था। यहाँ पर जीव तथा वन और प्रकार के थे। इन जीवों से भी पहले एक और ही प्रकार के जीव रहते थे तथा वनस्पति की दशा भी कुछ और ही थी। बहुत प्राचीन काल में संसार में न जीव थे न पेड़-पौधे। धरती के स्थान पर उबड़-खाबड़ पर्वत खड़े थे, जिन पर समुद्री वायु से मूसलाधार तूफानी वर्षा हुआ करती थी। इस से भी पहिले पृथ्वी एक जलती अग्नि का गोला थी तथा यहाँ पर भयंकर अग्नि की लपटें और धुएं के अनवरत स्तम्भ उठते रहते थे। किस प्रकार पृथ्वी के नाटक में एक के बाद एक दृश्य उठता चला गया यह बड़ी ही रोचक कहानी है।

केवल यही बात नहीं है कि पर्वत, पृथ्वी, नदी तथा जीव, पेड़-पौधे ही परिवर्तन होते रहे हों। मनुष्य का जो रूप इस समय है वह किस समय बड़ा भिन्न रहा है। मनुष्य के शरीर में बड़े२ परिवर्तन हुए हैं। आरम्भ में मनुष्य तथा बन्दर में थोड़ा भेद रहा होगा। फिर बन्दर से भिन्न किन्तु बन्दरों से बहुत कुछ मिलते जुलते मनुष्य हुए जिनके रूप में धीरे धीरे परिवर्तन होने से आज के जैसा मनुष्य उत्पन्न हुआ। और हमें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि परिवर्तन समाप्त नहीं हुए हैं किन्तु हो रहे हैं। आज से एक लाख वर्ष पश्चात् का मनुष्य हम से अवश्य भिन्न होगा। उसके शरीर, मन, तथा बुद्धि में बड़े परिवर्तन हो जायँगे, इसमें कोई सन्देह ही नहीं है।

प्रकृति एक सबल शक्ति है। प्रत्येक जीव, वृक्ष तथा पौधे के लिये जीवन भर यह प्रश्न सामने रहता है कि प्रकृति से किस प्रकार अपनी आवश्यक वस्तुएं प्राप्त करें। यदि वह प्रकृति से युद्ध में विजय प्राप्त कर लेता है तो वह जीवित रहता है अन्यथा उसकी मृत्यु आवश्यक है। इस समय जितने प्रकार के जीव तथा वृक्ष उपस्थित हैं उन्हें हमें एक प्रकार से विजयी ही समझना चाहिये क्योंकि करोड़ों वर्ष के युद्ध के पश्चात् भी वे आज जीवित हैं। इन जीव तथा वृक्षों का जीवन भविष्य में रहेगा या नहीं यह बहुत कुछ उनके तथा उनके साथ के अन्य जीवों एवं वृक्षों के परिवर्तन पर निर्भर होगा। यदि आने वाली परिस्थितियों में कोई जीव अपने आप को अनुकूल बना सकेगा तो वह रह जायगा किन्तु यदि वह इस सदा चलने वाली लड़ाई में थक बैठा या पराजित हो गया तो वह शीघ्र ही संसार छोड़ देगा तथा केवल किसी कौतुक गृह में उसका अवशेष शेष रह जायगा।

यही बात भविष्य के मनुष्य पर भी ठीक लगती है। अन्य जीवों की भाँति मानव-जाति के जीवन-मरण का प्रश्न भी भविष्य की परिस्थिति तथा हमारी क्षमता पर निर्भर होगा। यदि मानव-जाति अपने पिछले गौरव पूर्ण इतिहास को पढ़े तथा उससे शिक्षा ले तो भय की कोई बात नहीं। आगे आने वाली कठिनाइयाँ हम में ऐसी योग्यता उत्पन्न करेंगी कि हम कमर कस कर डटे रहेंगे तथा अपनी इतनी प्राचीन सभ्यता को किसी दुष्ट जीव या जीवों से परास्त होकर केवल कहने सुनने की कहानी न बनने देंगे।

★

अध्याय २

पृथ्वी का जन्म

हमारी पृथ्वी जगत् या ब्रह्मांड का एक बहुत छोटा सा अंग है। रात्रि को जो अनन्त तारागण हमें दिखाई पड़ते हैं तथा दिन में ज्वलन्त सूर्य और अनन्त आकाश जिसका अन्त हम नहीं देख पाते जगत् या ब्रह्मांड कहलाता है। अभी तक हमें यह ज्ञात नहीं है कि यह जगत् कैसे बना, अथवा सदा से स्थित है। हो सकता है कि यह जगत् परिवर्तन रहा हो तथा सदा से ही इसका अस्तित्व हो। इसमें संदेह नहीं कि जगत् सदा एक सा नहीं है। तथा इसमें अनेकों परिवर्तन होते रहे हैं तथा हो रहे हैं। उन्हीं परिवर्तनों में से एक छोटा सा परिवर्तन यह हुआ कि एक समय असंख्य वर्षों पहले हमारी पृथ्वी की उत्पत्ति हुई थी। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है पृथ्वी की उत्पत्ति एक बहुत बड़ी घटना है किन्तु यह जगत् इतना बड़ा है कि इसके लिए यह एक साधारण सी घटना है। ऐसी अनेकानेक घटनाएं नित्य होती रहती हैं। तथा यदि देखा जाय तो पृथ्वी की उत्पत्ति भी एक अकस्मात् हुई घटना थी। कोई नियमित घटना या किसी के द्वारा किया हुआ कार्य नहीं था।

पृथ्वी कैसे बनी ? इसको समझने के लिये हमें जगत् का कुछ ज्ञान होना आवश्यक है। रात्रि को हम जितने तारे आकाश में देखते हैं वे लगभग सभी हमारे सूर्य की भाँति गर्म तथा प्रकाशित हैं। वे

इतनी दूर हैं कि उनका प्रकाश क्षीण होकर हम तक पहुँच रहा है। उनकी दूरी का कुछ अनुमान हम प्रकाश की गति से समझ सकते हैं। प्रकाश एक सेकिण्ड में १,८६,००० मील जाता है फिर भी सूर्य इतनी दूर है कि उसका प्रकाश हमारी पृथ्वी तक आठ मिनट में पहुँचता है। आपने ध्रुव तारा देखा होगा यह तारा भी एक बड़ा सूर्य है तथा हमारे सूर्य से बहुत बड़ा है। किन्तु यह इतनी दूर है कि प्रकाश पृथ्वी तक तीन सौ वर्ष से भी अधिक समय में पहुँचता है। अर्थात् जो प्रकाश की किरण आज ध्रुव तारे से चली है वह तीन सौ वर्ष पश्चात् यहाँ तक पहुंचेगी अथवा यदि आज ध्रुव तारा प्रकाशरहित हो जाय तो तीन सौ वर्ष तक हमें यह विदित न होगा कि ध्रुव तारा प्रकाशित नहीं है क्योंकि जो प्रकाश वहाँ से चल चुका है वह अगले तीन सौ वर्षों तक हमें ध्रुव तारे का प्रदर्शन कराता रहेगा। आकाश में अनेक सूर्य ध्रुव तारे से भी अधिक दूर हैं। ऐसे अनेक सूर्य हो सकते हैं जिन्हें हम बड़ी बड़ी दूरबीनों से नहीं देख सकते क्योंकि वे बड़ी दूर हैं तथा इन सूर्यों से भी आगे की ओर कदाचित् और सूर्य विद्यमान हैं। अतएव आकाश को अनन्त कहते हैं। हम दूरबीन से तो क्या अपने मन से भी इसका अन्त नहीं पा सकते।

यों तो हम तारों की संख्या को अनन्त कहते हैं किन्तु रात्रि में अधिक से अधिक आकाश में केवल २,००० तारे अनावृत आँख से दिखाई पड़ सकते हैं। यदि हम किसी दूरबीन से आकाश को देखेंगे तो करोड़ों तारे देख लेंगे। सबसे बड़ी दूरबीन से जिसका व्यास दो सौ इन्च है अर्व से भी अधिक तारे देखे जा सकते हैं। वैज्ञानिकों का विचार है कि तारों की संख्या इससे भी बढ़ी चढ़ी है। किन्तु यह न समझना चाहिए कि आकाश तारों से भरा पड़ा है। वास्तव में आकाश इतना बड़ा है तथा तारे इतने न्यून हैं कि आकाश की शून्यता की कल्पना करना भी कठिन है। यदि हमारे बड़े देश भारतवर्ष में केवल

दो भुनगे रहें तो यह देश कितना निर्जन दिखाई देगा। अर्थात् हम यह कल्पना करें कि जहाँ तक भारतवर्ष विस्तृत हैं वहाँ न पशु हों न पेड़ न पर्वत न पृथ्वी न नदी आदि। केवल दो भुनगे हों। कैसा शून्य स्थान होगा? आकाश इससे भी अधिक शून्य है। तारे दूर दूर हैं तथा थोड़े से हैं। अधिकतर आकाश रिक्त पड़ा है।

यह बात नहीं है कि आकाश में तारा गणों का अन्वेषण वर्तमान काल में प्रारंभ हुआ है। आज से सहस्रों वर्ष पहले संसार की सभ्य जातियाँ आकाशीय पिंडों को देख कर उनकी गति-विधि जान गई थी भारतवर्ष में प्राचीन द्राविड़ जाति ने भी आकाश का अन्वेषण किया। आर्य जाति ने तो आकाशीय सूर्यों का बड़ा अन्वेषण किया। भारतीय आर्यों ने आकाश में केवल नेत्रों से दीखने वाले तारों की गति का पता लगाया तथा उन्हें नक्षत्रों में विभाजित किया। उन्होंने पृथ्वी के समकक्ष दूसरे ग्रहों का भी पता लगाया। यह ग्रह पृथ्वी के समान शीतल हैं सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। उन्होंने इनकी गति का भी पता लगाया आर्यों की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद में भी ज्योतिष सम्बन्धी अनेक बातों का उल्लेख है। आर्यों की दूसरी शाखा यूनानियों ने भी ज्योतिष में बड़ी उन्नति की।

आधुनिक समय में नये यंत्रों से आकाश के बहुत से भेदों को खोल दिया गया है। आकाश के तारों में सबसे दूर तारा ३,००,००,००,००,००,००,००,००० मील है तथा सूर्य को छोड़कर सब से निकट तारा २,००,००,००,००,००,००० मील है। सूर्य पृथ्वी से ९,२०,००,००० मील पर है। अनेकों सूर्य जो आकाश में घूम रहे हैं संख्या में ४००,००,००,००० से भी अधिक हैं। आकाश अधिकतर रिक्त पड़ा है तथा अनन्त समय से ये तारे आकाश में भ्रमण करते रहे हैं। यह अत्यन्त कठिन है कि कोई तारा दूसरे तारे के समीप आ जाये क्योंकि उन्हें घूमने के लिये पर्याप्त स्थान है। यह सूर्य पिंड बहुत ही छोटे छोटे

अणुओं के बने हैं जो आपस के घर्षण से जल रहे हैं। वास्तव में संसार में जो कुछ भी दिखलाई पड़ता है इन्हीं अणुओं के इकट्ठे होने से बना है। ये अणु आकाश में कहाँ से आगये यह प्रश्न हम अभी तक समाधान नहीं कर सके हैं।

इन अणुओं को पदार्थ कह सकते हैं। आगे इसी पुस्तक में इन अणुओं के विषय में आप और भी अधिक जानकारी प्राप्त करेंगे। यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता कि अणु तथा उनसे प्रकट होने वाला पदार्थ कैसे बना। हम ठीक ठीक यह भी नहीं कह सकते कि यह पदार्थ क्या है तथा इसके गुण तथा लक्षण क्या हैं। हम यह जानते हैं कि पदार्थ को हम छू सकते हैं। इसमें भार होता है। यह स्थान घेरता है। पदार्थ के तीन रूप होते हैं—ठोस द्रव, तथा गैस। एक ही प्रकार का पदार्थ परिस्थिति में पड़ कर इन तीन अवस्थाओं में बदल सकता है। जैसे जल द्रव है किन्तु ठोस हो कर हिम तथा अधिक ताप पाकर भाप या गैस हो जाता है। तारों में जो पदार्थ है उसका अधिकाँश गैस या द्रव ही होगा। ये तारे अग्नि पुंज हैं, इनमें गर्मी इतनी अधिक है कि किसी वस्तु का ठोस अवस्था में रहना असंभव है।

वैज्ञानिकों ने अणुओं की उत्पत्ति के विषय में बड़ी खोज की है। सर ओलिवर लाज नामक वैज्ञानिक का विचार है कि जिन बिजली के कणों से ये अणु बने हैं ये कदाचित् आकाश के ही बने हुए हैं। तथा एक दूसरे से मिल गये हों। इस प्रकार धीरे धीरे अणु बन गये हों। कई वैज्ञानिकों का विचार है कि अणु कदाचित् सदा से ही स्थित हैं तथा यह और बात है कि किसी अणु को तोड़ने से बिजली के कण निकल आवें। मिलिकन नाम का वैज्ञानिक कहता है कि ये अणु किसी शक्ति से निर्मित हो जाते हैं तथा इस प्रकार शक्ति तथा पदार्थ एक ही वस्तु है। किन्तु अभी तक ये सब विचार मात्र हैं। नवीन यंत्रों से अन्वेषण कर के

कदाचित् यह संभव हो जाये कि पदार्थ इस जगत् में कहाँ से आया है इसका पूरा पता लग जाय। इस समय तो विज्ञान से हम केवल इस पदार्थ के लक्षणों का निरूपण कर सकते हैं:—

(१) पदार्थ स्वयं तो निर्जीव है अर्थात् उसमें चलने की स्वयं शक्ति नहीं है। इस लिये यदि पदार्थ स्थिर है तो स्वयं नहीं चल सकता और यदि चल रहा है तो अपनी गति को स्वयं नहीं रोक सकता। सूर्य के चारों ओर जो ग्रह भ्रमण कर रहे हैं वे लाखों वर्ष से चल रहे हैं, रुके नहीं। कोई भी मेज़ कुर्सी स्वयं नहीं चल सकती।

(२) पदार्थ किसी बाहरी शक्ति ही से चल सकता है और यदि पदार्थ में कोई गति है तो उसे रोकने के लिये भी बाह्य शक्ति ही चाहिये।

(३) शक्ति सदा पदार्थ ही में प्रकट होती है तथा इसके परिवर्तनों में प्रायः शक्ति की उत्पत्ति होती है।

(४) पदार्थ का प्रत्येक अणु एक दूसरे को खींचता है। पदार्थ के अतिरिक्त दूसरे तत्व जो इस जगत् में स्थित हैं वे हैं—शक्ति, आकाश तथा समय।

शक्ति के विषय में कई वैज्ञानकों की धारणा है कि यह पदार्थ से भिन्न नहीं है। इस बात को कोई भी पूर्ण रूप से प्रमाणित नहीं कर सका है कुछ पदार्थ की गति जो इस जगत् में देखी जाती है वह शक्ति के कारण ही है। पदार्थ कभी नष्ट नहीं होता। आप एक घड़े को फोड़ डालें तो वह नष्ट नहीं होता किन्तु ठीकरों के रूप में विद्यमान रहता है। यदि इन ठोकरों को भी पीस डालें तो घड़ा मिट्टी के रूप में रहता है। सारांश यह है कि हम पदार्थ को मिटा नहीं सकते। पदार्थ की भाँति शक्ति भी कभी नष्ट नहीं होती। किसी इंजन या तेल में वाष्प की जितनी शक्ति लगेगी उतनी ही शक्ति की विद्युत् वह इंजन बना

सकेगा। इस जगत् में जितनी शक्ति विद्यमान है उतनी ही रहती हैं। न्यून या अधिक नहीं हो सकती। पदार्थ तथा शक्ति कभी नष्ट नहीं होते। इस अटूट सिद्धान्त के अनुसार बहुत से लोग यह मानते हैं कि जब पदार्थ तथा शक्ति जो इस जगत् के मूल तत्व हैं कभी नष्ट नहीं होते तो जगत् भी अनादि ही होना चाहिये। इसका प्रारम्भ मानना युक्ति संगत नहीं है।

अभी कहा जा चुका है कि आकाश अनन्त तथा बड़ा रिक्त स्थान है। कई वैज्ञानिक तो आकाश तथा समय को एक ही मानते हैं। इनमें जर्मनी का प्रसिद्ध गणितज्ञ ऐन्स्टाइन प्रमुख है। यह स्पष्ट ही है कि ऐसा सिद्धान्त बड़ा ही जटिल होगा क्यों कि आकाश तथा समय साधारणत: दो अलग-अलग वस्तुएं हैं।

न्यूटन ने सृष्टि के तारा गणों की आश्चर्य-जनक गति को अध्ययन करके समझाया। उसने पदार्थ तथा शक्ति के जो नियम अन्वेषण करके पता लगाये वे अब तक भी ठीक माने जा सकते हैं। इन नियमों के आधार का पता बहुत सीमा तक भारतीय तथा अरब के ज्योतिषियों को भी था किन्तु न्यूटन ने पूर्ण रूप से अन्वेषण किया की तथा इन आधार-भूत नियमों को स्थिर किया। आज कल ये नियम जहाँ तक इनकी पहुँच है सभी वैज्ञानिकों को मान्य हैं किन्तु वैज्ञानिक गहरे अन्वेषण द्वारा इन नियमों से गहन पदार्थविद्या का अध्ययन करके ब्रह्माँड के आधार-भूत सिद्धान्तों का अन्वेषण कर रहे हैं।

इस प्रकार इस अनन्त आकाश में विद्युत् के कणों से जब अणुओं की सृष्टि हुई तो उनमें परस्पर आकर्षण आरंभ हुआ तथा ये परमाणु एकत्रित होने आरंभ हुए। ज्यों ज्यों ये परमाणु समीप आये इनमें आकर्षण बढ़ा तथा इनकी गति बढ़ती गई। समीप आने पर ये परमाणु एक दूसरे से टकराने तथा संघर्ष करने लगे इनमें ताप उत्पन्न हुआ तथा यह परमाणु-पुंज अग्नि-पुंज होगया। इस परमाणु

पुंज में परमाणु समीप रहने से दब गये तथा दबने से और भी अधिक प्रकाशमान हो उठे। वायु की इस ज्वलंत राशि में भँवर उत्पन्न हो गये जो भयंकर गति से संचालित थे तथा जिनकी गति बढ़ती ही जारही थी। ऐसी अवस्था में इस अग्नि पुंज से पदार्थ के अनेक छींटे निकले जो अनन्त आकाश में चारों ओर फैल गये। ये तारे भौतिक तथा रसायनिक नियमों के अनुकूल परिवर्तित होते रहे तथा अनियमित रूप से आकाश में भ्रमण करते रहे। यदि भ्रमण करते २ इनमें से कोई तारा किसी दूसरे तारे के समीप आजाता था तो दोनों में आकर्षण के कारण बड़ी उथल-पुथल मच जाती थी तथा इस उथल-पुथल में इनमें से पदार्थ के प्रज्वलित गोले टूट पड़ते थे जो छोटे होने के कारण अपने जन्म दाता बड़े तारे से दूर न जा सकते थे तथा उसी के चारों ओर परिक्रमा करते रहते थे। छोटे होने के कारण ये क्षुद्र पिंड शीघ्र शीतल हो जाते थे। हमारी पृथ्वी भी इसी प्रकार खण्ड हुआ एक ग्रह है।

इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि इन बड़े बड़े तारों से टूट कर छोटे ग्रह बनना एक आकस्मिक घटना है। यह संभव है कि इन सूर्यों में अनेक ऐसे हों जिनको किसी दूसरे सूर्य से संघर्ष न हुआ हो तथा ग्रहों की उत्पत्ति ही न हुई हो। इन जलते सूर्यों से जिनमें से कोई ग्रह नहीं टूटा केवल शून्य आकाश में प्रकाश फैलता रहता है। हो सकता है कि भविष्य में फिर कभी कोई तारा इनके समीप पहुँच जाय तथा इनसे ग्रहों की सृष्टि हो जाय।

हम यथार्थ रूप में नहीं कह सकते कि कौन सा तारा किस समय हमारे सूर्य के समीप पहुँचा तथा उसके आकर्षण से जो संघर्ष हुआ उससे सूर्य में से कुछ खण्ड टूट कर अलग हो गये। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि एक तारे ने समीप आकर सूर्य अव्यवस्थित संघर्ष किया। अनुमान से यह तारा अबसे लगभग दो अरब वर्ष पहिले से लेकर दस अरब पहिले के काल व्यवधान में किसी समय सूर्य के समीप से निकला। इन दो परमाणु पुंजों के समीप होने पर दोनों

१
सूर्य के समीप दूसरे तारे का आगमन
२
३ लम्बे टुकड़े का निकलना
सूर्य
४ टुकड़े के खंडों का
ठंडा होना
बुद्ध
शुक्र
पृथ्वी
मंगल
क्षुद्र ग्रह
बृहस्पति
शनि
यूरेनस
नेपचूँ
प्लूटो
५
ग्रहों की प्राथमिक दशा
ग्रह
६
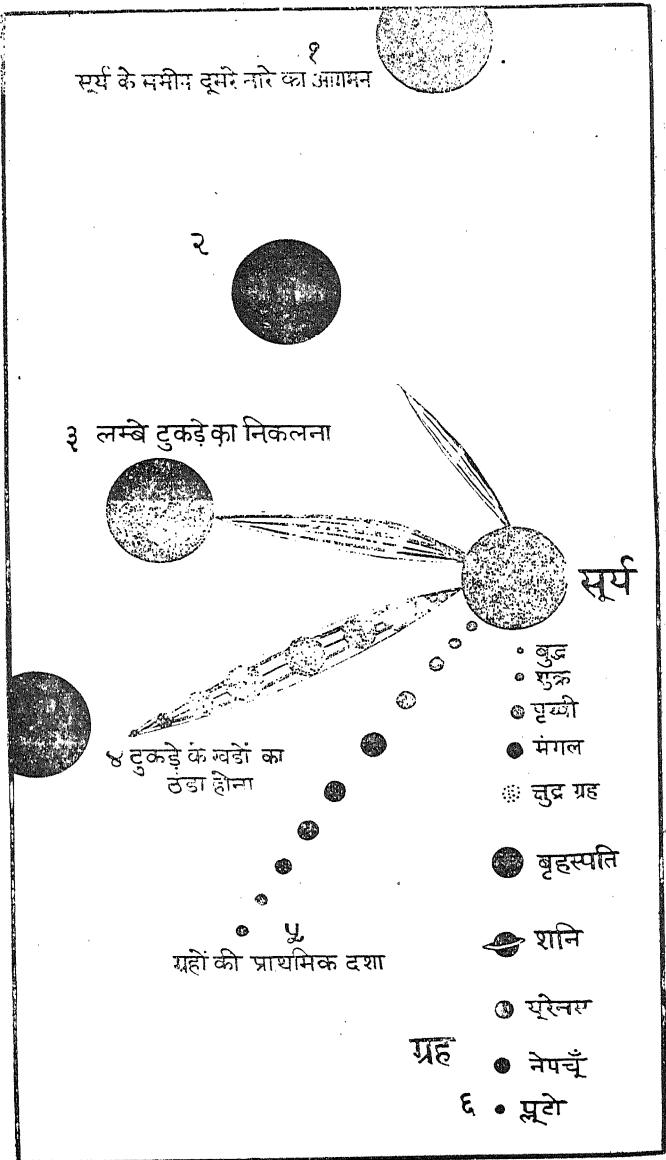
ही में गहरी उथल-पुथल मच गई। एक दूसरे के आकर्षण से इनके ज्वलंत पदार्थ में एक भयंकर दुर्घटना उठी जो बढ़ती ही गई। जैसे जैसे यह दूसरा तारा सूर्य के समीप चलता आया। सूर्य में मानो भयंकर ज्वर पैदा हुआ तथा इसी उथल-पुथल में सूर्य के गोले में से कई खण्ड टूट पड़े तथा आकाश में फैल गये। ये गोले मध्यस्थित ज्वलंत सू ्से अलग न जासके तथा उसके आकर्षण से लट्टू की भाँति उसके चारों ओर घूमने लगे।

हमारी पृथ्वी सूर्य से अलग होने पर बड़े वेग से अपनी धुरी पर घूमती हुई सूर्य की परिक्रमा करती रही। यह गति बड़ी भयंकर थी। इस समय पृथ्वी नाशपाती की सी आकृति की रही होगी। किन्तु तीव्र गति के कारण नाशपाती की गर्दन सिकुड़ती ही चली गई तथा एक बड़ा भूखण्ड अलग हो गया। यही टुकड़ा चन्द्रमा है जो पृथ्वी के आकर्षण के कारण पृथ्वी के चारों ओर भ्रमण कर रहा है।

इस प्रकार हमारी पृथ्वी का प्रादुर्भाव हुआ तथा एक नवीन तत्व की जिसे जीवन-तत्व कहते हैं नींव पड़ी। हम यह नहीं कर सकते कि इस महान् जगत् में कई और ग्रह भी ऐसे हैं जहाँ ताप तथा जल के संयोग से जीवों व वनस्पति की उत्पत्ति हुई है। पृथ्वी का निर्माण एक आकस्मिक घटना है, हो सकता था कि पृथ्वी उत्पन्न ही न होती। इस प्रकार से जीवों की उत्पत्ति भी एक आकस्मिक घटना ही हुई। अभी तक वैज्ञानिकों को इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिला है कि इस महान् ब्रह्मांड में कहीं और भी सृष्टि है या हो सकती है। अतएव मनुष्य की सभ्यता को प्रकृति की एक भूल ही कह दिय जाये तो अनुचित नहीं। इंगलैंड के प्रसिद्ध ज्योतिषी सरजेम्स जीन्स ने तो यहाँ तक कहा कि ब्रह्माँड में पृथ्वी को छोड़ कर कहीं भी सृष्टि नहीं है।

★

विश्व पर आधुनिक दृष्टि

हमारा ध्यान केवल दो प्रकार की बाह्य वस्तुओं पर रुकता है। हम अपने नीचे भूमि को देखते हैं। उस पर बहने वाली नदियों, खड़े पर्वतों, गृहों, पशु-पत्ती तथा मनुष्यों को देखते हैं। हम अपने ऊपर आकाश देखते हैं जिसमें दिन में सूर्य चमकता है, रात्रि को तारा गण तथा चन्द्रमा दिखाई पड़ता है तथा कभी इस आकाश में बादल तूफ़ान आदि के आश्चर्यजनक दृश्य आते हैं। साधारण रूप से लोग पृथ्वी तथा आकाश को इस जगत के दो खंड मानते हैं परन्तु इससे बड़ी त्रुटि और कोई नहीं। आकाश एक अनन्त शून्य स्थान है तथा पृथ्वी उसमें एक बहुत छोटा सा गोला। आकाश में पृथ्वी से बहुत बड़े बड़े लाखों करोड़ों गुना बड़े--बहुत से सूर्य ग्रह इत्यादि हैं फिर भी आकाश इतना बड़ा है कि अधिकतर बुरी तरह शून्य पड़ा है। अतएव भूमि तथा आकाश को समान समझना ठीक नहीं।

यह विश्व जो चारों ओर हमें दीख रहा है सदा मनुष्य के मन को खींचता रहा है। अत्यन्त प्राचीन काल में संसार की कितनी ही जातियों ने इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया तथा जो कुछ भी दीख रहा था उसका खूब अध्ययन कर डाला।

जैसा आप पढ़ चुके हैं इस महान् विश्व में अनेक तारा गण हैं जिन में से कुछ हमें केवल आँख से भी रात्रि को दीखते हैं। दूरबीन से इन दीखने वाले तारों की संख्या बहुत बढ़ जाती है। इसके अति-

रिक्त और भी नवीन वस्तुएं दीख पड़ती हैं। विश्व की आश्चर्यमयी वस्तुओं को देखकर वैज्ञानिक भी चकित रह जाते हैं।

विश्व कितना बड़ा है?—वैज्ञानिकों ने विश्व को उसके कोणों तक देखने का प्रयास किया है। विश्व को नापने के लिये मील बहुत छोटा पैमाना है। यदि हम मीलों में विश्व की कुछ दूरियाँ लिखना चाहें तो व्यर्थ की माथा पच्ची में पड़ जायें तथा कुछ भी न समझ सकें। जैसा हम लिख चुके हैं सूर्य पृथ्वी से ९,२०,००,००० मील दूर है। किन्तु पृथ्वी के समान और भी कितने ही ग्रह सूर्य का भ्रमण करते हैं। इन में एक ग्रह प्लेटो सूर्य से ३,००,००,००,००,००० मील पर है। यदि सूर्य को छोड़ कर हम सबसे समीप दूसरे या तारे की दूरी मीलों में लिखें तो लगभग २,४०,००००,००,००,००० । इस तारे का प्रकाश हम तक पहुंचने में लगभग ४ वर्ष लगते हैं जबकि प्रकाश एक सैकिण्ड में १,८६,००० मील चला जाता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि यह तारा चार प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है। कितने ही तारे पृथ्वी से महा प्रकाश वर्षों की दूरी पर हैं। वैज्ञानिक अभी विश्व में १९ करोड़ प्रकाश वर्ष की दूरी तक को खोज कर सके हैं।

हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि विश्व अधिक से अधिक कितना बड़ा होगा। विश्व में जितने सूर्य ग्रह आदि हैं उनका विस्तार १० अरब लाख सूर्यों के तुल्य है। विश्व का व्यास इस समय दस अरब प्रकाश वर्ष है किन्तु अगले तेरह करोड़ वर्षों में यह व्यास दुगना हो जायगा तथा इसी गणना से विश्व का आकाश बढ़ता ही चला जायेगा।

वैज्ञानिक इस बिषय में विशेष अन्वेषण कर रहे हैं कि अन्त में यह बढ़ता हुआ विश्व आगे चलकर नवीन बन जायेगा। एडिंग्टन कहता है कि विश्व एक महान् बुलबले के समान फट जायेगा तथा हो सकता है कि इसके भीतर रहने वाले लघु विश्व स्वतंत्र विश्व हो जायँ। जहाँ

तक मनुष्य का प्रश्न है वह इस सब के होने से कहीं पहले नष्ट हो जायेगा तथा उसका कोई चिन्ह भी रहना असंभव है। अतएव विश्व सम्बन्धी ये प्रश्न हमसे सीधे सम्बन्ध नहीं रखते, केवल वैज्ञानिक विषय हैं।

विश्व में क्या क्या है? जैसा कि आप पढ़ चुके हैं कि वैज्ञानिक ने विश्व में असंख्य तारे देखे हैं तथा वे अपने यंत्रों में और भी उन्नति करके बहुत से अन्य तारों के देखने की आशा रखते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आकाश में जो दिखाई दे रहा है उनमें से अधिकतर तारे ही हैं। किन्तु उनमें बहुत से तारे जो देखने में तारे ही प्रतीत होते हैं दूरबीन से देखने में कुछ और ही दिखाई पड़ते हैं। इनमें से कितने ही तारे दूरबीन से देखने पर एक तारों का समूह प्रतीत होते हैं। इन्हें नीहारिका कहते हैं। ये नीहारिकाएँ वास्तव में लघु-विश्व या द्वीप-विश्व हैं। ये ऐसे समूह हैं कि इनमें अनेक सूर्य हैं जो स्वयं तो एक दूसरे के पास हैं किन्तु अन्य तारक-पुंजों से दूर हैं। वैज्ञानिकों ने आकाश में ऐसे अनेक लघु-विश्वों का पता लगाया है। यद्यपि जिन नीहारिकाओं को हमने देखा है उनकी संख्या सौ से भी कम है किन्तु दूरबीन द्वारा २० लाख नीहारिकाओं के अस्तित्व का अनुमान किया जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि ये सब नीहारिकाएँ विश्व के केन्द्र में से दूर हटती जा रही हैं। तथा इस प्रकार विश्व का विस्तार बढ़ता ही जा रहा है।

स्थानीय विश्वः—आपने रात्रि में प्रकाश में श्वेत पगडंडी सी देखी होगी। इसे आकाश-गंगा कहते हैं। आकाश-गंगा भी एक नीहारिका है। इसी में हमारा सूर्य तथा सूर्य मण्डल भी है। आकाश गंगा में हमारे सूर्य जैसे दो खर्ब तारे हैं। संभव है कि इन तारों के समीप भी सौर मंडल हों। तथा किसी ग्रह में पृथ्वी की भाँति जीवधारी भी उत्पन्न हो गए हों।

आकाश-गंगा कितनी बड़ी है इसका अनुमान हम किसी सीमा तक लगा सकते हैं। सूर्य से पृथ्वी तक प्रकाश आठ मिनट में पहुँचता है अर्थात् सूर्य पृथ्वी से आठ प्रकाश मिनट की दूरी पर है। आकाश गंगा एक अंडाकार नीहारिका है। इसका व्यास २ लाख प्रकाश वर्ष है और इसकी मुटाई ६० हजार प्रकाश वर्ष। फिर भी हमें यह नहीं समझना चाहिये कि आकाश-गंगा सबसे बड़ी नीहारिका है। विश्व में आकाश गंगा से भी बड़ी-बड़ी नीहारिकाएँ स्थित हैं। आकाश गंगा को हम एक मध्यम परिमाण की नीहारिका कह सकते हैं।

आकाश-गंगा के भीतर जो तारा पुंज हैं उनकी मात्रा विस्तार भी बहुत अधिक है। हमारा सूर्य पृथ्वी से लगभग चौदह लाख गुना बड़ा है। अर्थात् सूर्य में से चौदह लाख ऐसे पिंड बनाये जा सकते हैं जो पृथ्वी के तुल्य होंगे। आकाश गंगा के सूर्यों की मात्रा एक अरब सूर्यों से अधिक है। पृथ्वी आकाश-गंगा की तुलना में एक रजकण के समान है।

आकाश-गंगा अपनी छोटी धुरी पर निरन्तर भ्रमण कर रही है। यद्यपि अन्य नीहारिकाओं के समान यह भी अत्यन्त तीव्रता से भ्रमण कर रही है। फिर भी यह अपनी एक परिक्रमा तीस करोड़ वर्षों में पूर्ण कर पाती है। जब से हमारी पृथ्वी का जन्म हुआ है तब से केवल छः वृत्त पूरे हो सके हैं।

हमारा सौर-मण्डल भी आकाश गंगा का एक छोटा सा सदस्य है। ऐसे करोड़ों मण्डल आकाश-गंगा में प्रस्तुत हैं।

नक्षत्र जगत्ः—आपने पिछले पाठ में अनेक तारागणों का वर्णन पढ़ा है। भारतीय आर्य तथा अन्य प्राचीन जातियों ने आँख से दिखाई देने वाले तारों को देख कर उनको कई विभागों में विभक्त किया। भारतीय ज्योतिषियों ने आकाश के विभाग करने में २७ नक्षत्रों का उपयोग किया है। उन्होंने इसके अतिरिक्त अन्य नक्षत्रों का भी उल्लेख

किया है। संभव है कि भारतीय आर्यों से पहिले इस देश के सभ्य द्रविड़ों ने भी आकाश के दृष्टिगोचर तारों की गणना की है। क्योंकि भारतीय आर्यों से प्रथम मेसीपोटामिया देश के प्राचीन ज्योतिष का पता लगा है।

यूरोप में तारों की सूची बनाने का प्रयास सबसे पहिले तालमी ने किया तथा उसने १०२५ तारों का उल्लेख किया। यह प्रयास १३७ ई० में किया गया था। इसके पश्चात् अन्य ज्योतिषियों ने भी तारों की सूची बनाई, भारतवर्ष में सत्ताईस या अट्ठाईस नक्षत्रों के अतिरिक्त अन्य कितने ही नक्षत्रों का पता ज्योतिष ने लगाया। पुरानी सूचियों में तारा गणों की संख्या लगभग एक सहस्र के ही पायी जाती है। इसका कारण यह है कि केवल आँख से अधिक तारागण दिखलाई नहीं पड़ते।

दूरबीन के अविष्कार के पश्चात् तारागणों की सँख्या लाखों तक पहुंची। साधारण दूरबीन से पचास सहस्र तारे दीख पड़ते हैं अर्थात् पुरानी सूचि से पचास गुणा। इटली के वैज्ञानिक गेलीलिओ ने साधारण दूरबीन का अविष्कार किया तथा एक नक्षत्र में जिसमें छः तारे दिखलाई पड़ रहे थे छत्तीस तारे देखे। अर्जलेण्ड ने ढाई इन्ची दूरबीन से तीन लाख तारों का निरीक्षण किया। इस प्रकार गणना करना आंख तथा दूरबीन से कठिन होता है। इस गणना में फोटो ग्राफी से बड़ी सहायता मिली है। सौ इन्च वाली बड़ी दूरबीन से डेढ़ अरब तारों का चित्र लिया जा सकता है। नई तैयार होने वाली दो सौ इन्च वाली दूरबीन से विश्व के अनेकों भेद खुल जायेंगे। तथा कितने ही अबं तारों का चित्र लेना संभव होगा।

दूरी नापना—यह प्रश्न आपके मन में उठता होगा कि हम यह कैसे जान लेते हैं कि अमुक तारा इतनी दूर है। दूरबीन दूरी नापने में काम नहीं देती क्योंकि अधिकतर तारे इतनी दूर हैं कि दूरबीन से

भी कुछ विशेष बड़े दृष्टिगोचर नहीं होते गणित के सिद्धान्त इस काम में अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं होते।

तारों की तथा नीहारिकाओं की दूरी नापने के लिए जिस यंत्र का प्रयोग किया जाता है उसे रश्मि-वर्ण-दर्शक (Spectroscope) कहते हैं। इस यंत्र में दूरबीन द्वारा तारे से आने वाले प्रकाश को एक त्रिकोण शीशे के भीतर से फेंकते हैं तथा एक दर्पण द्वारा इस प्रकाश किरण को तोड़ कर विभिन्न रंगों की समानान्तर प्रकाश किरणों में परिवर्तित करते हैं। इस प्रकार विछिन्न किरण को आंख या फोटोग्राफी से देखने पर तारों की दूरी उनकी दशा आदि का बहुत कुछ पता लगता है।

सूर्य तथा सौर-मंडल के ग्रहों की दूरी नापने के लिये पृथ्वी के व्यास को आधार मान लेते हैं। पृथ्वी २४ घंटे में अपनी धुरी पर भ्रमण करती है। यदि हम किसी ग्रह का वह कोण जो वह पृथ्वी के साथ बनाता है नापें तथा १२ घंटे बाद फिर उसका कोण नापें तो पृथ्वी के व्यास को आधार मान कर उसकी दूरी जान सकते हैं।

किन्तु यह परिपाटी पृथ्वी के पास वाले ग्रहों की दूरी नापने ही के काम में लाई जा सकती है। तारे इतनी दूर तथा इतने बड़े हैं कि पृथ्वी का व्यास जो केवल ८,००० मील है उनकी तुलना में कुछ भी नहीं। अतएव उनकी दूरी नापने के लिए पृथ्वी के उस बड़े मार्ग के व्यास को आधार मानते हैं जिस पर पृथ्वी वर्ष भर में घूमती है इस प्रकार से जिस तारे की दूरी नापनी होती है उसका कोण छः महीने के अन्तर से नापा जाता है तथा व्यास के आधार से दूरी का अनुमान लगाया जाता है।

यह स्मरण रखना चाहिये कि इस प्रकार से तारों का कोण जानना रश्मि-वर्ण-दर्शक-यंत्र तथा फोटो ग्राफी में ठीक-ठीक उतरना

संभव है। पिछली शताब्दी में वैज्ञानिक इस प्रकार से दूरी जानना प्रायः असंभव मानते थे।

रश्मि वर्ण-दर्शक यंत्र तारों की उष्णता जानने में भी सहायक होता है।

विश्व के विषय में धारणाएँ—आदि काल से जब से मनुष्य ने आकाश पर दृष्टि डाली उसने उसके विषय में कुछ धारणाएँ बना लीं वैदिक काल के बहुत से मंत्रों में ज्योतिष के अनेक उल्लेख मिलते हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि विश्व का दर्शन उन आर्यों ने वैज्ञानिक ढंग पर किया था। किन्तु यंत्र आदि का विकास न होने से वे किसी परिणाम विशेष पर न पहुँच सके।

प्राचीन जातियाँ पृथ्वी को विश्व की तुलना में बड़ा महत्व देती थीं। क्योंकि पृथ्वी का विस्तार उन्हें आकाश से न्यून नहीं प्रतीत होता था। वे पृथ्वी को विश्व का केन्द्र मानते थे तथा समस्त ग्रहों, तारों, तथा नक्षत्रों को उसके चारों ओर भ्रमण करने वाला समझते थे। यद्यपि भारत में आर्य भट्ट ने तथा यूनान में आंस्टाटल ने इस बात को युक्तियों से सिद्ध किया कि पृथ्वी गोल है तथा स्वयं सूर्य के चारों ओर भ्रमण करती है किन्तु इस बात का विशेष प्रभाव लोगों की धारणा पर नहीं पड़ा तथा लोग साधारणतया पृथ्वी ही को विश्व का केन्द्र तथा आधार मानते रहे। भारत में वराह मिहिर, ब्रह्म गुप्त भास्कराचार्य तथा यूरोप का प्रसिद्ध ज्योतिष तालमी (Ptolemy) इसी सिद्धान्त को मानता रहा।

तालमी का सिद्धान्त—ईसा की दूसरी शताब्दी में तालमी ने विश्व के विषय में अपनी धारणा-संसार के सम्मुख रखी। उसने पृथ्वी को विश्व के मध्य में माना तथा पृथ्वी के आसपास विशुद्ध शीशे के बने घूमने वाले गोलों की कल्पना की जिनमें नक्षत्र-गण इस प्रकार जड़े हुए हैं जैसे किसी आभूषण में मोती। जिन तारों की गति एक

समान दीखती है उन्हें एक गोले में माना गया। किसी किसी ग्रह के लिये एक पूरे गोले की कल्पना की गई। जिन ग्रहों या तारों की गति इस प्रकार से समझ में न आई उनके लिये ऐसे छोटे गोलों की कल्पना की गई जो बड़े गोलों के मध्य में भ्रमण करते हों। कुछ दिनों तो यह सिद्धान्त खूब चला किन्तु विभिन्न तारों तथा ग्रहों की गति ऐसी वक्र निकली कि तालमी के मानने वालों को सहस्रों शीशे के गोले आकाश में मान कर भी इस गति को समझना कठिन होगया। क्योंकि इस सिद्धान्त का आधार ही अशुद्ध था। वास्तव में पृथ्वी घूमती है तथा अन्य ग्रह व तारे भी घूमते हैं।

केप्लर का सिद्धान्त :—धीरे-धीरे तालमी का मत मानने वालों को ऐसी ऐसी जटिल कल्पनाएं करनी पड़ीं कि विद्वान् लोग इस व्यर्थ-आडम्बर से बचने का प्रयत्न करने लगे। कोपर्निकस तथा केप्लर ने संसार में यात्रा करने वाले मल्लाहों की आकाश संबन्धी बातों को लेकर फिर से आकाश के तारागणों की देख-भाल तथा युक्तियों से सिद्ध कर दिया कि यह मानना अत्यन्त आवश्यक है कि पृथ्वी तथा अन्य ग्रह अपनी-अपनी कक्षा में सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। किन्तु बहुत न्यून लोगों ने इसका विश्वास किया क्योंकि तालमी का सिद्धान्त अधिक प्रचलित था।

गेली-लिओ तथा दूरबीन—कोपर्निकस तथा केप्लर के सिद्धान्त की पुष्टि कुछ वर्ष बाद ही गेलिलिओ ने दूरबीन का अविष्कार करके की। यह अविष्कार उसने १६१२ ई० में किया तथा उसने ज्योतिष-जगत् में उथल-पुथल मचा दी। दूरबीन से आकाश देखने से पता लगा कि बुध तथा शुक्र भी चन्द्रमा की तरह क्षीण एवं वृद्धि को प्राप्त होते हैं अब भी कई बातें दूरबीन से देखी गईं तथा अन्त में यह सिद्ध हो गया कि पृथ्वी विश्व का केन्द्र नहीं है किन्तु यह स्वयं तथा अन्य ग्रह भी सूर्य की परिक्रमा करते हैं।

न्यूटन का सिद्धान्त—पदार्थ के लक्षण तथा सिद्धान्त जो न्यूटन ने प्रतिपादित किये हैं वे एक पिछले अध्याय में दिये गये हैं। न्यूटन ने यह सिद्धान्त सन्मुख रखा कि प्रत्येक अणु में आकर्षण शक्ति विद्यमान है। यदि दो अणु एक साथ मिल जायें तो वे तीसरे पर अधिक आकर्षण डाल सकेंगे। इस प्रकार बड़ा पिंड या तारा छोटे पर घना आकर्षण फैंकता है। आकर्षण दूरी पर न्यून हो जाता है। पृथ्वी के समीप जो वस्तु है उस पर पृथ्वी के आकर्षण का प्रभाव सूर्य तथा अन्य तारों के आकर्षण से अधिक होगा। पृथ्वी पर सूर्य के आकर्षण का प्रभाव और तारों के आकर्षण से अधिक पड़ेगा। तारे बहुत दूर हैं। अतएव उनका आकर्षण नाममात्र पृथ्वी पर पड़ता है। दूसरे आकर्षण को किसी परदे या आवरण से नहीं रोक सकते। उसकी गति अवश्य है। समस्त तारागण आकाश में परस्पर आकर्षित होकर स्थित हैं या भ्रमण कर रहे हैं। न्यूटन का सिद्धान्त बहुत काल तक सर्वमान्य रहा है तथा अब भी बहुत सीमा तक उसमें तथ्य माना जाता है।

न्यूटन ने आकर्षण शक्ति ही को विश्व के तारों की गति तथा स्थिति का आधार माना। उसके सिद्धान्त में आकाश एक अनन्त शून्य स्थान है जिसमें अनन्त विश्व विस्तृत हैं। समय आकाश से अलग तत्व है जो एक गति से बराबर व्यतीत होता रहता है। न्यूटन पदार्थ में लम्बाई चौड़ाई तथा मुटाई केवल तीन ही नाप मानता था। न्यूटन के सिद्धान्त से विश्व की उलझन स्पष्ट समझ में आगई तथा आगे आने वाले वैज्ञानिक इसी सिद्धान्त को मान कर अन्वेषण में लगे रहे।

एन्सटाइन तथा सापेक्षवाद—किन्तु बीसवीं शताब्दी में जर्मनी के प्रसिद्ध गणितज्ञ ने न्यूटन के सिद्धान्त में त्रुटियाँ निकालीं। इस वैज्ञानिक के मत को अब संसार के सभी बड़े विद्वान् मानते हैं तथा न्यूटन के पुरातन सिद्धान्त का परित्याग कर रहे हैं। इस नवीन मत को

सापेक्षवाद कहते हैं। विश्व के वे भेद जो न्यूटन के सिद्धान्त से ठीक-ठीक नहीं खुल रहे थे अब नवीन गणित से स्पष्ट समझ में आते हैं। सापेक्ष-वाद गणित से सिद्ध किया गया है तथा उसकी कोई ऐसी शैली नहीं जो बड़ी सरलता से समझ में आ सके। इसलिये कुछ थोड़ी सी बातें ही उसके विषय में लिखकर इस विषय को समाप्त किया जायगा।

सापेक्षवाद में समय कोई भिन्न वस्तु नहीं मानी जाती। कुत्ते केवल बारह वर्ष जीते हैं तथा मनुष्य सौ वर्ष। अतएव कुत्तों के लिये समय की गति तीव्र है। एक बेकार आदमी का समय धीरे-धीरे बीतता है परन्तु एक व्यस्त मनुष्य का समय शीघ्रता से गति कर रहा है। अतएव समय पदार्थ से भिन्न वस्तु नहीं है। एन्सटाइन ने सिद्ध किया है कि पदार्थ में चार गुण हैं—लम्बाई, चौड़ाई, मुटाई, समय। इस प्रकार समय तथा आकाश एक ही वस्तु हैं। आकाश पदार्थ से भिन्न वस्तु नहीं मानी जा सकती क्योंकि बिना पदार्थ के आकाश कहीं भी नहीं मिलता। न्यूटन के सिद्धान्त में तारों आदि की गति समझाने के लिये यह मानना पड़ता था कि पदार्थ तथा आकाश का स्थिर रहना संभव है। किन्तु विश्व में कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है। पृथ्वी एक सेकिण्ड में १८ मील गति कर रही है तथा सूर्य पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों को लेकर बड़ी तीव्रगति से सर्किल तारा समूह की ओर गति कर रहा है। स्वयं आकाश-गंगा अपनी धुरी पर बड़ी शीघ्रता से गति कर रही है। सभी तारे तथा नीहारिकाएं एक बड़ी संख्या में निरन्तर झपेटे से भागे जा रही हैं। अतएव वह कहना ठीक नहीं कि एक दूसरे के आकर्षण से ये सब चल रहे हैं किन्तु यह कहना चाहिये इन तारों में स्वयं वेग है जो उस पदार्थ से भिन्न नहीं है जिससे ये बने है एन्सटाइन इसी का नाम आकाश रखता है तथा वेग की कमी और अधिकता से पदार्थ का आकाश भिन्न-भिन्न होता है। रेलगाड़ी में डिब्बे के भीतर का आकाश यात्रियों को न टकराता न फेंकता है

क्योंकि यात्रियों का वेग उस आकाश के समान है। यदि कोई यात्री फिर डिब्बे से बाहर आये तो बाहर का आकाश जो बाहरी वस्तु भूमि आदि का आकाश है और डिब्बे के आकाश की अपेक्षा स्थिर है, वह यात्री को झपेटे से पीछे फेंक देगा। अतएव आकाश या वेग पदार्थ के साथ हैं पृथक् नहीं हैं, इस सिद्धान्त तथा इसके बड़े गहरे गणित को समझने पर न्यूटन के आकर्षण सिद्धान्त की निःसारता दृष्टिगोचर की जाती है। नवीन सिद्धान्त से तारा गणों की गति ठीक-ठीक निकल आती है तथा वह त्रुटि निकल जाती है जो न्यूटन के गणित में रह जाती थी।

एन्सटाईन विश्व को अनन्त नहीं मानता। वह यह भी सिद्ध करता है कि तारागण जो शक्ति निरन्तर जलते रहने में नष्ट कर रहे हैं वह उन्हें वापिस मिल जाती है।

भविष्य में विश्व का अध्ययन—यद्यपि मनुष्य पृथ्वी-मंडल से बाहर जाकर विश्व को नहीं देख सका है तथा उसने कुछ नवीन यन्त्रों तथा गणित से ही विश्व की खोज की है। फिर भी जो ज्ञान विश्व के सम्बन्ध में उसने प्राप्त किया है बहुत है। किन्तु विज्ञान में बड़ी उन्नति हो रही है तथा यह निश्चित है कि भविष्य में ऐसे बहुत से यंत्र निकलेंगे जिनके द्वारा हम विश्व को एक पुस्तक के समान पढ़ सकेंगे। यह भी संभव हैं कि हम आकाशगामी जहाज़ों से समीप वर्ती ग्रहों तथा उपग्रहों की यात्रा करके पृथ्वी मंडल से बाहर के विश्व का कुछ स्पष्ट अनुभव कर सकें। हो सकता है कि ऐसा होने पर हमें बहुत से विचार जो इस समय संगत प्रतीत होते हैं परिवर्तन करने पड़ें तथा विश्व के विषय में ठीक सिद्धान्त तथा गणित का पता लग जाये।

पृथ्वी के साथी या सौर मंडल

पृथ्वी का, जो मनुष्य का संघर्ष क्षेत्र है, इतिहास पढ़ने से पहले

हमें यह जानना आवश्यक होगा कि उसके पड़ोसी तथा साथी कौन-कौन हैं तथा किस अवस्था में हैं।

वैसे तो पृथ्वी का सबसे समीप का साथी चन्द्रमा ही है किन्तु और भी कई आकाशीय पिंड हैं जो पृथ्वी के समीप हैं। इन पिंडों के विषय में ज्ञान प्राप्त करने से हमें अपनी पृथ्वी का महत्व और स्थान ठीक समझ में आ जाता है।

आकाश के ज्वलंत पिंडों को तारे कहते हैं। इन महान् पिंडों की परिक्रमा करने वाले छोटे पिंडों को ग्रह कहते हैं। ग्रह छोटे होने के कारण प्रायः शीतल हैं। हम केवल उन्हीं ग्रहों को जानते हैं जो सूर्य के आस-पास भ्रमण कर रहे हैं। संभव है अन्य तारों के समीप भी ग्रह हों किन्तु प्रकाश की न्यूनता के कारण हम उन्हें देख नहीं सके हैं। प्रायः ग्रहों से भी छोटे पिंड होते हैं जो किसी ग्रह की परिक्रमा करते हैं तथा इस प्रकार उस ग्रह के साथ-साथ चलते हुए सूर्य का परिक्रमा भी करते हैं। इनको उपग्रह कहते हैं। पृथ्वी स्वयं तो एक ग्रह है तथा चन्द्रमा उपग्रह है। ग्रह तथा उपग्रह अपनी-अपनी कक्षा में सूर्य के आस-पास भ्रमण करते रहते हैं। इनके अतिरिक्त धूमकेतु या पुच्छल तारे होते हैं जिनमें से कुछ तो ग्रह, उपग्रहों की भांति एक लम्बी सी कक्षा में सूर्य के आस-पास घूमते हैं तथा कुछ घूमते-घूमते सौर मंडल में आ जाते हैं तथा फिर लौट कर नहीं आते। रात्रि को आपने तारे टूटते देखे होंगे तथा आप सोचते होंगे कि जाने कितने सूर्य या ग्रह नष्ट हो जाते होंगे। टूटने वाले तारे या उल्का सूर्य या ग्रह नहीं होते। ये बहुत छोटे-छोटे आकाशीय पिंड हैं जो पृथ्वी के आकार्षण से अपने मार्ग से विचलित हो पृथ्वी पर गिरने लगते हैं तथा वायु मंडल में संघर्ष से जल कर अधिकतर राख हो जाते हैं।

हमारे सौर-जगत् का पति सूर्य है। यह एक ज्वलंत तारा है। इसके आस पास कई ग्रह भ्रमण करते है। सबसे समीप ग्रह बुध है।

उसके पश्चात् शुक्र नामक ग्रह की कक्षा है। आपने प्रायः संध्या को पश्चिम के आकाश में एक बड़ा प्रकाशमान ग्रह देखा होगा। यही शुक्र है। शुक्र के पश्चात् पृथ्वी की कक्षा है। पृथ्वी के साथ एक उपग्रह भी है। फिर मंगल की कक्षा आती है। मंगल के साथ दो छोटे-छोटे उपग्रह हैं मंगल के आगे की ओर कितने ही छोटे-छोटे ग्रह हैं जो सम्भव है एक बड़े ग्रह के टूटने से बने हैं। बुध, शुक्र, पृथ्वी तथा मंगल बाहर के चार ग्रहों की तुलना में छोटे हैं। मंगल की कक्षा के पश्चात् बृहस्पति, शनि, यूरेनस (अरुण) तथा क्रमशः वे पचूंन वरुण चार बड़े ग्रह हैं। सबसे बड़ा ग्रह बृहस्पति है। नेपचूँ के बाहर की ओर एक बहुत दूरवर्ती ग्रह का पता अभी-अभी लगा है। इसका नाम प्लूटो रखा गया है। प्लूटो छोटे-छोटे ग्रहों में ही माना जाता है, ज्योतिषियों का विचार है कि नेपचूं से आगे की ओर और भी ग्रह होने चाहियें।

बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति तथा शनि ही पाँच ग्रह केवल आँख से दृष्टिगोचर होते हैं। अतएव दूरबीन के आविष्कार से पहिले हम इन्हीं ग्रहों से परिचित थे। यह लिखा जा चुका है कि प्राचीन ज्योतिषी पृथ्वी को विश्व का केन्द्र मानते थे अतएव वे सूर्य तथा चन्द्र को भी ग्रह ही मानते थे। उनके विचार में सात ग्रह थे—रवि, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा शनि। भारतीय सप्ताह में दिनों के नाम इन्हीं ग्रहों पर रखे गये प्रतीत होते हैं।

ग्रहों के कुछ आँकड़े यहाँ दिये जाते हैं तुलना के लिये सूर्य के कुछ आँकड़े भी दे दिये गये हैं—

ग्रह	सूर्य से दूरी लाख मील)	सूर्य की परिक्रमा का समय (दिन)	व्यास (मील)	धुरी पर घुमेर		ताप	उपग्रहों की संख्या
				घंटा	मिनट		
बुध							
शुक्र							
पृथ्वी	९३०	३६५१	७९१३	२३	५३		१
मंगल	१४१५	६८७	४२१५	२४	३७½	-५०°	२
बृहस्पति	४८३३	४३३२	९०२५४	७	५०	-९२९°	१०
शनि	८८६०	१०७५९	७५१००	९	५६	-२४८°	८
वरुण	१७८२८	३०६८३	३१९००	१०	३८	-२९४°	
नेपचूँ	२७९३८	६०१८१	३३०००	१०	४९	-३२८°	
सूर्य	—	—	८, ६४, ३६७	२५ दिन ७ घंटे	४८	१०८०००	

जीव धारियों के उत्पन्न होने तथा जीवित रहने के लिये ३२° ० से २१२ फ तक ही तापक्रम रहना चाहिये अतएव उपरोक्त ग्रहों में से केवल पृथ्वी तथा मंगल ही में जीवों का होना संभव है।

सूर्य:—सूर्य की तुलना यदि विश्व के दूसरे तारों से की जाये तो वह एक मध्यम परिमाण का तारा है, किन्तु पृथ्वी की तुलना में वह बहुत बड़ा है। सूर्य का व्यास पृथ्वी के व्यास से सौ गुणा से भी अधिक है। विस्तार में सूर्य पृथ्वी से चौदह लाख गुणा है। सूर्य का

आकर्षण पृथ्वी से २८ गुणा है अर्थात् जो वस्तु पृथ्वी पर एक छटाँक की होगी वह सूर्य पर पौने दो सेर उतरेगी। यद्यपि पृथ्वी शीतल होकर ठोस हो गई है किन्तु सूर्य अब भी गैसों का ही बना है। उसमें उष्णता इतनी अधिक है कि कोई भी वस्तु ठोस तो क्या द्रव भी नहीं हुई है। फिर भी सूर्य में पदार्थ पर दबाव इतना अधिक है कि सूर्य का घनत्व पृथ्वी के पदार्थों से भी अधिक है। सूर्य की उष्णता का मध्य-भाग कम से कम ६०००० सेंटीग्रेड है किन्तु इसके भीतरी भाग कई करोड़ परिमाण में उष्ण हैं। सूर्य मानो एक भयंकर होली है जो अरबों वर्ष से जल रही है तथा उस होली के जलने का ढंग ऐसा है कि अभी अरबों वर्ष और भी जल सकती है।

सूर्य में इतनी उष्णता कहाँ से आई? एक वैज्ञानिक ने यह कल्पना की कि सूर्य एक बहुत बड़ा पिंड है तथा इसके महान् आकर्षण से इस पर करोड़ों उल्के प्रति सेकंड बड़े वेग से गिरते रहते हैं तथा इससे इसका मध्य भाग निरंतर जल रहा है। किन्तु यह कहना इतना निर्मूल है कि इस तरह इतनी उष्णता उत्पन्न ही नहीं हो सकती। यदि सारा सूर्य कोयले; पैट्रोल या अन्य खूब जलने वाले पदार्थ का बना हो तो भी इतनी उष्णता उत्पन्न होनी असंभव है। सूर्य की उष्णता एक वैज्ञानिक पहेली बनी हुई है। इतनी उष्णता उत्पन्न करने में सूर्य लगभग पचास लाख टन पदार्थ प्रति सेकंड नष्ट कर देता है तथा प्रकाश-किरणों के रूप में चारों ओर आकाश में फेंक देता है। यदि किसी प्रकार सूर्य की क्षति की पूर्ति न होती रहती तो सूर्य कभी का शीतल हो गया होता।

सूर्य की इस उष्णता उत्पन्न करने के प्रकार को कुछ वैज्ञानिकों ने परमाणु तथा इलेक्ट्रन के द्वारा समझाया है। तथा यह भी सिद्ध किया है कि जो शक्ति तथा पदार्थ इस भयंकर होली में जल जाता है उसमें से बहुत सा फिर से वापिस आ जाता है। आज कल परमाणु बम

के विषय में जो खोज हो रही है उससे सूर्य की शक्ति नष्ट होने तथा वापिस आने का भेद बहुत कुछ पता लगेगा।

ग्रहों की भांति सूर्य भी अपनी धुरी पर घूम रहा है। उसकी घुमेर लगभग २५ दिन में पूरी होती है। इसके अतिरिक्त सूर्य लगभग पृथ्वी की समान गति से अपनी कक्षा में भी भ्रमण कर रहा है तथा सब ग्रह उसके साथ चल रहे हैं।

मंगल:—सौर मंडल में केवल मंगल ही ऐसा ग्रह है जिसमें जीवधारियों का होना संभव है। मंगल का व्यास पृथ्वी से लगभग आधा है तथा उसका आकर्षण पृथ्वी के आकर्षण का छठा भाग है। यहाँ की सेर भर से ऊपर की वस्तु वहाँ पाव भर से भी कम रह जावेगी। जितनी शक्ति से कोई आदमी पृथ्वी पर छः फ़ीट ऊँचा कूद सकता है मंगल पर ३६ फीट कूद सकता है।

वैज्ञानिकों ने मंगल पर कुछ सीधी रेखाएं देखी हैं जिसका कुछ जाल सा प्रतीत होता है। उनकी धारणा है कि ये नहरें हैं जो मंगल-वासियों ने या तो ध्रुव के पिघले हुए हिम के जल को बहा देने के लिये बनाई हैं जिससे बाढ़ न आ जाये या मंगल में पानी मिलना कुछ कठिन है जिसके लिये बनाई हैं। मंगल में बड़े बड़े महासागर नहीं हैं, हाँ! कहीं कहीं बड़ी मरूभूमियों का अनुमान होता है।

यदि मंगल में जीवधारी हैं तो वहाँ के प्राणी पृथ्वी के प्राणियों से अधिक सभ्य होने चाहिये। वहाँ सभ्यता बहुत पहिले आरम्भ हुई होगी तथा इस समय तक बढ़ी चढ़ी उन्नति में होगी। जो प्राकृतिक अवस्थायें पृथ्वी पर अब हैं वे मंगल में कई लाख वर्ष पहिले होंगी। इस समय मंगल एक शीतल सृष्टि है जहाँ जीवन अन्तिम सीढ़ियाँ यापन कर रहा है। मंगल की सभ्यता के विषय में लोगों ने अनेक अनुमान लगाकर भाँति भाँति के वर्णन प्रस्तुत किये हैं किन्तु अभी तक निश्चित कुछ नहीं कहा जा सकता। बड़ी दूरबीन से मंगल एक
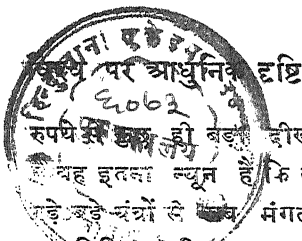
रुपये के [illegible] ही बड़ा दीखता है। ऐसी दशा में जो दिखलाई पड़ता है वह इतना न्यून है कि बहुत कुछ अनुमान ही अनुमान है। नवीन बड़े बड़े यंत्रों से जब मंगल का अच्छा निरीक्षण किया जायेगा तभी हम निश्चित परिणाम पर पहुँच सकेंगे।

मंगल पर सभ्यता होनी ही चाहिये इस बात की पुष्टि बहुत सी बातों से होती है। मंगल भी पृथ्वी की भांति अपनी धुरी पर लगभग २४½ घंटे में घूमता है जिससे सूर्य से मिली गर्मी अच्छी प्रकार विस्तृत हो जाती है। पृथ्वी की भाँति मंगल में भी ऋतु हैं तथा मंगल के चारों ओर भी अच्छा घना वायु मंडल है। बर्फ के जमने तथा पिघलने के स्पष्ट चिन्ह मंगल में दीखते हैं। जीवन के लिये जिन बातों की आवश्यकता होती है वे मंगल में प्रस्तुत हैं अतएव यहाँ सभ्यता तथा जीवधारी अवश्य ही होंगे।

अन्य ग्रहः—मंगल के अतिरिक्त कुछ वैज्ञानिकों ने शुक्र में भी सृष्टि का अनुमान किया है। शुक्र पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य के पास है तथा सदा मेघों से आच्छादित सा प्रतीत होता है। वहाँ की उष्णता इतनी अधिक होनी चाहिये कि जीव जीवित नहीं रह सकते। दूसरे शुक्र पृथ्वी की भाँति अपनी धुरी पर नहीं घूमता। इससे इस ग्रह के एक ओर तो बड़ी तीक्ष्ण गर्मी पड़ती है तथा दूसरी ओर बड़ी ठंड। केवल एक ही सम्भावना है। सम्भव है इसके ध्रुवीय प्रदेश में इतनी ठंड मिल सकती है कि कुछ जीव रह सकें। अनुमानतः ये जीव जल जीव ही होंगे क्योंकि मेघों से अच्छादित शुक्र ग्रह पर निरन्तर वर्षा होती होगी। इतनी तीव्र गर्मी में जीवों में बुद्धि का अधिक विकास सम्भव नहीं। यदि कुछ जीव होंगे तो वे अभी अधिक बुद्धिमान् या सभ्य नहीं हो सकते।

बुध में इतना ताप है कि अनुमानतः सूर्य की प्रबल लहरें भी दिखलाई देती हैं। यहाँ जीवधारी होने का प्रश्न भी उत्पन्न नहीं

होता। बृहस्पति, शनि, अरुण तथा नेपचू सूर्य से बड़ी दूर तथा शीतल हैं। उनका तापमान इतना न्यून है कि कोई जीव वहाँ नहीं रह सकता। बृहस्पति के साथ दस चन्द्रमा हैं। शनि के साथ अनेक चन्द्रमा होते हुए भी दूरबीन से देखने पर एक पट्टी सी चारों ओर दीखती है। वे वास्तव में तीस पट्टी हैं जो अनेक छोटे छोटे चन्द्रमाओं से बनी हैं। मंगल ग्रह के साथ भी दो चन्द्रमा हैं जो हमारे चन्द्रमा से बहुत छोटे हैं तथा बड़ी शीघ्रता से मंगल के चारों ओर घूमते हैं। अधिक चन्द्रमा वाले ग्रहों में रात्रि को निकलने पर जो मनोहर दृश्य दीखता होगा उसे देखने वाला वहाँ कोई नहीं।

सभी ग्रहों से सूर्य एक समान नहीं दिखलाई देता। प्लूटो में जो सूर्य से तीन अरब मील से भी अधिक दूर है सूर्य चन्द्रमा जैसा ही मन्द तथा उससे भी कहीं लघु दीखता होगा। बुध तथा शुक्र से सूर्य का बिंब बहुत बड़ा दीखता होगा। सूर्य का रंग भी सब ग्रहों से एक समान नहीं दीख सकता।

यह नहीं समझना चाहिये कि ग्रह सूर्य के चारों ओर एक वृत्त में जैसे मार्ग में घूमते हैं। अधिकतर ग्रहों की कक्षाएं दीर्घ वृत्त हैं। दीर्घ वृत्त बनाने के लिये पृथ्वी पर दो कीलें लगा लो तथा एक डोरा गोल बाँध कर उन दोनों कीलों में डाल लो। इसी डोरे में एक पेन्सिल लगा कर वृत्त खींचा तो दीर्घवृत्त बनेगा। इन दीर्घ वृत्तीय कक्षाओं के ठीक बीच में केन्द्र नहीं होता किन्तु प्रायः कक्षाएं ऐसी हैं जहाँ सूर्य केन्द्र से हटा हुआ है। कोई भी ग्रह कक्षा पर समान गति से नहीं चलता। उसकी गति कभी तीव्र होती है तथा कभी न्यून। समस्त ग्रहों की कक्षा एक से दीर्घ वृत्तों की नहीं है किन्तु कुछ दीर्घ वृत्त चौड़े हैं तथा कुछ लम्बे। इसके अतिरिक्त प्रत्येक ग्रह की कक्षा का तल तथा सूर्य का तल एक ही नहीं है। प्रायः ऐसा समझना चाहिये कि ग्रह उस लट्टू के समान है जिसे कोई लड़का धागा

पकड़ कर घुमाता है। ऐसी अवस्था में हम लड़के के हाथ के स्थान पर सूर्य की कल्पना कर सकते हैं।

यह आप पढ़ ही चुके हैं कि सब ग्रह नाप, दूरी, गति आदि में महान् भेद रखते हैं।

• चन्द्रमा—पृथ्वी के साथ जो उपग्रह है उसे चन्द्रमा कहते हैं। चन्द्रमा रात्रि में मनुष्य का प्राचीन सहायक है तथा मनुष्य तथा प्रकृति की प्रारम्भिक लड़ाई में उसका साथी रहा है। चन्द्रमा पर मनुष्य ने सब से प्रथम ध्यान दिया तथा जब तक लोग पृथ्वी को विश्व का केन्द्र मानते रहे तब तक चन्द्रमा को भी एक ग्रह ही समझते रहे। भारतीय हिन्दुओं की धार्मिक कथाओं में चन्द्रमा को पृथ्वी के समुद्र से निकला हुआ माना है। तथा आज कल के विज्ञान के अनुसार भी चन्द्रमा प्राचीन काल में पृथ्वी से टूट कर भिन्न हो गया था तथा जो गढ़ा छोड़ गया था वह अब प्रशान्त महासागर के नाम से प्रसिद्ध है।

जब चन्द्रमा पृथ्वी से टूट कर भिन्न हुआ था तब पृथ्वी बहुत उष्ण थी। इसके टूटने का कारण किसी अन्य ग्रह का आकर्षण हो सकता है या पृथ्वी के सिकुड़ने में पृथ्वी की नासपाती के समान गर्दन सिकुड़ती ही चली गई तथा अन्त में एक खण्ड टूट कर वेग से आकाश में उड़ा किन्तु पृथ्वी के आकर्षण के कारण दूर न जा सका तथा एक कक्षा में पृथ्वी की परिक्रमा करने लगा। चन्द्रमा पृथ्वी से पचास गुणा छोटा है तथा इसका व्यास पृथ्वी के व्यास का चौथाई है। ऐसी दशा में इसका आकर्षण पृथ्वी के आकर्षण की तुलना में ४२ वाँ भाग है। अर्थात् पृथ्वी पर डेढ़ मन तोल का मनुष्य चन्द्रमा पर दो सेर से भी कम उतरेगा। तथा जिस काम के करने में यहाँ किसी शक्ति विशेष की आवश्यकता है वहाँ इससे $\frac{1}{42}$ शक्ति पर्याप्त होगी।

आकर्षण शक्ति न्यून होने के कारण चन्द्रमा का वायुमंडल शीघ्र ही उससे विलग होकर आकाश में विलीन हो गया अब चन्द्रमा के

समीप वायु नाममात्र को है। वायुमंडल न होने से बादल तथा वर्षा भी नहीं होती तथा जल भी वाष्प बनकर लुप्त हो गया। चन्द्रमा एक शून्य संसृति है जहां शुष्क पर्वत, शुष्क समुद्र तल, शुष्क ज्वाला मुख दृष्टिगोचर होते हैं। चन्द्रमा के धरातल का वैज्ञानिकों ने पर्याप्त अध्ययन किया है। उन्होंने यहाँ के विशाल ज्वालामुखियाँ तथा पर्वत शिखरों के नाम भी रख दिये हैं।

चन्द्रमा अपनी धुरी पर उतने ही दिन में भ्रमण करता है जितने दिन में वह पृथ्वी की एक परिक्रमा करता है। अतएव चन्द्रमा का एक ही गोलार्द्ध हमें दीखता है तथा उसी का हम अध्ययन करते हैं। चन्द्रमा पृथ्वी से लगभग २,४०,००० मील है तथा बड़ी दूरबीन से इसका बिम्ब ६.००० गुणा बड़ा कर देखा जा सकता है। साधारणतया जो काला भाग चन्द्रमा में दिखलाई पड़ता है वह वहाँ के विशाल ज्वालामुखी हैं जिनमें सूर्य किरण प्रवेश नहीं कर पाती। चन्द्रमा की विशाल पर्वत माला भी स्पष्ट दिखलाई पड़ती है सब से चौड़ा ज्वाला-मुखी १२३ मील का व्यास रखता है। चन्द्रमा की सब से ऊँची पर्वत चोटी २६,००० फीट है। चन्द्रमा की पर्वत शृंखला प्रायः 'नित्य पर्वत श्रेणी' भी कही जाती है क्योंकि चन्द्रमा में बर्फ, जल, तूफान आदि पर्वतों को घिसने तथा उनकी आकृति में परिवर्तन करने को नहीं है। चन्द्रमा के पर्वत अपने बनने के समय से प्रायः वैसे के वैसे ही खड़े हैं। ज्वालामुखी वास्तव में शीतल ज्वालामुखी पर्वतों के मुख हैं। चन्द्रमा के सब ज्वाला मुखी ज्यों के त्यों हैं क्योंकि उन्हें घिसने के लिये भी कोई प्राकृतिक ढंग नहीं है। इनके अतिरिक्त शुष्क समुद्रों के उदर भी दीख पड़ते हैं। पर्वतों को छाया वायु मंडल न होने के कारण स्पष्ट पड़ती है।

वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि यद्यपि चन्द्रमा तथा पृथ्वी सूर्य से लगभग एक समान दूरी पर हैं' चन्द्रमा में उष्णता पृथ्वी से

पाँच गुणा पड़ती है। इसका कारण यह है कि सूर्य की प्रखर किरणों को अध्यम करने के लिये वायु का आवरण नहीं है। यदि चन्द्रमा में वायु का नितान्त अभाव है तो वहाँ की भूमि तो उष्ण हो जावेगी तथा गर्मी फैलाने न पावेगी। अर्थात् वहाँ खड़े हुए मनुष्य के पाँव तो जलते रहेंगे किन्तु वह स्वयं ठिठुरता रहेगा। चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा २८ दिन कुछ घंटे में करता है तथा इतनी ही देर में अपनी धुरी पर भी घूम जाता है। वहां का प्रत्येक दिन हमारे १४ दिन से बड़ा होता है तथा इतनी ही बड़ी रात। दिन में सूर्य की किरणें निरन्तर पड़ती रहने से तापमान बढ़ता ही चला जाता है तथा रात्रि में हिम विन्दु से भी २५०० नीचे जा पहुँचता है।

हमें दूरबीन से चन्द्रमा की सैर जब चाहें कर सकते हैं किन्तु वैज्ञानिकों की यह बड़ी इच्छा है कि वे सदेह चन्द्र लोक में जाकर वहाँ का निरीक्षण करें। इस विषय में संयुक्त राष्ट्र में विशेष प्रास्तुत्य है तथा कुछ लोग तो चन्द्रमा में पहुँचने के लिये इतने तुले बैठे हैं कि सरकारी दफ्तर में चन्द्रमा में भूमि पाने के लिये प्रार्थना पत्र भी दे चुके हैं। वैज्ञानिक लोग रेडियो की नई 'रैडर' किरणों से चन्द्रमा के पृष्ट पर आघात कर चुके हैं। तथा उसके प्रत्याघात की प्रतिध्वनि सुन चुके हैं। यह ध्वनि—प्रतिध्वनि चन्द्रमा से पृथ्वी के निवासियों का पहला सीधा सम्बन्ध है। भविष्य में यह सम्बन्ध बढ़ता ही जायेगा।

उल्कागुण—रात्रि को तारे टूटते दीखते हैं वे विश्व में नियमित या अनियमित घूमते हुए छोटे-छोटे पिंड हैं जब ये भ्रमण करते हुए किसी बड़े पिंड (सूर्य, ग्रह, उपग्रह आदि) के समीप पहुँचते हैं तो उसके आकर्षण से उसकी ओर आकर्षित होते हैं तथा उस पर गिर पड़ते हैं। पृथ्वी के चारों ओर के वायुमण्डल हैं। जब वे छोटे पिंड पृथ्वी पर गिरते हैं तो वायु से संघर्ष खाकर जल उठते हैं तथा या तो

जलकर राख हो जाते हैं तथा पृथ्वी पर नहीं पहुँचते या इतने बड़े बड़े होते हैं कि जलते-जलते भी कुछ भाग बच जाता है तथा इतने वेग से पृथ्वी पर गिरता है कि भूमि के भीतर तक प्रविष्ट हो जाता है, किन्तु ऐसा बहुत कम होता है। कुछ वर्ष हुए संयुक्त प्राँत के बरेली डिवीज़न में एक उल्का गिरा तथा उसका अधिकतर भाग पृथ्वी में प्रविष्ट हो गया। गिरते समय यह उल्का एक जलते चन्द्रमा सा प्रतीत होता था तथा श्वेत-प्रकाश फैला रहा था। जो भाग पृथ्वी पर गिरा वह लम्बाई में डेढ़ फुट तथा अधिक से अधिक चौड़ाई में ८ इंच था। १९०२ में साइबेरिया में एक बहुत बड़ा उल्का गिरा जिससे मीलों तक जंगल जल कर राख हो गया। वैज्ञानिकों की धारणा है कि २४ घण्टों में पृथ्वी के वायुमण्डल में लगभग एक करोड़ उल्के प्रवेश करते हैं इनमें से प्राय: सभी वायुमण्डल में नष्ट हो जाते हैं। वायु मण्डल एक छत्री के समान हमारी रक्षा करता रहता है।

धूमकेतु—ग्रहों को छोड़कर हमारे सौर-मण्डल के बड़े सदस्य धूमकेतु या पुच्छल तारे हैं। आपने कदाचित् ही कोई पुच्छल तारा देखा हो अधिकतर धूमकेतु दूरबीन से दीख पड़ते हैं, ऐसे धूमकेतु कम हैं जो केवल आँख से दीख पड़ें। पुच्छल तारे में एक शिर होता है जो ठीक पदार्थ का बना होता है तथा एक वायु जैसे पदार्थ की बनी झाँडू की पूंछ होती है। धूमकेतु एक लम्बे से दीर्घवृत्त में सूर्य की परिक्रमा करते हैं आकर्षण के कारण इनका सिर सूर्य की ओर रहता है तथा पूंछ उससे प्रतिकूल दिशा में। इनकी गति भी ग्रहों की तरह एक सी नहीं रहती। ज्यों-ज्यों सूर्य के समीप आते हैं इनकी गति बढ़ती जाती है। तथा दूर हटने पर न्यून हो जाती है कुछ धूमकेतु ऐसे हैं जो हमारे सौर मण्डल के नहीं हैं तथा किसी नियमित या अनियमित रूप से विश्व में घूमते हुए सौर मण्डल में आ पहुँचते हैं। ऐसे धूमकेतु जब सौर मण्डल से विदा हो जाते हैं फिर लौटकर

नहीं आते। सबसे प्रसिद्ध धूमकेतु हेली धूमकेतु है जो १६१० में सौर मण्डल में आया था तथा ७५ वर्ष बाद १९८५ में फिर आवेगा। इस समय यह आकाश में अपने मार्ग पर बढ़ा जा रहा है। धूमकेतु हल्के से पिंड हैं इसलिये ये ग्रहों की कक्षा तथा गति पर कोई प्रभाव नहीं रखते। किन्तु इनके मार्ग ग्रहों की कक्षाओं के बीच से होते हैं तथा भय रहता है कि कहीं किसी ग्रह या उपग्रह से टकरा न जायं। कुछ वर्ष हुए एक धूमकेतु पृथ्वी से केवल ४,००,००० मील की दूरी पर आ पहुंचा। यदि यह और भी पास आ जाता तो कदाचित् चन्द्रमा तथा पृथ्वी के आकर्षण क्षेत्र में कुछ संघर्ष मचा डालता। कदाचित् पृथ्वी पर रहने वाले जीवधारियों का किसी दिन इसी प्रकार अन्त न हो जावे।

सौर जगत् की कक्षा—सौर मण्डल कोई छोटी सी वस्तु नहीं इस समय तक सबसे दूर देखा गया ग्रह प्लूटो सूर्य से ३ अरब ७० करोड़ मील दूर है। ज्योतिषियों का कहना है कि इस ग्रह से भी आगे अभी और ग्रह हैं जिनका पता अभी तक नहीं लगा है। नवीन यन्त्रों से इस विषय में पूरी खोज हो जाने पर सौर जगत के वास्तविक विस्तार का पता लगेगा। सूर्य अपने समस्त ग्रहों उपग्रहों के साथ ६७ हज़ार मील प्रति घण्टे की गति से अपनी कक्षा में घूम रहा है। सूर्य मण्डल स्वयं आकाश गंगा के छोटे से नक्षत्र पुञ्ज हकुंल का एक अंश है। सौर जगत् का इस समय तक जाना गया क्षेत्र ७$\frac{1}{2}$ अरब मील के लगभग है।

विश्व के मूल पदार्थ की खोज

भारतीय दार्शनिकों ने यह सिद्धान्त संसार के सम्मुख रखा कि जगत् के सब पदार्थ एक ही प्रकार के परमाणुओं से बने हैं। उसका अर्थ यह हुआ कि विश्व का पदार्थ वास्तव में एक ही है तथा हमें जो वस्तुएँ भिन्न भिन्न दिखाई दे रही हैं वे वास्तव में एक ही हैं तथा

एक ही मूल पदार्थ के सम्मिश्रण से बनी हैं। मिट्टी, जल, सोना, तांबा आदि रूप तथा गुणों में भेद रखते हैं किन्तु मूल में एक हैं। उसके अतिरिक्त वे पदार्थ के पांच तत्वों की भी कल्पना करते थे। आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी ये पांच तत्व ही पदार्थ के मूल में हैं। कुछ भारतीय तथा बाहर के अन्य विद्वानों ने आकाश को स्वतंत्र तत्व नहीं माना।

विश्व के भीतर विश्व —किन्तु प्राचीन विद्वानों की इस प्रकार की धारणायें कल्पना तथा युक्ति पर निर्भर थीं। उन्होंने पदार्थ पर वैज्ञानिक प्रयोग करके अपने सिद्धान्तों को नहीं बनाया था। पदार्थ हमारे सम्मुख है तथा इसके विषय में अनुमान या अटकल से सिद्धान्त बनाना ठीक नहीं। पदार्थ के गुणों की खोज पहले इस लिये आरंभ हुई कि लोग यह विश्वास करते थे कि सोना बनाया जा सकता है तथा वे ऐसे प्रयोग किया करते थे जिससे सस्ता सोना बनाना संभव हो जावे। किन्तु अट्ठारहवीं शताब्दी में यह खोज धीरे धीरे सस्ते सोने की दौड़ को छोड़ पदार्थ के गुणों की सच्ची खोज में परिवर्तित हो गई। पहले तो यह खोज साधारण सी रही किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में वैज्ञानिक ज्यों ज्यों अपनी खोजों में उन्नति करते गये त्यों त्यों वे पदार्थ की जटिलता अनुभव करने लगे। उन्होंने देखा कि पदार्थ के पांच पुरातन मूल तत्व वास्तव में तत्व नहीं हैं तथा उन्हें अन्य तत्वों का पता लगा। इस रसायनिक अनुसंधान (Chemical Investigation) से उन्नीसवीं शताब्दी में ही तत्वों की संख्या ३० तक पहुंच गई थी।

एक ओर तो कुछ वैज्ञानिक दूरबीन (Telescope) तथा रश्मि-वर्ण-दर्शक (Spectroscope) से सुदूरवर्ती तारों की खोज कर रहे थे तथा दूसरी ओर रासायनिक भी पृथ्वी पर पाये जाने वाले तत्वों की प्रकाश किरणों की तुलना आकाशीय प्रकाश-किरणों से करते थे। इस प्रकार तत्वों की खोज में बड़ी सहायता मिली। वैज्ञानिकों ने देखा कि

सब तत्वों के अणु एक से नहीं होते तथा उनका भार भिन्न होता है। तत्व वे हैं जो किसी और पदार्थ से मिल कर नहीं बने किन्तु सीधे अपने अणुओं से बन गये हैं। इस प्रकार की खोज में कुछ पदार्थ जो पहले तत्व माने गये कुछ समय पश्चात् पूर्ण खोज होने पर केवल मिश्र सिद्ध हुए। इन्हीं खोजों से यह बात भी सिद्ध हुई कि पदार्थ (Matter) नष्ट नहीं हो सकता केवल उसका रूप परिवर्तित हो सकता है। किन्तु ये अणु जिससे तत्व-पदार्थ बनते हैं सीधे सादे कण नहीं हैं। वैज्ञानिकों ने अणुओं को तोड़ कर उनके भीतर वह विचित्रता देखी है कि वे यह अनुभव कर रहे हैं कि एक तो वह महान् विश्व ही है जो हमारे चारों ओर विस्तृत हुआ है किन्तु पदार्थ तथा जीवों के अन्वेषण में भी एक नया विश्व भरा पड़ा है जिसकी खोज में वे प्रयत्न कर रहे हैं।

पदार्थ की रचना—हम जो कुछ भी इस संसार में देख रहे हैं जैसे वायु, मिट्टी, जल, बिजली आदि सब के सब पदार्थ दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं (१) तत्व तथा (२) मिश्र। तत्व वे हैं जो अणुओं से बने हैं और इस समय तक ९२ पदार्थ तत्व सिद्ध हो चुके हैं। मिश्र वे पदार्थ हैं जो तत्वों से मिल कर बने हैं। अतएव मिश्रों का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है वे तोड़े जा सकते हैं तथा उन तत्वों में परिवर्तित हो जाते हैं जिन से वे बने हैं। किन्तु यदि हम तत्वों को वैज्ञानिक रीति पर तोड़ते हैं तो विदित होता है कि वे किसी और तत्व या पदार्थ के बने हुए नहीं हैं किन्तु सीधे अणुओं द्वारा बने हैं। सब भिन्न तत्वों के अणु एक से नहीं होते। वास्तव में प्रत्येक तत्व के अणु प्रकार के होते हैं। अणु परमाणुओं से मिलकर बने हैं। अतएव संक्षेप में पदार्थ की रचना इस प्रकार है:—

कितने ही परमाणु = एक अणु
कितने ही अणु = एक अणु गुच्छक

कितने ही अणु गुच्छक = एक तत्व का खण्ड
दो या दो से अधिक तत्व = एक मिश्र

मिश्र में कितने ही तत्व थोड़े या बहुत हो सकते हैं तथा जिस अनुपात (Proportion) से तत्व किसी मिश्र में मिले रहते हैं उनका पता वैज्ञानिकों ने लगा लिया है। जैसे जल हाइड्रोजन और आकसी-जन से बना है तथा जल के प्रत्येक अणु गुच्छक में दो हाइड्रोजन का तथा एक आकसीजन के अणु होते हैं। अतएव जल का रूप वैज्ञानिक इस प्रकार लिखते हैं—हा$_2$आ (H_2O)।

परमाणु—तत्व जिन छोटे-छोटे खण्डों के बने हैं उन्हें अणु कहते हैं। अणु भी वैज्ञानिक ढंग से तोड़े जा सकते हैं तथा उनके तोड़ने से जो और भी छोटे-छोटे टुकड़े हो जाते हैं उन्हें परमाणु कहते हैं। भारतवर्ष के तथा यूनान के प्राचीन विद्वानों ने परमाणु का उल्लेख किया है तथा यह माना है कि परमाणु विश्व के सारे पदार्थों का मूल है तथा सारी वस्तुएँ परमाणुओं से मिलकर ही बनी हैं। परमाणु को वे अविभाज्य अर्थात् न टूटने वाला मानते हैं। ये प्राचीन विद्वान् ही नहीं यूरोप के वैज्ञानिक भी १६ वीं शताब्दी तक परमाणु को पदार्थ का छोटे से छोटा अन्तिम खण्ड मानते थे।

किन्तु परमाणु भी तोड़ा जा सकता है। तथा इसके विश्लेषण से हमें कई नवीन बातों का पता लगा है। प्राचीन विद्वानों की यह धारणा कि परमाणु सब एक से होते हैं निर्मूल सिद्ध हो गई है। वास्तव में प्रत्येक तत्व के परमाणु विभिन्न प्रकार के हैं अतएव परमा-णुओं की भी उतनी ही जातियां हैं जितने तत्व विश्व में पाये जाते हैं। दूसरी बात जिसे आजकल के विद्वान् मानते हैं वह यह है कि परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म कण ही नहीं होते किन्तु वे तरंग भी होते हैं तथा सदा चलते रहते हैं। तीसरे परमाणु जिस सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्व के बने हैं वह है विद्युत्, जिसके दो प्रकार हैं—धन विद्युत् (Posi-

tive Elcetricity) तथा ऋण विद्युत् (Negative Electricity) इतना ही नहीं है । परमाणु रचना में चुम्बक शक्ति का भी हाथ है ।

परमाणु के भीतर छोटा सा सौर जगत—परमाणु एक बहुत छोटा सा खण्ड है । इसका व्यास एक इंच का दस करोड़वाँ भाग है अर्थात् एक इंच में दस करोड़ परमाणु रखे जा सकते हैं । पतंग के कागज़ की स्थूलता में एक लाख से अधिक परमाणु आ जायेंगे । पानी के एक बूंद को अणुवीक्षण यंत्र (MICROSCOPE) से बढ़ाकर यदि एक हाकी के क्षेत्र के समान बना दिया जाय तो भी उसके परमाणु का व्यास इंच का एक हजारवाँ भाग ही रहेगा। वट वृक्ष के बीज में लाखों परमाणु होते हैं । बीस संख परमाणुओं का भार एक रुपये के तुल्य होता है । इतने नन्हे से परमाणु को नापना तथा उसके भीतर क्या है इसका पता लगाना कोई साधारण काम नहीं । वैज्ञानिकों ने इस सूक्ष्म परमाणु के नापने के लिए तथा इसे तोड़ कर देखने के लिये नवीन यंत्र बनाये तथा इसका रहस्य स्पष्ट देख लिया ।

परमाणु जिन सूक्ष्म विद्युत्कणों से बना है उनमें से एक ऐलेक्ट्रन (Electron) है । १८११ ई० में अवोगहा ने सबसे पहले अणु को तोड़कर परमाणुओं को भिन्न किया किन्तु परमाणु को सर्वप्रथम टाम्सन ने १८९७ ई० में तोड़ा । परमाणु को तोड़ने से एक प्रकार के सूक्ष्म विद्युत् कण निकले जो ऋण विद्युत् के बने थे । ऐलेक्ट्रन कहलाते हैं तथा विद्युत् के सबसे लघु खण्ड हैं । परमाणु स्वयं कितनी छोटी वस्तु है वह आप समझते हैं किन्तु एलेक्ट्रन परमाणु से भी छोटे हैं । सबसे छोटे परमाणु हाइड्रोजन के परमाणु होते हैं किन्तु एलेक्ट्रन इस परमाणु के भी $\frac{1}{2000}$ के तुल्य होता है। रदरफोर्ड नामक वैज्ञानिक ने परमाणु के विषय में बड़ी खोज की है तथा उसके भीतर की आकृति का पूरा पता लगाया है ।

उदाहरण के लिये सबसे छोटे परमाणु अर्थात् हाइड्रोजन के परमाणु को लीजिए। इसके भीतर अन्य परमाणुओं की भाँति अधिकतर स्थान शून्य पड़ा है। बीच में धन विद्युत का खण्ड है जिसे (Proton) कहते हैं तथा इसके चारों ओर एक महान् गति से घूमने वाला एलेक्ट्रन है जो ऋण विद्युत् का बना है। इस प्रकार परमाणु के केन्द्र (Nucleus) में धन विद्युत् है उसके चारों ओर ऋण विद्युत घूमती है। किन्तु अन्य तत्वों के परमाणुओं में कभी-कभी केन्द्र में दोनों प्रकार की विद्युत् रहती है। सोडियम के परमाणु में केन्द्र में २३ प्रोटन तथा १२ एलेक्ट्रन हैं तथा इस केन्द्र के आस-पास तीन पृथक् कक्षाओं में ११ ऐलेक्ट्रन घूम रहे हैं। प्रथम कक्षा में २ एलेक्ट्रन हैं। दूसरी में ८ तथा सबसे बाहर की में १ एलेक्ट्रन भ्रमण कर रहा है

यदि आप सोडियम के परमाणु पर दृष्टिपात करेंगे तो आप इसकी तुलना सौर मण्डल से कर सकते हैं। बीच का केन्द्र धन तथा ऋण विद्युत् संयोग से बना है जो इस छोटे से सौर-जगत् का केन्द्रीय सूर्य है तथा एलेक्ट्रन अपनी कक्षाओं में ग्रहों के समान घूम रहे हैं। जिस प्रकार सौर जगत् में "ग्रह" सूर्य आदि में बड़ा दूरत्व है उसी प्रकार परमाणु में शून्य स्थान की न्यूनता नहीं है। यदि हम हाइड्रोजन के परमाणु के केन्द्र को एक आधे इंच की गोली के समान मानें तो उसके आसपास घूमने वाले एलक्ट्रन को लगभग तीन फ़र्लांग की दूरी पर एक छोटा सा कण मानना होगा तथा शेष स्थान शून्य होगा। किंतु यह वाह्य कक्षा पर घूमने वाले एलक्ट्रन ही परमाणु की सीमा बनाते हैं तथा ऋण विद्युत् के खण्ड होने के कारण अन्य परमाणुओं को दूर रखने में सहायक होते हैं ?

परमाणु-खण्डः—ऊपर परमाणु के विषय में जो विचार आप पढ़ चुके हैं, वे रदरफोर्ड ने परमाणु खण्डन करके संसार के समक्ष रखे थे।

अमेरिका में केलीफोर्नियाँ विश्व विद्यालय के प्रसिद्ध प्रोफेसर लारेंस ने परमाणु खण्ड यंत्र (Cyclotron) का अविष्कार किया। इस प्रकार के महान् यन्त्र से परमाणु के केन्द्र को भिन्न किया जा सकेगा जो परमाणु का सबसे कठोर भाग है इस यन्त्र द्वारा परमाणु में कक्षाओं पर घूमने वाले एलक्ट्रनों को हटाया जा सकता है। इसी यंत्र से जब एक कक्षा पर घूमने वाले एलक्ट्रनों को हटा कर किसी अन्य कक्षा पर फेंका जाता है तो एक प्रकार का प्रकाश जिसकी आकृति एक्स (X) की सी होती है निकल कर लुप्त हो जाता है। यह एक्स किरण (XRay) बहुत से पदार्थों को पार कर जाती हैं तथा इसके द्वारा शरीर तथा मशीनों के भीतर के भाग देखे जा सकते हैं तथा उनके रोग तथा दोषों की पूरी परीक्षा की जा सकती है। यदि भ्राँतिवश कोई मनुष्य धातु की कोई वस्तु या खण्ड खा जावे या किसी मनुष्य के शरीर में बन्दूक आदि के छर्रे चले जावें तो एक्स किरण से देखकर उसे सरलता से निकाल सकते हैं। चिकित्सकों के लिए यह किरण बड़ी उपयोगी है।

रडरफोर्ड ने यह भी सिद्ध कर दिखाया है कि परमाणु के केन्द्र में प्रोटन तथा ऐलेक्ट्र के अतिरिक्त एक और तत्व भी होना चाहिये जो दोनों प्रकार की विद्युत् से प्रभावित न हो। उसने इसका नाम न्यूट्रन (Newtron)रखा। चड्विकि ने १९३२ में न्यूट्रन का पता लगाया। न्यूट्रन पर दोनों प्रकार की विद्युत् का कोई प्रभाव न होने से यह परमाणु के केन्द्र को भिन्न करने में बड़ा सहायक हुआ। यह सुगमता से केन्द्र में प्रविष्ट हो सकता है। न्यूट्रन द्वारा उरानियम (Uranium) जैसे तत्व के ठोस परमाणु भी तोड़ डाले गये हैं तथा कितनी ही प्रकार के नवीन परमाणु बनाये गए हैं। परमाणु का केन्द्र तोड़ने या उस से नवीन परमाणु बनाने में महान् शक्ति निकलती है जो मनुष्य द्वारा प्राप्त की हुई सब शक्तियों से बलवती है। न्यूट्रन द्वारा उरानियम को तोड़ने

से २० करोड़ वोल्ट की शक्ति निकलती है। पिछले महायुद्ध में परमाणु बम इसी सिद्धान्त पर बना है। अनुमानतः परमाणु बम में उरानियम के परमाणु किसी और पदार्थ के परमाणुओं में परिवर्तित कर दिये जाते हैं जिससे इतनी बड़ी शक्ति निकलती है कि मीलों तक प्राणी, वृक्ष, मकान, जल आदि समूल नष्ट हो जाते हैं। जापान में हिरोशिमा नगर पर एक परमाणु बम डाला गया था। उस नगर के स्थान पर एक धूल का मैदान ही रह गया है।

परमाणु खंडन तथा मंडन विज्ञान का प्रगतिशील विषय है। किसी वृक्ष के वर्द्धन में मिट्टी, जल, वायु आदि के परमाणु बदल कर लकड़ी फल, पत्ते आदि का रूप धारण करते हैं। यदि वैज्ञानिक परमाणु परिवर्तन में सफल हो गये तो वे कुछ ही क्षणों में बीज से वृक्ष खड़े कर सकेंगे। यदि परमाणु परिवर्तन की शक्ति को काम में लाने में सफल हुए तो थोड़े से पदार्थ से वर्षों तक बड़े से बड़े कारखाने को चला सकेंगे।

परमाणु और पदार्थ—प्रत्येक तत्व के परमाणु विभिन्न प्रकार के होते हैं। कुछ तत्वों के परमाणु ऐसे हैं जो किसी दूसरे तत्व से मिलकर अणु बना सकते हैं। कार्बन के परमाणु इस लक्षण में अन्य तत्वों से बढ़े चढ़े हैं तथा अकेले कार्बन के दस लाख के लगभग योग वैज्ञानिकों का ज्ञात हैं। परमाणु सम्मिश्रण में प्रायः परमाणुओं के बाहर की कक्षा में घूमने वाले एलेक्ट्रन मिल जाते हैं तथा एक नवीन प्रकार के पदार्थ के अणु बना लेते हैं। जैसे क्लोरीन जो एक विषैली गैस है तथा सोडियम जो एक विस्फोटक तत्व है अपने अपने परमाणु-ओं में मिलने की शक्ति रखते हैं तथा मिलकर नमक बनाते हैं जिसमें क्लोरीन तथा सोडियम के लक्षण नहीं होते। वैज्ञानिकों ने पदार्थों का विश्लेषण करके उनके मूलतत्वों का पता लगाया है तथा इस प्रकार प्राप्त होने वाले सभी पदार्थों का ज्ञान प्राप्त किया गया है।

शक्ति की खोज—प्राचीन विद्वानों ने शक्ति के अस्तित्व को स्वतन्त्र नहीं माना। उनकी धारणा थी कि शक्ति एक गुण है तथा गुण होने के कारण किसी गुणी—अर्थात् जीव या पदार्थ की आश्रित है। न्यूटन के विचार में पदार्थ एक निष्क्रिय वस्तु है तथा पदार्थ से जो क्रियाएं होती हैं वे किसी अन्य वस्तु के कारण हैं जिसे हम शक्ति कह सकते हैं। न्यूटन के इस आधार-भूत सिद्धान्त पर वैज्ञानिक शक्ति के अन्वेषण में लगे रहे उन्होंने शक्ति के विभिन्न रूपों का पता लगाया तथा वे इस परिणाम पर पहुँचे कि पदार्थ की भाँति शक्ति भी नाशमान नहीं है तथा विश्व में जितनी शक्ति विद्यमान है उसकी मात्रा उससे न्यून हो सकती है न उससे अधिक। शक्ति केवल रूपान्तरित होती है नष्ट नहीं होती अनेक प्रयोगों से यह सिद्धान्त पुष्ट होता रहा तथा न्यूटन के आकर्षण-सिद्धान्त की भाँति यह भी विज्ञान का अटूट सत्य माना जाता था। इस प्राचीन सिद्धान्त पर क्रान्तिकारी चोट बींसवी शताब्दी में पहुँची जब आइंस्टाइन ने यह सिद्ध किया कि पदार्थ शक्ति में परिवर्तित हो सकता है तथा सूर्य आदि महान् तारों में 'पदार्थ निरंतर प्रकाश में परिवर्तित हो रहा है'। इसके अतिरिक्त परमाणु के विश्लेषण से यह सिद्ध होता जा रहा है कि पदार्थ तथा शक्ति मूल में एक ही है। कुछ हो शक्ति तथा पदार्थ का भिन्न भिन्न अस्तित्व बहुत सीमा तक मान्य नहीं है।

शक्ति तीन प्रकार की देखने में आती है:—

(१) भौतिक शक्ति (Physical Energy)

इस शक्ति के विभिन्न रूप हैं जैसे, ताप, प्रकाश, ध्वनि, विद्युत, चुम्बकीय शक्ति, तथा यांत्रिक शक्ति।

(२) रासायनिक शक्ति (Chemical Energy)।

(३) जीवन-शक्ति (Biolorical Energy)

भौतिक शक्ति—विज्ञान के अनुसार ताप तथा गति एक दूसरे

से अभिन्न हैं। पदार्थ बाहर से देखने में चाहे स्थिर प्रतीत हों किन्तु जिन सूक्ष्म खण्डों से यह बना है वे निरंतर गतिमान् हैं। पदार्थ के भीतर अणु, अणुओं के भीतर परमाणु तथा परमाणुओं के भीतर ऐलेक्ट्रन निरंतर गतिमान् हैं। जब यह गति बढ़ती है तो ताप के रूप में प्रकट होती है। गति को मात्रा बढ़ने से ये कण एक दूसरे को धक्का देते हुए रोष भरने लगते हैं। पदार्थ द्रव रूप हो जाता है। फिर भी यदि गति बढ़ती चली जावे तो ये कण एक दूसरे से सम्बन्ध छोड़ कर अलग अलग हो जाते हैं तथा पदार्थ गैस का रूप धारण करता है गति न्यून होने पर ताप न्यून होता चला जाता है। पघाल विन्दु (MELTINGPRINT) के लगभग २४०° के नीचे तो यह गति प्रायः रुक ही जाती है, अतएव यह स्पष्ट है कि पदार्थ को ऐसी अवस्था में रखने के लिये जब कि उसके योग बन सकें थोड़े ताप मान की आवश्य-कता है। पघाल विन्दु से २०० अंश नीचे पदार्थ ठोस और निष्क्रिय हो जाता है तथा ३०००° का ताप मान सब पदार्थों को गैस रूप में बदल देता है। पृथ्वी पर तापमान ०° से कुछ नीचे से लेकर १००० से कुछ ऊपर तक रहता है। यही कारण है कि यहाँ पदार्थ के असँख्य योग या मिश्र मिलते हैं तथा जीवधारियों का होना भी सम्भव है।

वैज्ञानिकों ने ऐसी अनेक किरणों का खोज निकालना है जो आकाश में १,८६,००० मील प्रति सेकिंड की गति से चलती हैं। इनमें साधारण प्रकाश की लहरों के अतिरिक्त रेडियो तथा बेतार के तार की तरंगें भी सम्मिलित हैं। ये तरंगें विभिन्न तरंग लम्बान (Wave length) की होती है। प्रकाश के विभिन्न वर्णों का कारण तरंगों के लम्बान का भेद है जैसे हरी किरण का लम्बान २/१ लाख इंच है तथा लाल का ३/१ लाख इंच। परमाणु के विवरण में हमने एक किरण आदि का जो उल्लेख किया है उनका लम्बान और भी छोटा होता है। हम आँख से केवल प्रकाश की किरणों ही को देख सकते हैं क्योंकि वे

स्थूल होती हैं। इसी गति से आकाश में गतिमान वाली अन्य किरणों को हम नहीं देख पाते। प्रकाश ही द्वारा आकाश तथा विश्व के सभी पदार्थों का अन्वेषण हो सकता है। जीवित पदार्थ के निर्माण में भी प्रकाश का बड़ा हाथ है। कितने ही वैज्ञानिक तो प्रकाश की गति को पदार्थ की गति की सीमा बतलाते हैं।

भौतिक शक्तियों में युगान्तर उपस्थित करने वाली महान् शक्ति विद्युत् है। यह बीसवीं शताब्दी की बड़ी खोज है तथा इस अद्भुत शक्ति को अभी वैज्ञानिक भी पूर्ण रूप से समझ नहीं सके हैं। विद्युत् इस समय मनुष्य के सब से अधिक काम में आने वाली शक्ति है। तार, फोन, रेडियो, स्वयं चालित यँत्र आदि सब इसी शक्ति पर अवलम्बित हैं। विद्युत् के साथ कार्य करने वाली दूसरी शक्ति चुम्बकीय शक्ति है। चुम्बक या चुम्बकीय लौह (magnet) इसी शक्ति से लोहे को आकर्षित है। ये दोनों शक्तियाँ सम्मिलित होकर संसार में कठिन से कठिन कार्य कर लेती हैं। इस समय बड़े बड़े कारखाने, जहाज़, रेल-गाड़ियाँ, मोटरें आदि इन्हीं दो शक्तियों पर अवलम्बित हैं। परमाणु विश्लेषण में अभी ऊपर यह बतलाया गया है कि परमाणु एलेक्ट्रन अर्थात् ऋण विद्युत, प्रोटन अर्थात धन विद्युत् तथा न्युट्रन (समानात्मक) विद्युत से बने होते हैं। इस प्रकार विद्युत वास्तव में संसार के निर्माण का मूल तत्व है। हम जो कुछ देख रहे हैं वास्तव में वह सब विद्युत्मूलात्मक होने से विद्युत् ही है। विद्युत जहाँ तरंग है वहाँ कण भी हैं। यद्यपि आकाशीय विद्युत् सभी जातियों को प्राचीन काल से ज्ञात थी किंतु यह नवीन विज्ञान के अन्वेषण ही से पता लगा कि उसका वास्तविक स्वरूप और धर्म क्या है।

भौतिक शक्ति का ही एक रूप यांत्रिक शक्ति है। इसके अंतर्गत दबाव तथा गति दोनों ही की शक्तियाँ सम्मिलित हैं। जिस प्रकार दबी हुई वाष्प तेल, गैस एंजन को चालित सकती है। फैली हुई वाष्प आदि

इस शक्ति को प्रदर्शन नहीं कर सकतीं। खींचा हुआ धनुष या गुलेल प्राणी के लिये भयप्रद है अन्यथा नहीं। दूसरे स्थिर रेल, मोटर आदि से कोई भय नहीं किन्तु इन्हीं के गतिमान् होने से जो शक्ति दिखाई पड़ती है वह बहुत बड़ी है।

रासायनिक शक्ति के विषय में लिखा जा चुका है। जीवन-तत्व का वर्णन अन्यत्र है।

शक्ति का दाता सूर्य:—आकाश में असंख्य सूर्य इतने बड़े परिमाण में शक्ति प्रसृत कर रहे हैं कि हम अनुमान भी नहीं लगा सकते। हमें इन असंख्य सूर्यों से विशेष शक्ति लाभ नहीं हो सकती। हमारे सौर मंडल में केन्द्रस्थ सूर्य ही हमारा शक्ति दाता है। सूर्य से निरन्तर तापधारा निकलती रहती है जिससे निःसंदेह ही पृथ्वी पर जीवन का प्रादुर्भाव हुआ है। इस प्रकार प्राणी मात्र में जो जीवन शक्ति विद्यमान है उसका उद्गम स्थान सूर्य ही है। सूर्य की शक्ति से वनस्पति उस जीवन तत्व का निर्माण करते हैं जिस पर अन्य सब प्राणी अवलम्बित हैं। जहाँ तक जल प्रपातों तथा चलित वायु की शक्ति का प्रश्न है ये दोनों ही शक्तियाँ केवल सूर्य पर अवलम्बित हैं। सूर्य के ताप ही के कारण एक बड़ी जल राशि प्रतिवर्ष समुद्र से उठ कर पर्वतों तथा स्थल पर जा पहुंचती है। यही जल प्रपातों के रूप में बहती है। जल प्रपातों से जो विद्युत् निकलती है उससे कितने ही काम चलते हैं। भाप की शक्ति के आविष्कार से पहले वायु ही जहाजों को चलाती रहती थी। यूरोप एवं अमरीका में वायु-चक्कियाँ (Windmills) होती हैं जिससे वायु-शक्ति से आटा पीसने के अतिरिक्त विद्युत्-निर्माण आदि अन्य कार्य भी किये जाते हैं। वायु का चलना सूर्य के ताप ही से होता है। इनके अतिरिक्त पृथ्वी पर जो कोयला तथा तेल मिलता है वह प्राचीन काल के वृक्ष तथा जीवों के पृथ्वी के भीतर दब जाने के कारण से उत्पन्न हुआ है। सूर्य का

इनकी उत्पत्ति में भी बड़ा हाथ है। कोयला तथा तेल मनुष्य के काम में आने वाली शक्ति के उत्पन्न करने वाले पदार्थ हैं। मोटरें तेल ही से चलती हैं तथा वायुयान की भाप तो संसार भर में रेल की चलाने वाली बनी हुई है।

हम जिस युग में निवास कर रहे हैं उसमें शक्ति के रूप का परिवर्तन कर डालना भी सम्भव है। जल प्रपात में जल जिस असाधारण झोंके से गिर रहा है उसकी शक्ति को डाइनेमो (Dynamo) नामक यंत्र से हम विद्युत में परिवर्तन कर लेते हैं। इसी प्रकार कोयले, लकड़ी, तेल आदि की ताप-शक्ति का परिवर्तन विद्युत में हो सकता है। इस अद्भुत विद्युत शक्ति को हम एक बड़ी द्रुत गति से तार द्वारा सैकड़ों मील तक ले जा सकते हैं तथा निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच कर फिर यांत्रिक शक्ति में परिवर्तित कर सकते हैं। विद्युत् शक्ति को चुम्बकीय शक्ति में परिवर्तित कर भार वहन करना बड़ा सरल हो जाता है। बिजली की रेल वास्तव में विद्युत् शक्ति को चुम्बकीय शक्ति में परिवर्तित करने ही से चलती है। विद्युत् को यदि सूक्ष्म तार के गुच्छे (Coil) में से फेंकें तो अणुओं के संघर्ष से ताप शक्ति में परिवर्तित हो जाता हैं। अतएव विद्युत से एक प्रकार की अंगीठियाँ, भट्टियाँ, रजाइयाँ आदि बनाई जाती हैं जो अत्यन्त शीतल प्रदेशों में उपयोगी सिद्ध हुई हैं। शक्ति-रूपान्तर एक मनोरंजक विषय ही नहीं प्रत्युत बीसवीं सदी के महान् सफल अन्वेषणों में से एक है।

आकाशीय विद्युत्:—विद्युत् शक्ति अन्वेषण में एक क्रान्तिकारी सफलता यह हुई है कि वैज्ञानिकों ने उन विद्युत् चुम्बकीय लहरों को खोज निकाला जो दिगन्त व्यापी हैं। परमाणुओं के अतिरिक्त विद्युत्कण आकाश में भी व्याप्त हैं तथा इन कणों को गतिमान करने से प्रकाश के समान गति की जो लहरें उत्पन्न होती हैं वे ही रेडियो आदि में काम कर रही हैं आकाशीय विद्युत्तरंगे प्रकाश-किरणों से महान् सा

मंजस्य रखती हैं किन्तु आँखों द्वारा देखी नहीं जा सकती हैं। वस्तुतः ध्वनि को एक यंत्र के द्वारा आकाशीय लहरों में परिवर्तित कर देते हैं तथा ये लहरें आकाश में १, ८६, ००० मील प्रति सेकंड की गति से ध्वनि को ले जाती हैं। प्रत्येक रेडियो में इन आकाशीय लहरों को फिर से ध्वनि-लहरों में परिवर्तित करने का यंत्र लगा रहता है। अब ध्वनि के अतिरिक्त प्रकाश किरणों को भी इन आकाशीय लहरों में परिवर्तन करना सम्भव है। इस प्रकार से ध्वनि के साथ साथ वक्ता या गायक को देखना भी संभव होगा। अभी तक यह विद्या अधिक समुन्नत नहीं है फिर भी लगभग एक सहस्त्र मील पर बैठे गायक को बिना तार के देखा जा सकता है। शीघ्र ही इनमें उन्नति की बड़ी सम्भावना है। इन आकाशीय विद्युत्चुम्बकीय लहरों द्वारा अनेक प्रकार की सुविधाएं होंगी। हम अप ा ार पर खड़े आगन्तुक को; या बैठक में किसी सज्जन को अपने शयन गृह से ही देख लेंगे। माताएँ रसोई घर में भोजन बनाते समय शिशु गृह में सोये शिशु को देख लेंगी। हम छोटे से हस्तगत टेलीफून से घर के भीतर किसी भी मनुष्य से बात कर सकेंगे यदि उसके पास भी वैसा ही फोन हो। दूरवर्ती देशों में होने वाली घटनाओं को—मैच, सभा; परेड आदि को—अपने घर बैठे देख सकेंगे।

अध्याय ४

जीवित पदार्थ पर एक दृष्टि

जीव तथा अजीव—यह स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि संसार की समस्त वस्तुएँ दो भागों में विभक्त की जा सकती हैं—१. जीवित वस्तुएँ या जीव धारी, २. निर्जीव वस्तुएं। सारा संसार जड़ तथा चेतन दो भागों में विभक्त दिखाई पड़ता है। कुत्ते, मनुष्य, वृक्ष पौधे जीवित प्राणी हैं। मेज़, कुर्सी, मिट्टी, पत्थर आदि निर्जीव पदार्थ हैं। जीवित तथा निर्जीव पदार्थों में क्या भेद है? यदि हम यह कहें कि जीवित प्राणी चल फिर सकते हैं तो यह ठीक नहीं। मशीन या इंजन भी चल फिर सकते हैं तथा गति रखते हैं। किन्तु इंजन जीवित नहीं है। वृक्ष चलते नहीं किन्तु जीवित हैं। जीवधारी वे हैं जो अपना शरीर स्वयं बनाते हैं, उसकी क्षति स्वयं पूरी करते हैं, जो दुःख सुख का न्यून या अधिक अनुभव करते हैं तथा अपनी सन्तान उत्पन्न करते हैं। यदि हमारे शरीर पर कोई आघात हो जाय तो शरीर उसकी न्यूनता को पूर्ण करता है। हमारा शरीर स्वयं भीतर से बढ़ता है तथा शरीर उससे स्वयं ही परिश्रम करके अपने लिये भोजन एकत्रित करता जुटाता है तथा उससे अपने को पुष्ट करता है। निर्जीव पदार्थ ऐसा नहीं कर सकता।

देखने में जीवों तथा निर्जीव वस्तुओं में महान् भेद दिखलाई पड़ता है किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। कितने ही जीवधारी ऐसे हैं जो जड़ वस्तुओं के से प्रतीत होते हैं। जहाँ तक अधिकतर वृक्ष पौधे तथा पशुओं का प्रश्न है हम जीव तथा अजीव में स्पष्ट रूपेण

भेद कर सकते हैं किन्तु अनेकानेक कीटादिक तथा उनसे भी छोटे प्राणी ऐसे हैं जो निर्जीव पदार्थ के इतने समीप हैं कि उनके जीवित होने तक में सन्देह हो जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ पौधों में एक प्रकार का प्रोटीन कभी कभी मिलता है जो स्वयं अपनी मात्रा बढ़ाने की शक्ति रखता है। यह प्रोटीन जीव धारी के समान बढ़ सकता है किन्तु और कोई गुण नहीं रखता। कुछ वैज्ञानिक इसे जीवित मानते हैं तथा कुछ इसे निर्जीव कहते हैं। ऐसे उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि पृथ्वी पर जो सबसे पहले जीवधारी थे वे निर्जीव पदार्थ से निर्माण हुए होंगे।

जीवन की सीमाएं—जीवन या जीव धारियों का उत्पन्न होना तथा उनका बढ़ते जाना या जीवित रहना इस विश्व में एक अत्यन्त दुस्तर वस्तु है। पृथ्वी के साथ आपने जहाँ दूसरे ग्रहों का वर्णन पढ़ा था वहाँ देखा था कि ऐसे ग्रह हमारे सौर मंडल में भी न्यून हैं जहाँ जीवधारी हो सकते हैं। जीवधारियों के उत्पन्न होने के लिये है १० से १००^0 सेन्टीमीटर तक का तापमान चाहिये। यदि गर्मी इससे कम या अधिक है तो जीवन नहीं रह सकता। कुछ लोगों ने यह धारणा भी लगाई थी कि अन्य ग्रहों पर वहाँ के ताप शीत के अनुसार प्राणी हो सकते हैं। किन्तु यह बात निर्मूल है। यदि ऐसा हो सकता तो पृथ्वी पर भी दक्षिणी ध्रुव पर शीतल प्रदेश में रहने वाले मनुष्य उत्पन्न हो जाते किन्तु वहाँ वनस्पति के उत्पन्न होने तथा जीवित रहने के साधन भी नहीं हैं।

ताप की सीमा के अतिरिक्त पृथ्वी पर जीवों के जीवित रहने तथा बढ़ने के स्थान की भी सीमा है। पृथ्वी पर केवल दस फ़ीट की गहराई तक ही जीव पाये जाते हैं तथा वायु-मंडल में कुछ मील ऊपर उड़ने पर कोई प्राणी जीवित नहीं रह सकता। ऊँचे उड़ने वाले वायुयान चालक श्वासप्रश्वास के लिये वायु अपने साथ ले जाते हैं।

हिमालय की हिम आच्छादित चोटियों पर कोई प्राणी जीवित नहीं रह सकता।

समय के अनुसार भी जीवन सीमित है। पृथ्वी को सूर्य से टूट कर भिन्न हुए दो अर्ब वर्ष हो गए किन्तु सबसे पूर्व जीवधारी कदाचित् ४० करोड़ वर्ष पहिले ही यहाँ उत्पन्न हुए। विश्व के विषय में पढ़ते समय तुमने अर्बों खर्बों वर्ष के तारे तथा नीहारिकाओं का वर्णन पढ़ा है। जीवधारी उनकी तुलना में कल कैसे हैं। सूर्य तथा पृथ्वी की उष्णता जिस परिमाण से न्यून हो रही है, उससे ये स्पष्ट है कि सभी जीवधारी सूर्य तथा पृथ्वी के नष्ट होने से अर्बों वर्ष पहिले समाप्त हो जायेंगे।

यदि हम एक और गणना देखें तो जीवधारियों पर एक और भी सीमा दिखलाई पड़ती है। पृथ्वी पर अनेकों ही जीवधारी उत्पन्न हुये हैं और अब उनके चिन्ह भी कठिनता से मिलते हैं। जो जातियाँ इस समय हैं उनके भी लुप्त हो जाने की सम्भावना स्पष्ट दीख रही हैं तथा यह आवश्यक है कि किसी प्रकार नवीन जीव आगे चल कर उत्पन्न हों। इस दृष्टि से भी जीवन एक सीमित वस्तु है।

क्या जीवन विश्व का उद्देश्य हैः—अब यह प्रश्न उठता है कि क्या जीवधारी उत्पन्न करना इस महान् विश्व का उद्देश्य है? या जीवधारी हों न हों विश्व को इससे कोई अभिप्राय नहीं। इस प्रश्न का पूरा उत्तर तो हम तब पा सकेंगे जब हम नवीन यंत्र बनाकर न्यून से न्यून सौर मंडल के ग्रहों को इतनी अच्छी प्रकार देख लें जैसे कि हम चन्द्रमा को देखते हैं। यदि अन्य ग्रहों में सृष्टि के चिन्ह मिलें तो भी किसी सीमा तक हम जीवन को संसार का उद्देश्य मान लें। हमारे यंत्र इतने निर्बल हैं कि हम सौर मंडल को भी नहीं देख पाते। अनुभव से तथा अब तक के मिले प्रमाणों से वैज्ञानिक यह कहते हैं कि विश्व जीवधारी

उत्पन्न करने के लिये नहीं है। जीवधारियों का उत्पन्न हो जाना एक मार्ग चलती बात है।

यदि हम अपनी पृथ्वी को ही देखें तो हम यह कह सकते हैं कि यदि उसमें क्षुद्र सा भी भेद होता तो जीवधारी यहाँ भी उत्पन्न न होते। यदि यहाँ वायु मंडल ही इतना बड़ा तथा भारी न होता तो भी चन्द्रमा की भाँति पृथ्वी भी एक शेष सृष्टि होती। फिर जल, कार्बन, नमक आदि अनेक ऐसे तत्व हैं जिनके न्यून, अधिक या न होने से जीव उत्पन्न ही नहीं हो सकते थे या मान लो कि सूर्य से जितनी दूर पृथ्वी, मंगल आदि ग्रह हैं तनिक और दूर होते तो भी प्राणी होने कठिन थे। साराँश यह है कि जीवन निर्माण होने के लिये ऐसी विशेष सामग्री चाहियें कि जीवन का उत्पन्न होना विश्व में एक अत्यंत कठिन तथा केवल कहीं कहीं उत्पन्न होने वाली वस्तु है। इस लिए यही कहना उचित है कि विश्व जीव निर्माण करने के लिये नहीं है। जीवों की उत्पत्ति एक आकस्मिक घटना मात्र है।

चर और अचर सृष्टि-स्थूल दृष्टि में देखने पर जीवधारी दो भागों में विभक्त हैं—वनस्पति तथा प्राणी। इनके लिये अचर तथा चर शब्द भी काम में लाये जाते हैं। वृक्ष-पौधों तथा प्राणियों में स्थूल अन्तर यही कहा जा सकता कि प्राणी भ्रमण कर सकते हैं किन्तु वृक्ष-पौधे एक ही स्थान पर रहते हैं। किन्तु निरन्तर जल पर तैरने वाले ऐसे वनस्पति हैं जो अचर नहीं कहे जा सकते तथा अनेक क्षुद्र जीव भी ऐसे हैं जो इस वनस्पति की भाँति पानी की गति से उद्वेलित फिरते रहते हैं। अतः स्थूल दृष्टि से चराचर का भेद यद्यपि ठीक है तात्विक-वैज्ञानिक दृष्टि से यह बात निःसार जँचती है। अतएव वैज्ञानिकों ने वनस्पति तथा प्राणियों में और भेद खोज निकाले हैं।

प्राणी तथा वनस्पति दोनों ही जीवधारी हैं अतएव बहुत सी बातें ऐसी हैं जो दोनों में एक सी पाई जाती हैं। दोनों ही बाहर से

भोजन एकत्रित करते हैं तथा अपने शरीर द्वारा उस भोजन को शरीर वृद्धि तथा स्वास्थ्य के लिये काम में लाते हैं। दोनों ही अपने ढंग पर बढ़ते दुर्बल होते हैं तथा मर जाते हैं। प्राणी तथा वनस्पति दोनों ही साँस लेते हैं अर्थात् वायु को शरीर के लिये प्रयोग करते हैं। दोनों सन्तान उत्पन्न करते हैं तथा दोनों ही वीर्य से उत्पन्न होते हैं।

किन्तु वनस्पति में प्राणियों की भाँति अंग-प्रत्यंग नहीं होते। यह दोनों में महान् भेद है। यदि हम किसी पशु को देखें तो यह ज्ञात होगा कि उसका शिर शरीर का एक बड़ा आवश्यक भाग है। सोचने की विचारशक्ति मस्तिष्क में ही है। यहीं पर पशु की बड़ी आवश्यक इन्द्रियाँ होती हैं जैसे आँख, कान, नाक, जीभ आदि। पशु की सहायता के लिये उसके शरीर में और भी कितने ही आवश्यक अंग होते हैं। जैसे हृदय, यकृत, आमाशय, गुर्दे, ग्रन्थियाँ ये अंग भिन्न भिन्न कार्य करते हैं। पेड़ों में यदि अंगों के विचार से देखा जाये तो ठीक अंग एक भी नहीं। नीचे जड़ें पृथ्वी में धँस रही हैं तो ऊपर मोटे तने के पश्चात् शाखायें और पत्तियाँ। कभी कभी पत्तियों के पास फूल बीज भी लगते हैं। वृक्ष के ये भाग भी प्राणी के अंगों से इस बात में समान होते हैं कि कुछ वृक्ष कार्य करते हैं।

वनस्पति जीवनः—संसार में कोई भी प्राणी वनस्पति या अन्य प्राण को भक्षण किये बिना जीवित नहीं रह सकता किन्तु वनस्पति अपना भोजन सीधा का सीधा निर्जीव वस्तुओं से ले लेते हैं। प्राणी जीवन के लिये दूसरे जीव- धारी पर निर्भर है किन्तु वनस्पति जीव इतने कठोर नहीं हैं। 'जीवो जीवनस्य जीवनम्' जीव ही जीव का प्राण है, यह बात प्राणियों के लिये ही है वृक्ष-पौधों के लिये नहीं। ये मिट्टी पानी वायु आदि निर्जीव पदार्थों को खाकर अपना जीवित शरीर बना लेते हैं। इस बात में ये प्राणियों से समुन्नत हैं।

वृक्ष-पौधे क्या खाते हैं ? जनसाधारण यह समझते हैं कि वृक्ष अपना भोजन जड़ द्वारा ही प्राप्त करते हैं। यह बात पूर्णरूप से ठीक नहीं, तथा कुछ जल पर प्लावित वनस्पति ऐसे हैं जो अपना भोजन और जल वायु ही से ले लेते हैं। जड़ों द्वारा वनस्पति में जल तथा उसमें मिले हुए कुछ लवण आदि मिलते हैं तथा इनमें आवश्यक कार्बन वे अपनी पत्तियों द्वारा हवा मे खींच कर मिलाते हैं। इस प्रकार वे कार्बन मिले पदार्थों को ही खाते हैं तथा उन्हीं से इनका शरीर पुष्ट होता है। भोजन सामग्री से उचित रस बनाने के लिये प्राणीगण ताप से जो उनके शरीर में होता है सहायता लेते हैं किन्तु वनस्पति इस ताप को सीधे सूर्य की किरणों से लेकर जीवन रस बना लेते हैं। जीवन रस या प्रोटोप्लाज्म के निर्माण करने की यह शक्ति वनस्पति में तो है किन्तु प्राणी यह जीवनरस अन्य प्राणियों या वनस्पति को खाकर प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार दिन के समय जब वनस्पति को सूर्य-प्रकाश मिलता रहता है वे जड़ों से जल तथा खाद लेकर पत्तियों से कार्बन मिलाते रहते हैं। रात्रि होते ही वे अब इस भोजन सामग्रो के पाचन में लग जाते हैं तथा प्राणियों की भाँति कार्बन छोड़ने लगते हैं। इस साधन से वे कई ऐसे आवश्यक पदार्थ निर्माण करते हैं जो उनको ही क्या सारे जीवधारियों को चाहिये। केवल भेद यह है कि प्राणी ये पदार्थ वनस्पति से बने बनाये ले लेते हैं और वनस्पति इन पदार्थों के निर्माता हैं।

यह स्पष्ट है कि वनस्पति को प्रचुर वायु तथा सूर्य प्रकाश चाहिये। आगे चलकर हम यह भी पढ़ेंगे कि प्राणी भी शुद्ध वायु तथा सूर्य प्रकाश से लाभ उठा सकते हैं। वृक्ष-पौधों का तो जीवन ही इन दो पदार्थों पर निर्भर है। वैज्ञानिकों ने अंधकार में पौधे रखकर कितने ही

प्रयोग किये हैं तथा वे इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि बिना उचित सूर्य-प्रकाश के मिले इनका जीवन नहीं रह सकता।

वनस्पति का जीवन वायु तथा सूर्य प्रकाश पर निर्भर है अतएव उन्हें प्राणियों की भाँति कहीं चल कर जाने की आवश्यकता नहीं। चलने फिरने से ये पदार्थ कुछ अधिक नहीं मिल जाते। अतएव वनस्पति अपने स्थान पर स्थित रहते हैं। चलने फिरने में प्राणियों को कितनी ही इन्द्रियों की कान, आंख, नाक, आदि की आवश्यकता पड़ती है तथा उन्हें मस्तिष्क भी चाहिये। वनस्पति को इन सब वस्तुओं को कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।

वनस्पति की हीनावस्था:—वनस्पति प्राणियों से तुलना में नितान्त अयोग्य है। देखा जाय तो अपने शरीर के कारण वे अहिंसा के मानने वाले हैं। उन पर प्राणी चाहे कितना अत्याचार करें वे कभी प्रत्युत्तर या प्रत्याघात नहीं करते तथा न कर सकते हैं। उन का जीवन प्राणियों की दया, उदासीनता या स्वार्थ पर निर्भर है। कदाचित् इसी हीनता के कारण कुछ वृक्ष पौधों ने अपने भीतर प्राणियों को कष्ट देने के साधन निर्मित किये। अनेक वनस्पतियों में कण्टक पाये जाते हैं तथा कुछ तो मानो प्राणियों से इतने कुपित बैठे हैं कि उन्हें जो स्पर्श करता है उसके शरीर में विद्युत् सी दौड़ जाती है। अनेक ने फल उत्पन्न किये हैं। फिर भी वनस्पति की अहिंसा वृत्ति उन्हें संसार में सबसे अपंगु जीवधारी बनाये हुए है।

सेल् या जीवन का सब से छोटा कोष—सब से छोटा प्राणी सेल् है तथा बड़े प्राणी चींटी से लेकर हाथी तक केवल जीवित सेलों के समूह हैं। हमारे शरीर में जो हड्डियाँ या माँस है वह कोई निर्जीव पदार्थ नहीं किन्तु जीवित प्राणियों या सेलों का समूह है। सेल् जीवन की इकाई हैं। प्राणी दो प्रकार के होते हैं कुछ तो वे जिनका शरीर

केवल एक सेल् का बना हुआ है तथा कुछ वे जो एक से अधिक सेल के बने है जैसे कीट, पशु, पक्षी आदि। सेल एक बहुत छोटा सा प्राणी है, उससे छोटा और कोई नहीं हैं। वनस्पति भी एक प्रकार के सेलों से बने हैं जिनकी आकृति प्राणियों के सेलों से विभिन्न है।

सेल बहुत छोटा होता है। उसका परिमाण एक इंच का दस सहस्र वां भाग होता है। केवल आँख से अकेले सेल् का देखना कठिन ही नहीं असंभव है। अणु यंत्र से ही इसे देखा जा सकता हैं। इतना ही नहीं इस सेल के अंग प्रत्यंग तथा इसका जीवन मरण तथा बढ़ने का भी ज्ञान प्राप्त किया गया है। यद्यपि सेल् अत्यंत क्षुद्र होते हैं फिर भी जिन अणु-परमाणुओं के विषय में आप पढ़ चुके हैं उनसे सेल् बहुत बड़े होते हैं।

सेल् के शरीर में सारा पदार्थ जीवित नहीं होता। जीवित अणु जो सेल के भीतर होता है प्रोटोप्लाज्मका बना होता है। सेल् के अतिरिक्त प्रोटोप्लाज्म संसार में और कहीं नहीं पाया जाता है। इस जीवन तत्व के केन्द्र के बाहर चारों ओर क्षार सा जलीय पदार्थ भरा रहता तथा केन्द्र इसी तरह पदार्थ में तैरता रहता है। यह सेल् का छोटा सा समुद्र है जिसमें यह मल निकाल कर फैंक देता है। इस समुद्र से इस बात की स्मृति आ जाती है कि आरम्भ से सेल् क्षार समुद्र में उत्पन्न हुए थे तथा अपने शरीर के अशुद्ध तथा व्यर्थ पदार्थ उस समुद्र में फैंकते रहते थे। यद्यपि अब प्रत्येक जीवधारी के भीतर अर्बों सेल् एक साथ सहयोग देते हुए रहते हैं किन्तु वे अपना पहला धर्म छोड़ नहीं सके हैं।

सेल् किस तरह से एक से दो तथा दो से चार बनते चले जाते हैं इसका उदाहरण हम एक प्रसिद्ध सेल् से दे सकते हैं जिसे अमीबा कहते हैं। जब अमीबा अपनी संख्या बढ़ाने की इच्छा करता है तो उसका केन्द्र तथा कोष बढ़ने लगता है तथा बीच में से सिकुड़ना आरंभ

हो जाता है। फिर केन्द्र लम्बा सा हो जाता है तथा धीरे-धीरे टूटकर दो भागों में विभक्त हो जाता है। दोनों खण्ड अलग होकर बीच में सिकुड़ने से जो दो गोल भाग बनते हैं वे उनके मध्य में चले जाते हैं तथा सेल् टूटकर दो सेल् बन जाते हैं :—

१—पूरा एक सेल। २. दो होने के लिये बढ़ रहा है। ३. बीच में से सिकुड़ गया तथा केन्द्र लम्बा हो गया। ४. केन्द्र टूट गया। ५. टूटे केन्द्र नवीन गोलों के बीच में चले गये। ६. बीच में से और सिकुड़ा ७. दो पूरे सेल।

केन्द्र तथा उसे आवृत करने वाला क्षार समुद्र सेल के दो विशेष भाग हैं। सेल् छोटा सा अवश्य है किन्तु पशु की भाँति इसका शरीर बड़े जटिल तत्वों से बना है। केन्द्र के पास क्षार समुद्र में एक छोटा सा उपकेन्द्र होता है जिसे सेन्ट्रीसोम(Centrosome) कहते हैं। जब सेल एक से दो होने का प्रयास करता है तो सबसे पहिले उपकेन्द्र के दो खण्ड हो जाते हैं तथा केन्द्र (Nucleus) टूटकर दो भागों में विभक्त होता है। केन्द्र के भीतर रंग पकड़ने वाला पदार्थ होता है जो धागों के रूप में फैला रहता है। जब सेल टूटकर दो भागों में विभक्त होता है तो यह रंग वाला पदार्थ या क्रोमाटीन (Chromatin)छोटे-छोटे खण्डों में बंट जाता है जिन्हें क्रोमोसोम (Chromosome) या रंजित तन्तु कहते हैं। ये रंजित-तन्तु पशु-पक्षियों की जाति से विशेष सम्बन्ध रखते हैं।

मनुष्य, वन मानुष, घोड़ा, गधा आदि जितनी जातियाँ हैं उनके शरीर के सेलों के केन्द्र में रंजित-तन्तुओं की संख्या निश्चित होती है। मनुष्य के शरीर के सेलों में केन्द्र में ४८ क्रोमाटीन रंजित-तन्तु होते हैं। किसी में भी ये कम या अधिक नहीं हो सकते। अन्य जातियों के सेलों में रंजित-तन्तुओं की संख्या उन्हीं जातियों के अनुसार

होती है। अर्थात् घोड़े के सेलों में क्रोमोसोमों की जो संख्या होगी वह किसी भी अन्य जाति के सेलों में नहीं हो सकती।

इसके अतिरिक्त यह भी विशेषता पाई जाती है कि प्रत्येक जाति के सेलों में अलौकिक प्राकृति के क्रोमोसोम बनते हैं तथा क्रोमाटीन से टूटकर क्रोमोसोम बनने का ढंग भी भिन्न-भिन्न होता है। सेलों के टूटकर दो बनते समय क्रोमाटीन के टूटने का ढंग तथा क्रोमोसोमों की प्रकृति तथा संख्या प्रत्येक जाति में और जातियों से अलग होते हैं तथा सदा एक से रहते हैं। संसार में जो भिन्न-भिन्न प्रकार के जीवधारी मिलते हैं उनका मूल कारण सेल् के क्रोमोसोम से प्रतीत होते है। सेल् इस प्रकार से एक अटूट प्राकृतिक नियम का पालन कर रहे हैं जिसके द्वारा संसार की विविध जातियाँ स्थित हैं।

पृथक् पृथक् जातियों में जो मूल भेद हैं वह उनके सेलों में क्रोमोसोमों की संख्या है। इस खोज से वैज्ञानिकों ने यह बात जानने का प्रयास किया है कि सेलों में यह भेद कैसे पड़ गया तथा भिन्न-भिन्न जातियाँ कैसे बन गईं। एक वैज्ञानिक ने मुर्गे की वीर्यसेल में एक्स किरण (X-RAY) डालकर क्रोमोसोमों की संख्या में परिवर्तन कर दिया जिससे एक नई जाति उत्पन्न हो गई तथा उस जाति के मुर्गे उत्पन्न हुए। अतएव यह स्पष्ट है कि जाति भेद में क्रोमोसोम की संख्या एक प्रधान वस्तु है।

प्राणियों के शरीर वास्तव में सेलों के समूह हैं। जिसे हम मनुष्य कुत्ता, गधा, घोड़ा आदि कहते हैं वह कोई स्वतंत्र जीवित प्राणी नहीं है किन्तु असंख्य जीवित प्राणियों का एक समूह मात्र है। ये जीवित सेल एक सहयोग में रहकर अपना जीवन भी व्यतीत कर रहे हैं तथा उस पशु को एक स्वतंत्र व्यक्तित्व दे रहे हैं। इस सहयोग में भिन्न भिन्न प्रकार के सेल् अपना अपना नियमित कार्य करते रहते हैं। जैसे मनुष्य के शरीर में हृदय के सेल निरन्तर हृदय को चला रहे हैं,

रक्त को शरीर में फेंक रहे है तथा किसी सीमा तक उसे स्वच्छ भी बना रहे हैं, किन्तु गुर्दों के सेल् रक्त से निरन्तर गंदी वस्तुएं निकाल कर शरीर के बाहर फेंक रहे हैं। सहयोग से रहने में प्रत्येक प्रकार के सेल् अपने काम में बड़े निपुण हो गये हैं किन्तु इस सहयोग से सेलों को हानि भी बहुत उठानी पड़ी है।

क्या सेल् अमर है—वास्तव में देखा जाये तो प्रत्येक सेल एक स्वतंत्र प्राणी है। यह अपना भोजन स्वयं ग्रहण कर सकता है तथा जीवित रह सकता है। स्वतंत्र सेल के मरने का कोई कारण नहीं। एक प्रकार से सेल की मृत्यु कभी नहीं होती क्योंकि स्वतंत्र सेल् का मृत शव नहीं दिखलाई पड़ता। सेल अपने शरीर को विभक्त करके उसके दो सेल बना देता है। इस प्रकार पिछले मातृ सेल का व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है तथा दो स्व व्यक्ति बन जाते हैं। इस प्रणाली में सेल की मृत्यु नहीं देखी जाती तथा इस प्रकार सेल् अमर है।

फिर यह प्रश्न उठता है कि जब हमारा शरीर ऐसे अमर सेलों का एक समूह है तो फिर मनुष्य अमर क्यों नहीं होता। इसका कारण यह है कि स्वतंत्र सेल् को अपने भीतर का मल फेंकने के लिये स्थान रहता है तथा इस प्रकार वह अपने जीवन को सदा चलाता रहता है। किन्तु मनुष्य तथा पशु-पक्षियों के शरीर में सेल् एक बहुत बड़ी संख्या में समीप-समीप रहते हैं। यहाँ उन्हें स्वतंत्र घूमने तथा मल छोड़ने का स्थान ही नहीं है। अतएव वे अपना मेल वहाँ छोड़ते रहते हैं तथा इसी कारण से उनकी दशा बिगड़ती चली जाती है। शरीर में प्रत्येक सेल् को उचित भोजन पहुंचाने का प्रबन्ध रहता है किन्तु स्थान-स्थान पर मल भर जाने से यह प्रबन्ध भी बिगड़ने लगता है। इस प्रकार बहुत से सेल दुर्बल होकर नष्ट हो जाते हैं।

एक सेल् वाले प्राणी——आज भी संसार में अनेक प्रकार के सेल् स्वतंत्र जीवन व्यतीत करते हैं। प्रारम्भ में तो कदाचित सब सेल् स्वतंत्र थे तथा उन्हीं में से कुछ सेलों ने संभव है मिलकर इसलिये रहना चाहा कि वे अकेले सेलों से बलशाली होकर अच्छा जीवन व्यतीत करें। यदि सेलों में यह सहयोग प्रवृत्ति न होती तो कदाचित् एक भी वृक्ष-पौधे या प्राणी का जन्म न होता।

एक सेलीय जन्तुओं सबसे प्रसिद्ध अमीवा है जिसके विषय में थोड़ा सा आप पढ़ चुके हैं। अमीवा के उदाहरण से हम यह भी जान सकते हैं कि अकेला सेल् भी अपने शरीर को खूब बढ़ा लेता है। अमीवा $\frac{1}{4}$ इंच तक का भी पाया जाता है यद्यपि अधिकतर सेल् $\frac{1}{1000,00}$ इंच के होते हैं। अमीवा खाद्य वस्तु को आलिंगन कर अपने शरीर में मिला लेता है तथा अपने शरीर के एक गोल से छिद्र को फाड़कर मल बाहर फेंकता है

एक सेलीय जन्तुओं में बड़े प्रसिद्ध वेक्टीरिया नामक प्राणी हैं। ये छोटे से सेल हैं जो अन्य सेलों से भी अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं इनका आकार $\frac{1}{25,000}$ इंच के लगभग होता है। फिर भी विभिन्न प्रकार के वेक्टीरिया में आकृति का भेद होता है तथा आकृति से इनकी पहचान भी हो जाती है। मनुष्य जिन संक्रामक रोगों से नष्ट होते रहते हैं, उनके मूल कारण विभिन्न प्रकार के वेक्टीरिया ही हैं। मलेरिया, हैज़ा, तपेदिक़ या क्षयरोग, प्लेग आदि इन्हीं छोटे-छोटे विषैले जन्तुओं से उत्पन्न होते हैं। आप आगे पढ़ेंगे कि मनुष्य को इनसे विजय प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई हो रही है किन्तु मनुष्य वेक्टीरिया से निरन्तर युद्ध कर रहा है।

फिर भी अधिकाँश बेक्टीरिया हमारे लिये लाभ प्रद हैं। वेक्टीरिया वायु से नाइट्रोजन (Nitrogen) लेकर भूमि में मिलाकर उसकी शक्ति को बढ़ा देते हैं। वे व्यर्थ की वस्तुओं को-कूड़े आदि को

जीर्ण कर या बो भूमि में मिला देते हैं या वायु में फेंक देते हैं। बहुत प्रकार के बेक्टीरिया चट्टानें, ईंट, पत्थर भी भक्षण कर डालते हैं तथा उन्हें मिट्टी बना देते हैं। इन्हीं दिनों एक विशेष प्रकार के बेक्टीरिया का पता लगा है जिसे पेन्सिलिन कहते हैं। यह बेक्टीरिया विषाक्त तथा रोग फैलाने वाले बेक्टीरिया का महान् शत्रु है। वैज्ञानिकों ने इस बेक्टीरिया को बड़े परिमाण में उत्पन्न करके इन्जेकशन तथा दवाएँ बनाई हैं जो बहुत सफल सिद्ध हो रही हैं। इसके विषय में आप आगे पढ़ेंगे।

कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि कदाचित् बेक्टीरिया ही आदि प्राणी हैं। वे अन्य सेलों की भाँति एक से टूटकर दो होते रहते हैं तथा यदि सबके सब जीवित रह जावें तो २४ घंटे में टूटकर बढ़ते-बढ़ते एक बेक्टीरिया से २,४८.००,००,००,००,००० बेक्टीरिया हो जावें। बेक्टीरिया १२०° सेंटीग्रेड से लेकर—१६०० तक भी जीवित रह सकते हैं। यदि ऐसे कारण बन जाते हैं कि कोई बेक्टीरिया जीवित रहने में कठिनाई अनुभव करते हैं तो वे अपने आपको अंकुर या स्पोर (Spores) के रूप में बदल कर निर्जीव सी दशा में पड़े रहते हैं तथा वातावरण के अनुकूल होते ही फिर जी उठते हैं। बेक्टीरिया बहुत से चमत्कार दिखलाते हैं। वे गोधूमचूर्ण का खमीर बनाते हैं, दूध को जमाकर दही कर देते हैं सिरका तथा मदिरा बनाते हैं। पुवालों तथा फूस के ढेर में एक विशेष ढंग से आग लगा देते हैं। कपास की राशि भी फूँक देते हैं। इसलिये रुई आदि के कारखानों में बेक्टीरिया को नष्ट करने के लिये विशेष कार्यवाही की जाती है।

अध्याय ५

जीवन की प्रगति

छोटे से छोटे जीवकोष को हम सेल् कहते हैं। किन्तु सेल् जैसा जीव जिसकी बनावट सरल नहीं है पृथ्वी पर कैसे उत्पन्न हुआ ? किसने पहले बनाया ? कहां से आया ? ये बड़े जटिल प्रश्न हैं। सेल् किसी पदार्थ से उत्पन्न होते नहीं देखा गया प्रत्युत एक सेल् को टूट कर दो में विभक्त होते देखा गया है। वैज्ञानिक अनेक खोजों के पश्चात् भी जीवित सेल् नहीं बना सके हैं। कार्बन जो सभी जीवित प्राणियों के शरीर का आवश्यक भाग है अनेक तत्वों तथा पदार्थों के साथ मिला कर देखा गया है किंतु निर्जीव पदार्थ के साथ सेल का निर्माण नहीं हो सका। जीवन तथा जीवित पदार्थ संसार में कहाँ से आ गये यह एक ऐसा भेद है कि जिस पर से आवरण नहीं उठ सका है।

एक पिछले अध्याय में हम एक विषैली या विरस (Virus) प्रोटीन के विषय में पढ़ आये हैं जो अपनी मात्रा स्वयं बढ़ा लेती है किन्तु उसमें जीवधारियों के अन्य लक्षण नहीं मिलते। यह पदार्थ जीवित तथा निर्जीव पदार्थ की सीमा पर प्रतीत होता है तथा संभव है कि किसी ऐसे पदार्थ से प्रथम सेल की उत्पत्ति हुई हो।

डा० हक्सले (Huxley) ने कहा है—जब हम वैज्ञानिकों पर यह क्रोध प्रकट करते हैं कि वे जीवित सेल् बनाने में असमर्थ

हैं तो वास्तव में हम अपनी ही अज्ञानता प्रदर्शित करते हैं। किसी भी प्रकार का सजीव पदार्थ बनाने में हम अर्बों वर्ष की उस विकास धारा को भूल जाते हैं जो आज कल के जीवित सेलों के ऊपर हो चुकी है। ऐसा समय आ सकता है जब वैज्ञानिकों की प्रयोग शाला में से जीवित सेल उत्पन्न होकर निकल सकेंगे। उदाहरणार्थ यदि किसी छाले में से वे सब बेक्टीरिया धोकर स्वच्छ कर लिये जायें जो अणुवीक्षण यंत्र (Microscope) से दिखाई पड़ते हैं तथा जो इस बेक्टीरिया से रहित शेष है उसे स्वस्थ शरीर में डाल दिया जाय तब भी आपत्ति खड़ी हो जाती है। अर्थात् इस बेक्टीरिया रहित रस म कोई ऐसी वस्तु है जो बेक्टीरिया खाकर बढ़ जाती है। वैज्ञानिक इस वस्तु का पूरा अनुमान नहीं लगा सके हैं। वे इसे बेक्टीरिया-भोजक कहते हैं तथा जब तक यह वस्तु बेक्टीरिया के संसर्ग में नहीं आती तब तक इसमें जीवन के चिन्ह नहीं दिखाई पड़ते। किंतु निर्जीव पदार्थ से इस बात में भिन्न है कि यह जीवित बेक्टीरिया को खाकर बढ़ जाती हैं। हो सकता है कि ऐसे पदार्थ से ही पृथ्वी पर पहले सेल की उत्पत्ति हुई हो। प्रोफेसर हाल्डेन का विचार है कि वाह्य कालीन किरणों से ऐसे पदार्थों का सम्मिश्रण हुआ जिससे अधिक अणुभार वाले पदार्थों की उत्पत्ति हुई तथा जीवन तत्व निर्मित हुआ।

जीवन प्रगति शील है—उपरोक्त विचार धारा जीवन की उत्पत्ति पर बहुत कुछ प्रकाश देती है। यद्यपि वैज्ञानिक यह नहीं समझ सके हैं कि किस प्रकार निर्जीव पदार्थ से सजीव पदार्थ बना किन्तु इस प्रश्न के उत्तर के समीप ही जा पहुँचते हैं। दूसरा महान् प्रश्न है कि जब भोजक या विरस प्रोटीन जैसे किसी पदार्थ से एक सेलीय जीव बन गये तो उसी अवस्था में क्यों नहीं रहे? उन्होंने एकसेलीय सीधे साधे जन्तु से बढ़ कर विशाल बहुसेलीय वृक्ष तथा जीव क्यों

निर्माण किये ? केवल जटिल अंगों तथा आकृतियों वाले जीव क्यों बने तथा क्यों जीवित रहे तथा जीवन शृंखला में नवीन शृंखलायें क्यों लगती चली गईं और लग रही हैं ? नोबल पुरस्कार के विजेता प्रोफेसर बर्गसन् ने सृष्टिमय विकास [Creative Evolution] नामक पुस्तक में जीवधारियों की "जीवनाकाँक्षा" ही को इस जीवमय संसार की उन्नति, परिवर्तन तथा परिवर्धन का कारण ठहराया तथा बर्नार्ड शा नामक प्रसिद्ध लेखक ने अपने कई नाटकों में मनुष्य की प्राचीन तथा भविष्यत् उन्नति का आधार इसे ही माना। किन्तु वैज्ञानिक विचारों पर अपने सिद्धाँत नहीं रखते। वे परीक्षा तथा विश्लेषण पर ही चलते हैं तथा चलेंगे। जीवन की प्रगतिशीलता का भी वे कोई वैज्ञानिक कारण तथा आधार खोज निकालेंगे। उनका परीक्षण सिद्ध करता है कि जीवन एक सा नहीं रहता। वह परिवर्तनशील है। आज जो जीवधारी इस संसार में हैं वे अबसे पचास सहस्र वर्ष पहले किसी और अवस्था में थे तथा उससे पहले किसी और अवस्था में थे तथा उससे पहले किसी और ही में। यह खोज हमें इस परिणाम पर पहुँचाती है कि आज से पचास सहस्र वर्ष पश्चात् भी जीवधारियों की यही दशा रहनी असंभव हैं। परिवर्तन जीवन-तत्व का विशेष लक्षण है। जीवित सेलों में परमाणुओं जैसी संकीर्णता नहीं है वैज्ञानिक इसे विकास कहते हैं।

विकासवाद—वर्तमान प्राणी सदा ऐसे नहीं थे। पिछले लाखों वर्ष इन प्राणियों ने प्रकृति से तुमुल युद्ध किया है तथा इनके शरीर की रचना तथा रहन-सहन के ढंगों में परिस्थति के अनुसार बड़ा परिवर्तन हुआ है। पृथ्वी के विभिन्न स्तरों में विभिन्न काल की चट्टानों में पाषाणोन्मुख अस्थियाँ मिली हैं जो उन पशुओं की हैं जो किसी समय पृथ्वी पर बड़ी संख्या में फलते फूलते थे। किन्तु इस

समय उनकी जाति का एक भी प्राणी जीवित नहीं है। अनेक अस्थियाँ आजकल के जीवों की भी मिली हैं तथा इनसे आजकल के जीवों की पहिली अवस्थाएं प्रकट होती हैं। कुछ जीवों में ऐसी समानता पाई जाती है कि यह अनुभव होता है कि सहस्रों वर्ष पहले वे एक से ही थे। इस प्रकार के अनेक अन्वेषणों से वैज्ञानिक इस सिद्धाँत पर पहुँचे हैं कि विभिन्न जीवधारी किसी एक स्रष्टा द्वारा नहीं बनाये गये हैं किन्तु वे विकास द्वारा ही परिवर्तित होकर वर्तमान अवस्था को प्राप्त हुए हैं। पृथ्वी पर कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिलता कि किसी भी काल में एक साथ इन प्राणियों की सृष्टि हुई जिन्हें हम देख रहे हैं। प्रत्युत इस सिद्धांत की पुष्टि में अनेक प्रमाण हैं कि आरंभिक एक या दो तीन प्रकार के जीवों से अनेक प्रकार के जीव तथा वृक्ष पृथ्वी पर उत्पन्न हुए, उनके शरीर तथा जीवन में परिस्थितियों ने क्रान्तिकारी परिवर्तन किये तथा धीरे-धीरे उनके जीवन तथा संसार की परिस्थितियाँ इतनी विभिन्न हो गईं कि उनका जीवित रहना कठिन होने लगा तथा असंभव हो गया। अतएव वे अदृश्य हो गये। साथ ही साथ किसी अन्य प्रकार के शरीर तथा जीवन वाले प्राणी परिस्थितियों की अनुकूलता पाकर समुन्नत हो गये तथा सहस्रों वर्ष तक सुखद जीवन व्यतीत करते रहे। कालान्तर में वे जीव भी नष्ट हुए। इस प्रकार से जीवन-शृंखला में नवीन शृंखलायें लगती चली गईं तथा लग रही हैं।

विकासवाद का अमर अन्वेषक-डार्विन—विकास वाद एक युग प्रवर्तक सिद्धान्त है। यह धार्मिक धारणा इस विन्दु में विरुद्ध है कि अनेकानेक प्रकार के जीवों की एक साथ सृष्टि एवं सामयिक सृष्टि में विश्वास नहीं रखती। सृष्टि की धारणा विश्वास एवं युक्तियों के आधार पर हो सकती है। किन्तु उसका कोई प्रमाणिक आधार नहीं है। विकासवाद उसके पृष्टपोषक वैज्ञानिक की खोज के परिणाम

तथा उसकी सत्यता ठोस युक्तियों तथा सामग्री पर निर्भर है। इस महान् सत्य की ओर सबसे पहिले इंगलैंड के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन ने संसार का ध्यान आकर्षित किया।

डार्विन किस प्रकार इस सत्य पर पहुंचा ? डार्विन से भी पूर्व के फ्रांस निवासी वैज्ञानिक लामार्क का ध्यान इस ओर गया तथा उसके साथी बुफ़न को तो यह स्पष्ट देख पड़ा कि जीवधारियों की विभिन्न जातियाँ विकसित हो कर ही बनी होंगी ! किन्तु पेरिस के चिड़िया घर की उन्नति—जिसमें बुफन रहता था—तत्कालीन राजा तथा उसके कैथोलिक पादरियों की कृपा पर निर्भर थी। अतएव बुफ़न को विकास सम्बन्धी विचार प्रकट करने का साहस न हुआ क्योंकि पादरी तथा धर्म के कारण राजा और सामन्त गण कदापि ऐसे विचारों को उचित नहीं समझते। डार्विन पर अर्थशास्त्री मालथस के विचारों का बड़ा प्रभाव पड़ा। मालथस ने यह सिद्ध किया था कि मनुष्यों की जनसंख्या पर भोजन की मात्रा का सीधा प्रभाव पड़ता है। उसने कहा है कि साधारणतया जनसंख्या बढ़ती ही रहती है किन्तु जब यह संख्या भोजन—मात्रा से अधिक हो जाती है तो अकाल, महामारी, या युद्ध द्वारा संख्या न्यून हो जाती है। अतएव इन महान् कष्टों से रक्षा का एक उपाय यह भी हो सकता है कि जन संख्या की वृद्धि का उचित ढंगों से अवरोध कर दिया जाये। डार्विन के समय में मालथस के विचारों की बड़ी धूम थी। मालथस के सिद्धाँतानुसार "भोजन के हेतु युद्ध, मनुष्य की जन संख्या पर बड़ा प्रभाव रखता था। डार्विन ने स्वयं सुदूर देशों की यात्रा करके प्रकृति—जीवधारियों तथा प्राणियों—का बड़ा अध्ययन किया था तथा उसे बारम्बार यह आभास हुआ कि जातियों की उत्पत्ति में भोजन युद्ध के अतिरिक्त शत्रुओं से युद्ध, ऋतु, पैतृक सामग्री आदि अनेक कारण इतने प्रबल हो सकते हैं कि एक जाति के प्राणियों से ही विभिन्न परिस्थितियों में अनेक

प्रकार के प्राणी बन सकते हैं। यह ठीक है कि ऐसे परिवर्तन बड़ा समय लेते हैं तथा इतने शनैः शनैः होते हैं कि आरम्भ में ज्ञात भी न हों किन्तु होते अवश्य हैं। अतएव यह संभव है कि लाखों प्रकार के वनस्पति तथा प्राणी जिन्हें हम अब देख रहे हैं तथा और भी जो लोप हो चुके हैं एक ही प्रकार के प्रारम्भिक जीवों से उत्पन्न हुए हों।

विकासवाद का सिद्धान्त—हम एक पहले अध्याय में यह पढ़ चुके हैं कि प्रकृति ने एलेक्ट्रन, न्यूट्रन, पोजीट्रन प्रोटन आदि से परमाणु तथा विभिन्न प्रकार के परमाणुओं से अणु तथा अणुओं से विभिन्न वस्तुओं के पदार्थ निर्माण करके विभिन्न वस्तुएँ बनाईं। इस प्रकार से इन परमाणुओं तथा पदार्थों के संयोग से जीवित पदार्थ का निर्माण किया जो एक प्रकार का यंत्र है तथा अपने जैसा यंत्र बनाना बड़ा आवश्यक कार्य समझता है। पदार्थ के संयोग तथा निर्माण का यह "प्रवाह" आरम्भ के जीव—या जीवित यंत्रों—पर कैसे रुक सकता था। इन आरम्भ के जीवों ने निरन्तर अपने को वातावरण के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया तथा साथ ही साथ अपने को दृढ़ तथा सबल बनाने का प्रयास किया। जीवित पदार्थ, जीव, या जीवित यन्त्रों का यह विशिष्ट गुण है। इस आशय को जीवों ने निरन्तर अपने सामने रखा तथा शायद यही बर्गसन् की "जीवनाकांक्षा" (Vital urge) है। इससे प्राणियों के शरीर में जो परिवर्तन, परिवर्धन, पतन, तथा मरण हुए उन्हें हम विकास या प्रकृति के सजीव पदार्थ का इतिहास कह सकते हैं। जो जीव इस निरन्तर चलने वाली परीक्षा में सफल हुए "योग्यतम ही शेष रहता है" (Survival of the fittest) के नियमानुसार जीवित रहे किन्तु जो स्वयं को वातावरण के अनुकूल सिद्ध न कर सके या जिनके शत्रु प्रबल हो गए वे समाप्त गए। ऐसे नष्ट

गए— कि उनके शरीर के अवशेष अंग अजायब घरों में ही देखने को मिलते हैं !

डार्विन के मतानुसार जीवधारियों के शरीर में परिवर्तन होने से जो विभिन्न जातियां बनी हैं, इसका कारण है शरीर के अंगों का प्रयोग तथा इस प्रयोग तथा रहने सहने के ढंग का निरन्तर पिता से पुत्र को मिलना । अर्थात् बन्दरों की जो जातियाँ अपनी पूँछ का अधिक प्रयोग करती रहीं उनकी पूँछ लम्बी तथा दृढ़ हो गई किन्तु अन्य बन्दरों ने पूँछ का उपयोग न किया जिससे पूँछ धीरे धीरे छोटी होकर लोप हो गई । या कितने ही जीव दृढ़ हो कर शत्रुओं पर विजेता होने के लिए विशाल कार्य करते चले गए तथा अन्त में इतने स्थूल हो गए कि क्षुद्र जीवों ने उन्हें आक्रमण करके परास्त कर दिया । । इस प्रकार जीवों की अनेक जातियां विभिन्न कारणों से नष्ट हो गईं तथा जो योग्य थीं वे बच गईं । प्रकृति की इस छाँट को प्रकृति का निर्वाचन (natural selection) कहते हैं । डार्विन ने इस सिद्धान्त पर इतना बल नहीं दिया जितना कि आवश्यक था । किन्तु डार्विन ने एक सत्य पर से आवरण उठा दिया तथा प्रकृति के इतिहास के अन्वेषणों का उचित ढंग संसार को दिखाया । हर्बट स्पेन्सर ने यह सिद्ध किया कि विकास जीवों के शरीर की आन्तरिक क्रियाओं का बाह्य वातावरण से सामंजस्य स्थापित करना है । बाह्य वातावरण प्रबल है तथा प्रत्येक प्राणी को निरन्तर उसका सामना करना जीवन की रक्षा के लिए आवश्यक है । भोजन की न्यूनता, शत्रुओं का प्राबल्य, जलवायु के परिवर्तन, आकस्मिक संकट आदि आदि अनेक बाह्य संकट सदैव सामने खड़े रहते हैं । प्राणी के लिए दो ही मार्ग हैं—१. यदि उसके शरीर से संभव है तथा उसमें जीवनाकांक्षा (Vital Urge) का इतना प्राबल्य है कि वह इस वातावरण के अनुकूल हो सके तो जीवित रहेगा किन्तु उसके लिए उसके शरीर

आदि में परिवर्तन होना आवश्यक सा ही है । २. यदि शरीर की आन्तरिक क्रियाएँ प्राणी विशेष को नवीन वाह्य संकटों के अनुकूल होने में बाधक हैं या नवीन संकट प्राणी से प्रबल हैं तो प्राणी का नष्ट होना अवश्यम्भावी हैं । जो प्राणी इस युद्ध में सफल हैं वे ही इस समय जीवित हैं तथा उनमें से भी अनेक जातियाँ युद्ध में पराजित होती जा रही हैं तथा विनाश के समीप पहुँच रही हैं ।

विकास के प्रमाण—डार्विन तथा अन्य विकासवादियों को उस समय के पढ़े लिखे समाज से बड़ा लोहा लेना पड़ा । विशेष रूप से धर्मान्ध पादरी तो उनके पीछे ही पड़ गए । ईसाई तथा अन्य धर्मों के 'स्रष्टा तथा सृष्टि के' सिद्धान्त को जो ठेस विकासवाद से पहुँची उससे वे इतने क्रुद्ध हुए कि उन्होंने सरल सिद्धान्त को तोड़ मरोड़ कर इस विषय पर वादविवाद आरम्भ किया कि "मनुष्य की उत्पत्ति बन्दर से हुई या देवताओं से ।" डार्विन तथा उसके पृष्टपोषक अन्य विकास वादियों ने यह सिद्ध किया था कि मनुष्य के शरीर का रूप जो हम इस समय देखते हैं बहुत काल पहिले वनमानुषों के समान था तथा विकसित होकर ही आजकल के समान बना है । इस प्रकार अन्य जीव धारियों की जाति-उत्पत्ति तथा परिवर्तन पर भी विकास वादियों के विचार लगभग ऐसे ही थे । किन्तु जहाँ पादरियों का सृष्टि—सिद्धान्त केवल बाइबिल को सत्य मानने पर ही निर्भर था, विकासवादी वैज्ञानिकों के पास विकास के अनेक प्रमाण थे । डार्विन की पुस्तकें "जातियों का उद्भव" (Orgin of Species) तथा 'मनुष्य की आनुवंशिकता'(Descent of Man) स्वयं प्रकृति के अध्ययन पर ही निर्भर हैं तथा उस अध्ययन से ही विकास स्पष्ट हो जाता है । विकास वादियों के अन्वेषणों ने तो विकास के इतने अधिक प्रमाण प्रस्तुत कर दिये कि अब संसार की समस्त विद्वन्मण्डली विकास से सहमत है । इस अन्वेषण में जो अब भी प्रचलित है—

संसार के पहिले जीवों के अस्थि-पंजर तथा इस समय के जीवों के प्राचीन ढंग के अस्थि-पंजर मिले हैं । किसी किसी स्थान पर तो अनेक प्रकार के प्राचीन जीवों के अस्थिपंजर एक साथ मिले हैं। अनुमानतः ये जीव किसी आकस्मिक घटना से परास्त होकर उस स्थान पर दब गये या डूब गये । आप यह पढ़ चुके हैं कि पृथ्वी के छिलके [Crst] के विभिन्न स्तर भिन्न-भिन्न समय पर बने हैं। इन स्तरों में उनके समय के जीवों की पाषाणोमुख अस्थियाँ [Fo-scils] मिलती हैं जिनसे हमें प्राचीन काल के जीवों के स्वरूप का ज्ञान होता है तथा यह भी अनुमान होता है कि उस प्रकार के जीव किस समय विद्यमान थे और आज कल के जीवों के क्रमशः विकास का पता लग जाता है। और दूसरे जो जीव संसार से उठ गये है उनके विकास तथा उनके नष्ट हो जाने के कारणों का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है । वास्तव में पृथ्वी ने अपना इतिहास स्वयं लिख लिया है केवल वैज्ञानिक अन्वेषण से उसके पृष्ठ उलट कर अध्ययन करने की आवश्यकता है । अस्थिपंजर वास्तव में विकासवाद का एक स्तम्भ है । अत्यन्त प्राचीन काल के मछली जैसे जीवों से बीच के समय के विशाल रेंगने वाले जन्तुओं के अस्थिपंजर को देखते हुए वैज्ञानिक आजकल के जीवों के तथा पिछले एक या दो लाख वर्ष वाले जीवों के अस्थिपंजरों की समानता देखकर विकास के सिद्धान्त को मानने पर बाध्य हुए हैं । यद्यपि प्रारम्भिक जीवों के अस्थिपंजर सीधे सादे थे तथा क्रमशः ये जटिल होते गये किन्तु अस्थिपंजरों की समानता स्पष्ट है यद्यपि इनकी उत्पत्ति के समय में करोड़ों वर्ष का भेद है। अस्थिपंजर के विकास का इतिहास बहुत सीमा तक जीवनतत्त्व का इतिहास है ।

केवल अस्थि पंजर ही नहीं जीवधारियों के विभिन्न शरीरों में जो समानताएँ दीख पड़ती हैं वे इस तथ्य की ओर संकेत करती हैं
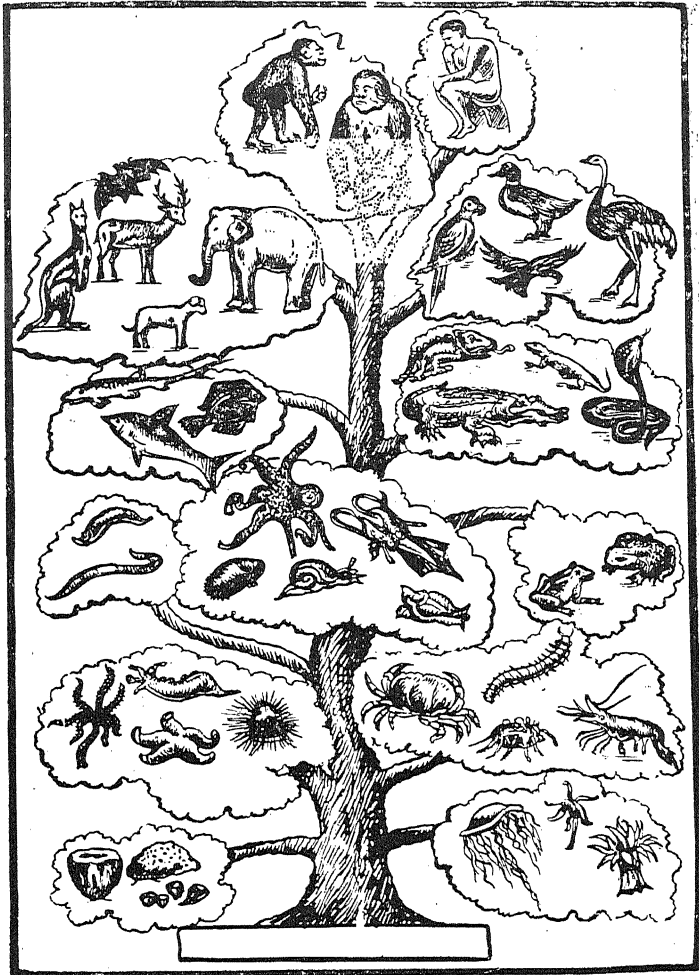
विकास का वृक्षाकृति इतिहास

मत्स्य की उत्पत्ति से पूर्व करोड़ों वर्ष पर्यन्त विकास धारा चलती रही थी।

कि इनका उदय स्थान एक ही है। यद्यपि हमें अति प्राचीन जीवों के शरीरों का मिलना प्रायः असम्भव सा ही है किन्तु उस समय की जातियों में से कुछ जातियां अब भी विद्यमान हैं। हम इनके अध्ययन से जातियों की उत्पत्ति तथा विकास की शृंखलाओं का पता लगा सके हैं। इनके अतिरिक्त जो जातियाँ इस समय विद्यमान हैं उनकी समानता का अध्ययन तो हम पूर्णरूपेण कर सकते हैं। पिछले कुछ सहस्र वर्षों में जो जीवधारी थे उनके शरीर या शरीरों के अंग भी वैज्ञानिकों ने खोज निकाले हैं तथा इस प्रकार पिछले लाख दो लाख वर्षों के विकास का इतिहास तो इतना स्पष्ट हो गया है कि वह हमें प्राचीनतम विकास पर प्रकाश डालने का एक साधन बन गया है। उदाहरणार्थ मनुष्य तथा वन-मनुष्य के विभिन्न अंगों की समानता इतनी स्पष्ट है कि कभी-कभी धोखा तक दे सकती है। बन्दर तथा मनुष्य के रक्त में इतनी समानता है कि यदि एक दूसरे के शरीर में रक्त का इन्जेक्शन किया जावे तो कोई हानि नहीं। किन्तु यदि किसी और जीव के साथ ऐसा किया जावे तो अवश्य हानि होगी। बन्दर तथा वनमनुष्य की ग्रन्थियाँ मनुष्य के शरीर में लगाई जा सकती हैं। समस्त प्रकार के पशुओं के पंजे अंगुलियों आदि में बड़ी समानता है - पक्षियों के पंख पशुओं के अगले पग, तथा बन्दर, वनमनुष्य तथा मनुष्य की बाहुओं में समानता देख पड़ती है। आँख, नाक, मुख, जिह्वा आदि अंगों के स्थान तथा आकृति की समानता स्पष्ट है। पशुओं के शरीर से निकालकर अनेक प्रकार के रस मनुष्य के शरीर में लगाये जा सकते हैं। प्राचीन काल के वैद्यगण मनुष्य के शव को काटना उचित न समझते थे। उन्होंने मनुष्य के शरीर के भीतरी भागों का अनुमान वन मनुष्यों के शरीरों को काट कर लगाया। प्रकृति का अध्ययन करने वाले विद्वान् डार्विन, वैलेस, हर्बर्ट स्पेन्सर आदि ने पूर्ण समानता को देखते हुए यह सिद्ध किया कि जीवधारियों की विभिन्न जातियाँ

वास्तव में एक ही प्रकार के प्रारम्भिक जीवों से बनी हैं तथा इस समय जो भेद इनमें दृष्टिगोचर हो रहा है उसके कारण भी स्पष्ट रूप से ज्ञात हैं। मनुष्य के गुर्दे पीठ से इसी प्रकार बँधे हुये हैं जैसे अन्य चार पगों पर चलने वाले पशुओं के। वास्तव में वे इस प्रकार बंधे होने चाहिये थे कि दो पैरों पर चलने से ठीक लटके रहते। मनुष्य की आँतें भी चार पग पर चलने वाले पशुओं के समान लटकती हैं। अतएव मनुष्य की आँत कभी कभी नीचे को उतर आती है तथा हर्निया (Hernia) नामक रोग हो जाता है। यह रोग हमें चारों हाथ-पगों पर चलने से कभी नहीं हो सकता था। यह स्पष्ट है कि हम किसी समय अन्य वानरों तथा पशुओं की भाँति चार पगों पर चलते थे।

मनुष्य तथा अन्य पशुओं के गर्भाशय में बढ़ते हुए बच्चे को देखने से विकासवाद का बड़ा स्पष्ट प्रमाण मिलता है, जीवधारियों की उत्पत्ति समय से अब तक जो परिवर्तन तथा परिवर्धन हुए हैं वे गर्भाशय में विकसित होते हुए वहीं पर फिर दोहराये जाते हैं। आरंभ का जीव-कदाचित् प्रोटीन का अव्यवस्थित लोथड़ा, समुद्र में उत्पन्न हुआ तथा यही प्राणियों तथा वनस्पति आदि का पिता था। इसी से विकसित होकर एक सेल वाले तथा उसके पश्चात् बहुसेलीय वनस्पति तथा प्राणी हुए। अकेला सेल अपने शरीर से सभी काम कर सकता था। किन्तु बहुसेलीय प्राणियों में सेलों को काम विभक्त किया गया। बहुसेलीय जीवों का भार अधिक था अतएव शरीर के भीतर रीढ़ तथा अन्त में अन्य अस्थियों का निर्माण हुआ जिससे शरीर की संभाल हो सके। इस प्रकार प्राणी दो प्रकार के हो गये—रीढ़धारी तथा रीढ़रहित। रीढ़धारी प्राणियों से ही प्रथम मेंढक जैसे अर्ध स्थलचर तथा फिर अनेक प्रकार के स्थलचर प्राणियों का विकास हुआ। परिस्थिति के अनुसार शरीरों में बड़े परिवर्तन हुए। स्तनपायी (Mammal)

जन्तुओं में बन्दर, वनमनुष्य तथा मनुष्य का विकास क्रमशः हुआ। गर्भावस्था में विकास की ये सीढ़ियाँ प्रकट होती हैं। प्रारंभिक बहु-सेलीय प्राणी की भाँति प्रथम सेलों में काम बंटता है। फिर रीढ़ की उत्पत्ति होती है तथा क्रमशः बच्चा एक पूँछदार चौपाये की आकृति वाला हो जाता है। फिर पूँछ घटने लगती हैं तथा शरीर पर रोम जमने लगते हैं, तथा बच्चा प्रथम एक बन्दर तथा तत्पश्चात् एक पुच्छ रहित वनमानुष बन जाता है। इसके पश्चात् विकास की शेष कक्षाओं को पूर्ण करके बच्चा मनुष्य हो जाता है। इस प्रकार से गर्भावस्था स्वयं हमारे विकास का प्रमाण दे रही हैं। दूध पिलाने वाले जन्तुओं के गर्भस्थित बच्चों का अध्ययन करने से उनके आर-म्भिक महीनों में बड़ी समानता देखी गई है। गाय तथा मनुष्य के गर्भस्थित बच्चे की आकृति बहुत दिनों तक एक सी ही रहती है। इसी प्रकार के अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते हैं। इनसे स्तन-पायी जन्तुओं की प्राचीन काल की समता सिद्ध होती है। शरीरों में जो भेद उत्पन्न हुआ है वह बहुत समय पश्चात की बात है।

यदि हम मनुष्य तथा वनमानुष के अंगों का अवलोकन करें तो अनेक प्रकार की समानता के साथ एक विशेष बात यह देखने में आयेगी कि जहाँ वनमानुष की पुच्छास्थियाँ शरीर के बाहर तक प्रसारित हुई हैं, मनुष्य के शरीर में भी उसी स्थान पर पुच्छास्थि है जो उस पूंछ का शेष भाग है जो लुप्त हो चुकी है। हाथी आदि अनेक जीव-धारी अपने कान हिलाने में समर्थ हैं किन्तु मनुष्य नहीं। फिर भी एक मांसपेसी कान के समीप हमारे शरीर में पड़ी है जो प्राचीन काल में कान को गति दे सकती थी। अब उसमें गति-स्नायु नहीं है। मछली अपनी ग्रीवा में छिद्र जैसे गलफड़ों से साँस लेती है। यद्यपि पशु-पक्षी इस प्रकार श्वास नहीं लेते क़िन्तु उनकी ग्रीवा में ठीक वैसा ही स्थान थोड़ा सा चीरने से मिल जाता है। आँतों में एक विशेष

भाग जिसे Appendix कहते हैं अब भी मनुष्य के शरीर में होता है। यद्यपि इस प्रकार के अंग की आवश्यकता केवल घास खाने वाले जीवों को ही है। मनुष्य के शरीर में यह अंग अब व्यर्थ ही नहीं है किन्तु कभी कभी भयंकर रोग का कारण बन जाता है। यह उसी समय काम देता था जब लाखों वर्ष पहिले मनुष्य भी घास आदि खाता था। मनुष्य के शरीर पर बाल जो किसी किसी मनुष्य के तो अत्यधिक हो जाते हैं, हमारे वनमानुष के समान होने की स्मृति दिलाते हैं।

संसार के प्रथम प्राणी:—विकासवाद की सत्यता के प्रमाण खोजने में वैज्ञानिकों ने जीवन के आरम्भ काल से लेकर अब तक के जीवों के अनेक ऐसे नमूनों को खोज निकाला है जो इस समय संसार में नहीं हैं। साथ साथ यह भी पता लगाया है कि अनेक प्रकार के जीव ऐसे भी हैं जो किसी समय एक बड़ी संख्या में थे किन्तु उनका सर्वनाश नहीं हुआ। उनके प्रतिनिधि इस समय भी थोड़ी संख्या में मिलते हैं।

पृथ्वी पर जीवन के आरंभ से इस समय तक जो विचित्र नाटक जीवन ने खेला है तथा इस समय भी खेल रहा है, वह महान् आश्चर्य-जनक है। इस नाटक पर एक दृष्टि-पात करने से ही मनुष्य स्तम्भित रह जाता है। बारम्बार यह विचार उसके सामने स्पष्ट होता है कि विकास कितनी तीव्रता के साथ चलता रहा है। इस समय हमें यह प्रतीत होता है कि विकास कुछ शिथिलता से आगे बढ़ रहा है किन्तु हमें यह समझ लेना चाहिये कि विकास एक नदी के प्रवाह की भाँति एक सी गति से नहीं चलता। विकास की गति मेंढक की कुदान की भाँति है। कभी तीव्र गति कभी शिथिल किन्तु विकास का निरन्तर होते रहना जीवन के इतिहास का एक आवश्यक अंग है।

इसमें सन्देह नहीं कि रीढ़धारी जीवों से पहिले पृथ्वी पर अरी-

धारी जीव उत्पन्न हुए । ये शरीरधारी जीव—जैसे घोंघे, स्पंज आदि स्वयं भी अन्य प्राथमिक जीवों से उत्पन्न हुए थे । आरंभ का जीव कदाचित् सहस्त्र सेलों का बना एक माँस के पिंड के समान रहा होगा ये पिंड समुद्र पर उतराते रहे होंगे । हो सकता है कि इन में से अनेक समुद्र तल पर पड़े सोते रहे हों । इस प्रकार के मांस लोथड़े (animala) अब भी अनेक बन्द सरोवरों में मिलते हैं । विचार कीजिए कि उस समय की बादलों तथा बाष्प से आच्छादित समुद्रों पर केवल एक प्रकार के जीव ही रहते थे तथा पृथ्वी के समस्त द्वीप और महाद्वीप वृक्ष पौधों तथा जीवों से नितान्त शून्य थे । इन आरंभिक जीवों के एकान्त को नष्ट करने के लिये बहुत समय पश्चात् कई अन्य प्रकार के जीव उत्पन्न हो गये जो इन्हीं लोथड़ों में से विकसित हुए । ये नवागन्तुक थे स्पंज, समुद्री फूल (sea anemones) तथा पार दर्शक मछलियाँ । ये जीव भी आरंभ के लोथड़ों की भाँति जल पर उतराते रहते थे किन्तु स्पँज शीघ्र ही समुद्र तल तथा किनारों के समीप पृथ्वी पर जम गये तथा कभी कभी बढ़ कर छोटे वृक्षों की भाँति हो गये । समुद्री फूल, तथा मूंगे भी स्थान स्थान पर जम गये तथा अनेकों ने मूंगे की भित्तियाँ उठानी आरंभ कर दीं । इस प्रकार लाखों वर्ष तक केवल समुद्र ही जीव युक्त रहे तथा इन प्रारंभिक जीवों से अनेक प्रकार के विना शिर वाले जीव उत्पन्न हो गये । इन जीवों के विकास पर प्रकाश डालने वाले ह्यू मिलर नामक खनिक का नाम अमर रहेगा । इस व्यक्ति की खोज द्वारा आरंभ की मछलियों, बृहत् बिच्छुओं एवं मंजूषा जैसे शरीर वाले अनेक जीवों का पता लगा । नाना प्रकार के विचित्र घोंघे तथा शंख भी इन्हीं आरंभिक जीवों में से थे । पृथ्वी पर विभिन्न स्थानों में खड़िया की पहाड़ियाँ मिलती हैं जो प्राचीन काल में समुद्र तल थीं किन्तु भूचालों के कारण ऊपर निकल आईं । इन पहाड़ियों के खोदने से पृथ्वी के आरंभिक जीवों का पता लगाया गया है ।

मछलियाँ तथा रीढ़धारी जन्तुओं का प्रादुर्भाव—पारदर्शी मछलियों (jelly fishes) की उत्पति तो आरंभ के मांस पिंडों से ही हो चुकी थी किन्तु इनके साथ साथ बड़े बड़े बिच्छू भी समुद्र पर स्वच्छन्द विचरते थे। आज कल की अधिकतर मछलियाँ अनुमानतः प्राचीन काल के छोटे छोटे समुद्री भेड़ियों (Sea sharks) से उत्पन्न हुईं। समुद्र के आघातों से आरंभ के जीवों में संख तथा सीपी के समान दृढ़ स्तर बने तथा इन भारी स्तरों के टूटने से ही आरंभ के समुद्री भेडियों तथा छिलकों से आरम्भिक मछलियाँ उत्पन्न हुईं, ये शस्त्रधारी मछलियाँ बृहत् बिच्छुओं को नष्ट करने में सफल हुईं किन्तु स्वयं भी उन भयंकर मछलियों का शिकार हुईं जो कुछ समय पश्चात् विकसित हुईं। यद्यपि मछलियों के पूर्व विकास का इतिहास इस समय भी आवरण से ढका है किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इनमें से अनेक रीढ़धारी थीं। साथ ही साथ इस समय के कितने ही जीवों ने समुद्र तथा नदियों के तट पर भोजन पाने का एक सरल ढंग निकाला। ये जीव गीली मिट्टी में अपना मुंह लगाकर जल मिश्रित मिट्टी से भोज्य सामग्री ग्रहण करने लगे। इस प्रकार सर्वप्रथम पौधे उत्पन्न हुए। इन विचित्र प्रकार के वृक्ष पौधों से सब से पहिले बड़ी बड़ी काई तथा कुछ समय पश्चात् लम्बे पत्तों वाले बांस जैसे अनेक प्रकार के वृक्ष पौधे निकले। आज कल की कोयले की खानें इसी प्रकार के पेड़ों के बन हैं जो पृथ्वी के नीचे दब जाने के कारण भीतर की गर्मी से जल कर पथरा गये हैं। प्राचीन काल के इन कोयले के वनों की तुलना किसी सीमा तक आज कल के विषुवत रेखा के सघन वनों से की जा सकती है। इन वनों में गहरा अन्धकार था तथा लम्बी काई तथा अन्य प्रकार की विचित्र बनस्पति की गहरी छाया में वृक्षों पर अनेक प्रकार के जीव निवास करते थे। इन बनों के निर्माण से प्रथम ही समुद्र से अनेक जीव जल नालियों के स्थान पर श्वास नालियां विक-

पृथ्वी के महाद्वीप तथा विशिष्ट पशु—नौ करोड़ वर्ष पूर्व
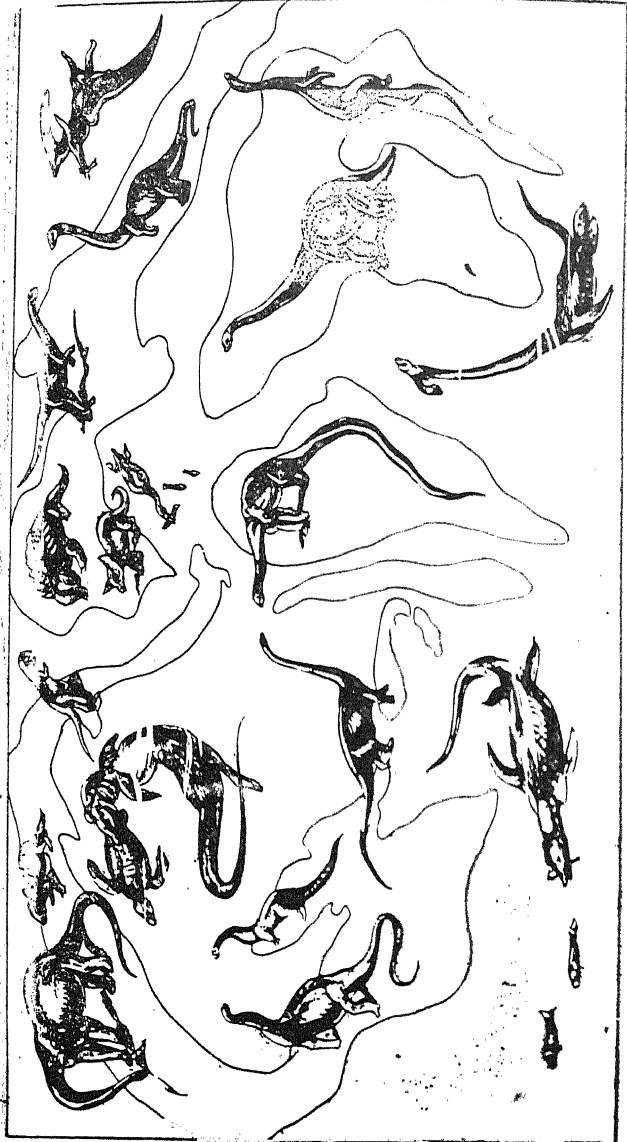
सित आरम्भिक कीट (insect) बनकर पृथ्वी पर आगये थे। कोयले के वनों में भयानक न्यूट (newts) थे जिनमें कितने ही मगर की आकृति के समान थे तथा अन्य लम्बे तथा मोटे जीव थे। इन जीवों की त्वचा गीली तथा फिसलने वाली थी।

हिमयुग तथा सरीसृप जन्तुओं का प्राधान्य—इस प्रकार के जीव वनस्पति व जलवायु परिवर्तन को सहन करने के योग्य न थे। इसी समय भौगोलिक कारणों से हिमयुग का आरंभ हुआ। उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव प्रदेशों से हिम तथा हिम नदियाँ विषुवत रेखा की ओर बढ़ी ही चली गईं तथा लाखों वर्ष तक जमी रहीं। इस हिम ने दल दली वनों पर भी आक्रमण किया जिससे काई तथा बांस जैसे लम्बे वृक्षों के साथ ध्रुव के आश्रित कीट तथा जन्तुओं का भी लगभग अन्त ही हो गया। पृथ्वी पर फूलदार पौधे तथा रेंगकर चलने वाले (सरीसृप reptiles) जीवों की उत्पत्ति हुई। निस्संदेह ये नवीन जीव कोयले के वनों के जीवों ही की विभिन्न श्रेणियों से विकसित हुए थे। किन्तु इन जीवों की त्वचा अधिक कठोर तथा जलवायु को सहन करने के योग्य थी। इन के फेफड़े दृढ़ थे तथा इनके अंडे भी कठोर होते थे। साधारणतया ये अपने अंडों को जल से दूर शत्रुओं से सुरक्षित रखते थे। अतएव नवीन वातावरण में ये जीव अधिक सरलता से रह सकते थे। जीवन इतिहास में 'सरीसृप जन्तुओं का युग" विशेष रूप से प्रसिद्ध है क्योंकि इसी युग में वे महान् छपकले (dinasaurs) उत्पन्न हुए जिनकी ओर संसार का ध्यान बड़ा आकर्षित हुआ है। किन्तु सरीसृप युग के आरंभ होने के लाखों वर्ष तक भी महान् छपकले उत्पन्न न हुए थे।

आरंभ के सरीसृप लगभग एक ही प्रकार के थे। किन्तु जैसे एक ही पिता के एक साथ खेले कूदे लड़के लड़कियाँ बड़े होकर विभिन्न योग्यता प्रदर्शित करते हैं तथा विभिन्न मार्गों का अवलम्बन करते हैं

इसी प्रकार इन आरंभिक सरीसृपों से अनेकानेक भाँति के सरीसृप उत्पन्न हुए। उनके अंगों में विभिन्नता का प्रादुर्भाव हुआ। आगे चल कर इन्हीं जीवों में आज कल की सी छपकलियाँ तथा कछुवे उत्पन्न हुए। महान् छपकले जो इन्हीं सरीसृपों की सन्तान तथा वंशज थे कालान्तर में समस्त महाद्वीपों में भर गये। इस समय तक पांच सहस्र से भी अधिक प्रकार के महान् छपकलों के अवशेष मिल चुके हैं। छपकले वनस्पति के आधिक्य के कारण साधारणतया मांस आहारी नहीं थे, शाक भोजी थे। वैज्ञानिकों ने खोज करके इनके चार विभाग किये हैं। (१) पशुओं के से पग वाले (२) पक्षियों के से पग वाले (३) छपकली के से पग वाले (४) कवचधारी सरीसृप। आधुनिक काल से लगभग बीस या पचीस करोड़ वर्ष पहिले इन महान् छपकलों का सारी पृथ्वी पर राज्य था। सब से बड़ा छपकला लगभग बीस फीट ऊंचा तथा अपना शिर साधारणतया भूमि से पैंतीस फीट ऊंचा रखता था। अपने बड़े शरीर को पर्याप्त भोजन देने के लिये अनेक छपकले निरन्तर वनस्पति खाते ही रहते होंगे। कितने ही जल में डूबे रहते थे तथा किनारों पर उत्पन्न वनस्पति खाया करते थे।

यह नहीं समझना चाहिये कि इस समय केवल इसी प्रकार के जीव रहते थे। कीटों ने भी बड़ी उन्नति की थी क्योंकि वनस्पति के नवीन परिवर्तन ने उन्हें पुष्प तथा पराग केशर आदि प्रदान किये। कीटों की उत्पत्ति तथा बढ़ने का ढंग भी परिवर्तित होकर धीरे २ आज कल के समान होता जा रहा था। कई प्रकार के मांसाहारी सरीसृप भी बढ़ रहे थे जो महान् छपकलों पर नित्य आक्रमण करते थे। ये मांसहारी सरीसृप छोटे थे किन्तु थे बड़े भयानक तथा निर्दय। इनके आक्रमणों से रक्षा करने के लिये महान् छपकलों की पीठ पर दृढ़ कवच विकसित हुए जिससे इन जीवों का भार बढ़ता ही चला गया तथा आगे चल कर ये इतने भारी हो गये कि इनकी अवशेष चंचलता भी नष्ट होगई।
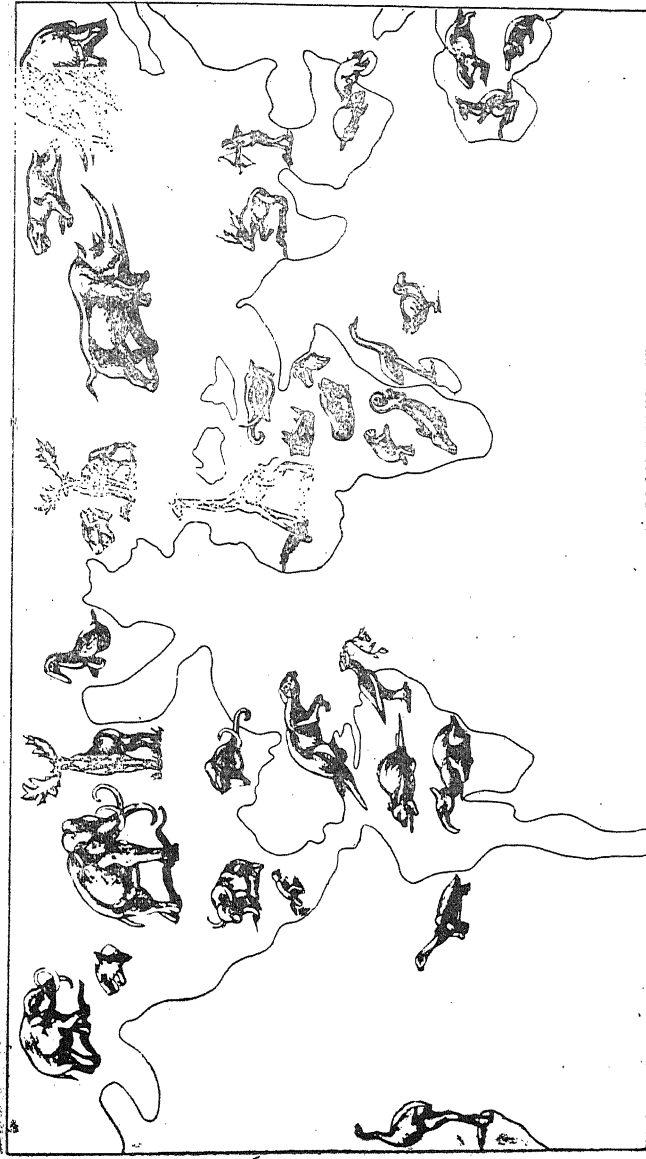
पृथ्वी के महाद्वीप एवं विशिष्ट पशु-दश लाख वर्ष पूर्व

पक्षियों की उत्पत्ति भी निस्संदेह सरीसृपों ही से हुई है । १८६१ में बेवेरिया में छिपकलीवत् पक्षी के अवशेष मिले थे । इस पक्षी का शरीर अवश्य ही छिपकली या अन्य सरीसृपों के समान था किन्तु इसके पंख थे जिनकी सहायता से यह उड़ सकती थी तथा अपने पंजों को भी सुरक्षित रख सकती थी । सरीसृप से इस प्रकार के पक्षी का विकास एक दम हो जाने वाली घटना नहीं । इससे प्रथम अर्ध-पक्षी तथा उनसे भी पहिले कूदने वाले सरीसृपों से वृक्षों पर शाखा से शाखा पर उछल कर जाने वाले सरीसृपों का विकास हुआ होगा । किन्तु एक बार जब उड़ने की क्षमता आ गई फिर जीव को जीवित रहना अत्यन्त सरल हो गया । इन नवीन प्रकार के जीवों—अर्थात् पक्षियों—ने भी महान् सरीसृपों को बड़ा कष्ट दिया जैसे कि आजकल भी अनेक पक्षी पशुओं को चोंच के अघात से कष्ट देते हैं ।

जीवन के मनोरंजक इतिहास में 'सरीसृप युग' के अन्त के समान कोई विचित्र तथा अपूर्व घटना नहीं है । इस युग का अन्त पूर्ण ही नहीं हुआ किन्तु सत्वर भी हुआ । यह नाटक की यवनिका-पतन के समान था । इसका बड़ा कारण वे पशुवत् सरीसृप थे जो हिम की वृद्धि से अपने शरीर पर बाल विकसित करके सुरक्षित रहे थे । निःसन्देह सरीसृप युग के अन्त में हिम ने समस्त पृथ्वी पर आक्रमण किया जिससे महान् छपकलों का निवास-स्थान सूक्ष्म होता चला गया । एक ओर तो प्रकृति की निष्ठुरता थी तथा दूसरी ओर पशुवत् सरीसृपों की निर्दयता । ये महान् छपकलों के अन्त करने पर कटिबद्ध थे तथा उनके अंडों को फूटने से प्रथम ही नष्ट भ्रष्ट करके प्रायः भक्षण कर लेते थे । इस प्रकार सरीसृपों का सदा के लिये अन्त हो गया तथा जीवन के इतिहास का तृतीय अध्याय प्रारम्भ हुआ ।

स्तनपायी जन्तुओं की प्रभुता—पशुवत् सरीसृप जिन्होंने अपने भयंकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त की शीघ्र ही पृथ्वी के रहने योग्य स्थानों में फैल गये । पृथ्वी पर उस समय बड़े बड़े भूचाल तथा अन्य

उथल-पुथल हो रही थी-तथा हिम का आक्रमण भी जीवों के लिये दुःखदायी होता जा रहा था। महान् छपकलों के साथ-साथ नवीन पशुवत् सरीसृप भी बड़ी संख्या में नष्ट हुए होंगे किन्तु अधिकतर बच गये। नवीन आगन्तुकों के अनेक शत्रु थे तथा उन्हें अपनी प्रभुता स्थापित करने के लिये बड़ी कठिनाइयां उठानी पड़ीं। ये सरीसृपों से विकसित हुए थे किन्तु थे स्तनपायी अर्थात् अपने शिशुओं को अपना दूध पिलाते थे। उनका रक्त सरीसृपों से अधिक उष्ण था तथा इनकी त्वचा बालों से आवृत थी। स्तनपायी युग के आरम्भ में ये जीव भी केवल तीन या चार भागों में विभक्त किये जा सकते थे किन्तु अपने योग्य शरीर द्वारा ये संसार में फैलते चले गये तथा नवीन कठिनाइयों से दृढ़ करने में इनके शरीरों में परिवर्तन हुए तथा इनकी अनेक जातियाँ बन गईं। प्रकृति के अटूट नियम के अनुसार इन जीवों में जीवन संग्राम प्रबल हो गया जिस से विकास की गति निरन्तर चलती रही। अवश्य ही इनका आकार उस समय छोटा था। छोटे छोटे लोमड़ी की आकृति वाले जीव दौड़ने में प्रवीण हुए तथा इन्हीं से आगे चलकर घोड़ों की उत्पत्ति हुई। इन में से कितने रीछ जैसे—कुत्ते, बिज्जू जैसे रीछ, बन्दर, लँगूर तथा घोड़े जैसे बिना सींग वाले गेंडे थे। ऊँट आरम्भ में बिना कोहान के तथा अत्यन्त छोटे थे। किन्तु छोटे स्तनपायी जीवों के अतिरिक्त बड़े बड़े गेंडे भी थे जो अब प्राय:
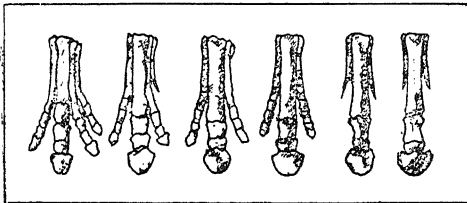
घोड़े के सुम का विकास (केवल एक अंगुली ही शेष है, अन्य लोप हो गईं)।

लुप्त हो गये हैं। स्तनपायी जीवों में भी मस्तिष्क प्रथम तो छोटा ही था किन्तु इस युग का जीवन संग्राम वास्तव में बुद्धि—संग्राम था अतएव मस्तिष्क का आकार बढ़ता ही चला गया। अधिकतर स्तन-पायी जीवों के पैरों में पाँच अँगुलियाँ थीं किन्तु प्रयोग से तीन या चार अंगुलियाँ नष्ट भी हो गईं जैसे घोड़े के पग में केवल एक अंगुली है।

इस युग में पक्षियों का भी आश्चर्य-जनक विकास हुआ। सरी-सृप से किस प्रकार पक्षी का विकास हुआ यह हम देख चुके हैं। फिर विकास की अगली सीढ़ियों पर अनेक प्रकार की कुरूप दाँतों वाली चिड़ियाँ उत्पन्न हुईं। तथा ऐसे पक्षी भी उत्पन्न हुए जो इतने महान् थे कि उड़ न सकते थे। धीरे धीरे पक्षियों का स्वरूप आधुनिक पक्षियों का सा होता चला गया। आगे चलकर भी अनेक महान् न उड़ने वाले पक्षी हुए जिन में सबसे प्रसिद्ध मैडेगास्कर की एक महान् चिड़िया है। ये पक्षी शुतरमुर्ग (ऊँट पक्षी) से कहीं बड़े थे।

कालान्तर में स्तनपायी जीवों में भी महान् पशु उत्पन्न हुए। उनमें बड़े बड़े हाथी के समान जीव थे जो मैमथ (Mammoth) कहलाते हैं। ये किसी समय एशिया के विस्तृत मैदानों में घूमते थे। इनके अतिरिक्त अनेक प्रकार के गेंडे, जलीय घोड़े (Hiphos) भी थे।

आजकल के अनेक प्रकार के स्तनपायी उन आरम्भ के सरीसृप पशुओं से विकसित हुए हैं जिन्होंने भयंकर दानव छपकलों का सर्वनाश किया था। किन्तु यह विकास जिसके द्वारा आजकल के जीवों का स्वरूप निर्माण हुआ है पिछले बीस करोड़ वर्षों में हुआ है। यद्यपि हमारे जीवन काल से तुलना करने पर यह समय बहुत बड़ा है किन्तु भूगर्भ शास्त्रियों के विचार से न्यून सा ही है। इन बीस करोड़ वर्षों में मनुष्य का प्रादुर्भाव पिछले दस लाख वर्षों ही में हुआ है तथा मनुष्य की जो जाति इस समय संसार में विस्तृत हुई है उसने

महाद्वीपों एवं पशुओं की वर्तमान स्थिति

अपने आजकल के स्वरूप को पिछले चालीस सहस्र वर्षों में प्राप्त किया है।

मनुष्य का विकास अगले अध्याय में समझाया जायगा।

जीवन या जीवित पदार्थ ने आरम्भ से लेकर इस समय तक जो विचित्र रूपांतर किया है वह एक देखने तथा अध्ययन करने योग्य वस्तु है। विकास द्रुत गति से बढ़ता रहा है तथा अब भी बढ़ रहा है। हमारा अध्ययन हमें विश्वास दिलाता है कि जीवों का भविष्य कुछ और ही होगा। किन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि चाहे प्रकृति का उद्देश्य मनुष्य उत्पन्न करना था या नहीं, मनुष्य एक ऐसा विचित्र प्राणी उत्पन्न हुआ है कि उसकी तुलना अन्य प्राणियों से नहीं की जा सकती। भेद यह है कि मनुष्य बुद्धिजीवी है तथा अन्य प्राणी शरीर-जीवी, मनुष्य का मस्तिष्क अपेक्षाकृत प्राणियों से महान् है तथा उसकी बुद्धि सबसे कुशाग्र है। अतएव उसका भविष्य अन्य जीवों की भाँति परिस्थितियों के आधीन नहीं रह सकता, वह स्वयं परिस्थितियाँ प्रस्तुत करेगा। तथा उसका विकास एक नवीन धारा में प्रवाहित होगा।

(विकास की श्रेणियाँ-मत्स्य से स्तनपायी-बायें से दायें)

प्रथम पंक्ति—१. प्राचीन मत्स्य २. युगल अंग-उत्पत्ति ३. फुप्फुस वाली मत्स्य। द्वितीय पंक्ति ४. अंगुलि-विकास ५. प्राथमिक सरीसृप, ६. स्तनपायी जीवों का पूर्व पुरुष सरीसृप। तृतीय पंक्ति ७. स्तनपायी-सरीसृप ८. प्राथमिक स्तनपायी ९. हस्तमय स्तनपायी।

अध्याय ५

मनुष्य का विकास

जीवित पदार्थ के विचित्र इतिहास या विकास का संक्षिप्त वर्णन पिछले अध्याय में दिया गया है। विकास की इन सीढ़ियों का अध्ययन स्वयं यह प्रश्न हमारे सम्मुख उपस्थित करता है कि-क्या मनुष्य सदा से ऐसा ही था जैसा कि इस समय देख पड़ता है? यदि सदा से मनुष्य का शरीर ऐसा न था जैसा कि अब है तो विकसित होने से प्रथम उस का क्या स्वरूप था? क्या ऐसे भी पशु इस समय विद्यमान हैं जिनका उद्भव उसी जीव से हुआ है जिससे कि मनुष्य का? तथा अब से पहिले मनुष्य किस बात में उन जीवों से समानता रखता था और किस बात में भिन्नता थी? धार्मिक सिद्धाँत यह है कि सृष्टि बनाते समय नियन्ता ने प्रत्येक जीव तथा मनुष्य के शरीर तथा उसकी क्रियाओं को सदा के लिये नियत किया था तथा उनके रूप में कोई परिवर्तन न तो हुआ ही है तथा न होना संभव ही है। किन्तु इस प्रकार की यांत्रिक सृष्टि का कोई प्रमाण नहीं है। जीवित पदार्थ (या जीव) सदैव अपने रूप का परिवर्तन करता रहा है तथा इस समय भी कर रहा है।

मनुष्य बुद्धिजीवी है अर्थात् अन्य पशुओं से वह इस बात में भिन्न है कि वह अपनी कठिनाइयों को हल करने में अपनी बुद्धि का प्रयोग करता है। बुद्धिजीवी होने से मनुष्य केवल संसार के समस्त जीवों से ही भिन्न नहीं है किन्तु अपने समीपी जीवों से—जैसे

गोरिल्ला, चिम्पान्जी, उरंगटंग गिबन आदि वनमानुषों से भी भिन्न है। मानुष में तथा वनमानुषों और अन्य जीवों में यही मूलात्मक भेद है। और बहुत सीमा तक मनुष्य के विकास का मूल कारण यही है। अन्य जीवों के समक्ष जब कोई कठिनाई उपस्थित हुई तो उसका सामना करने के लिये उनके शरीर में कुछ आवश्यक परिवर्तन हुए तथा इस प्रकार विकास की एक शृंखला प्रस्तुत हुई। किन्तु मनुष्य के समक्ष जब कोई कठिनाई आती है तो वह उसका सामना शारीरिक परिवर्तन से नहीं किन्तु बुद्धि के उचित प्रयोगों से करता रहा है। इस प्रणाली का परिणाम यह हुआ कि मनुष्य का मस्तिष्क विशाल तथा योग्यतर होता चला गया तथा धीरे धीरे वह सब से अधिक योग्य मस्तिष्क वाला जीव बन गया। मस्तिष्क जब उन्नति के पथ पर बढ़ चला तो समुन्नत होता ही चला गया तथा इस समय भी निरंतर उन्नति की सीढ़ियाँ चढ़ रहा है। बुद्धि की इस विचित्र उन्नति के कारण अब मनुष्य में तथा पशु पक्षियों में गहरा भेद प्रतीत होता है। यदि हम अन्य जीवों तथा मनुष्य के मस्तिष्क की तुलना करें तो यह भेद और भी स्पष्ट हो जाता है। इस तुलना का ढँग यह है कि जीव के शरीर के भार तथा विस्तार के साथ उसके मस्तिष्क का भार तथा विस्तार की अपेक्षा देखी जाती है इस प्रकार के अन्वेषण से मानव का मस्तिष्क सब से प्रबल एवं शक्तिशाली है। है। अन्य जीवों की अपेक्षा हमारे मस्तिष्क की कोठरियाँ भी अधिक होती हैं जिससे उसमें एक बहुमुखी योग्यता विद्यमान है।

मनुष्य तथा वनमानुष की समानता भी उल्लेखनीय है। शरीर में गोरिल्ला मनुष्य से कुछ ही कम लम्बा होता है किन्तु वनमानुष मोटे अधिक होते हैं। उनके एक छोटी सी पूंछ भी होती है। दूसरा बड़ा अन्तर यह है कि यद्यपि वनमानुष दो पगों पर भी चल सकता है किन्तु उसे चारों हाथ पैरों पर चलने में सरलता है। मानुष का

मस्तिष्क वनमानुष से बड़ा है। इन भेदों को छोड़कर मानुष तथा वनमानुष में बड़ी समानता है। दोनों की नसों, पेशियों, हड्डियों रुधिर थैलियों तथा नाड़ियों में नाममात्र को भी भेद नहीं। वन मानुषों में समझ से काम लेने की योग्यता भी बढ़ाई जा सकती है। चिम्पान्जी जाति के वनमानुष इस विषय में अत्यन्त योग्य देखे गये हैं। वे मनुष्य के समान कपड़े पहनना, कुर्सी आदि पर बैठना, छुरी काँटे से भोजन करना सीख लेते हैं। देरी तक ध्यान देने से पिंजड़ों के द्वार खोल लेते है तथा समीप रखे बक्सों को एक दूसरे के ऊपर रखकर डन्डे द्वारा फल तोड़ लेते हैं। सिखाने से थोड़ी सी गिनती भी जान लेते हैं। दो वस्तुओं की समानता प्रारम्भ में तो कठिनता से जान पाते हैं किन्तु एक बार जान लेने के पश्चात् सरलता से पहिचानने लगते हैं। मानसिक विकारों का भाव भी वनमानुषों पर मनुष्य के समान ही पड़ता है। भय, प्रेम, ईर्षा, क्रोध आदि में उनकी आकृत्ति के परिवर्तन मनुष्य के समान होते हैं।। मनुष्य के समान वन मानुषों में भी अपनी पत्नी या प्रेयसी के लिये ईर्ष्या पायी जाती है।

इस समानता को देखकर कितने ही वैज्ञानिकों में यह विचार उत्पन्न हुआ कि मनुष्य इन्हीं वनमानुषों का विकसित रूप है। यह संभव सा प्रतीत हुआ कि वनमानुषों की किसी जाति ने उन्नत होकर मनुष्य का रूप धारण कर लिया। किन्तु वनमानुष के अंग-प्रत्यंग की परीक्षा करने पर यह धारणा निमूंल निकली। वनमानुष स्वयं पूर्णरूप से विकसित जातियाँ हैं तथा इनमें तथा मानुष में मौलिक भेद है। वास्तव में हम तथा वनमानुष अतीत में खिपियन नामक जाति से पृथक हुए हैं। यह सत्य नहीं है कि मनुष्य वनमानुष का पुत्र है। वास्तव में बात यह है कि हमारी तथा वन मानुषों की समानता हमारी प्रारम्भिक एकता को सिद्ध करती है। अतएव डार्विन पर जो यह

गोरिला और मानव के अस्थिपंजर
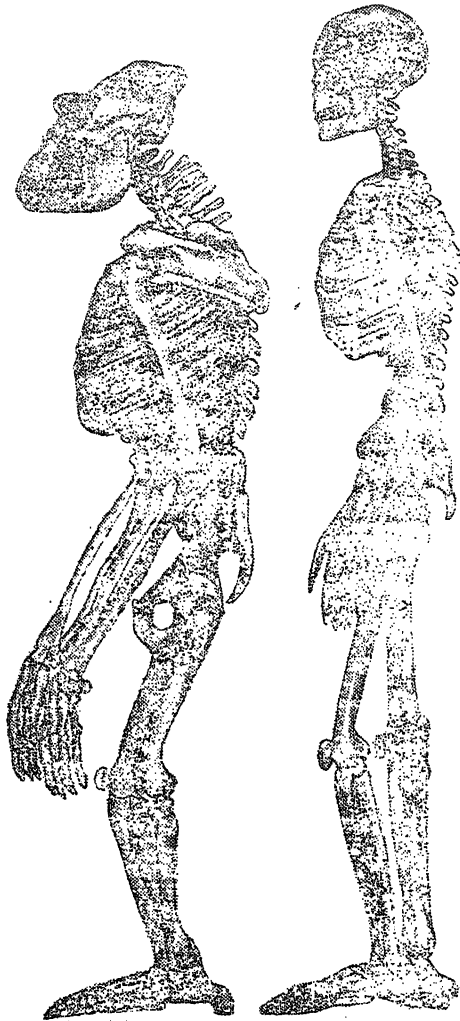
बन मानुष एवं मानुष देखिये, भेद केवल अस्थियों की बनावट में है संख्या या स्थिति में नहीं।

लांछन लगाया गया था कि मनुष्य उन्नत बन्दर है या बन्दर मानुष का पिता है, एक निर्मूल धारणा है। मानुष का शरीर वनमानुषों या बन्दरों की किसी भी जाति से पूर्ण समानता नहीं रखता। हमारे शरीर के कुछ अंग गोरिल्ले से मिलते हैं, तो कुछ गिबन से तथा कुछ साधारण बन्दर से। हमारी बुद्धि तथा हमारे मस्तिष्क के कार्यान्वित होने का ढंग बहुत कुछ चिम्पान्जी से मिलता है। सिद्ध केवल यही होता है कि वनमानुष तथा मानुष दोनों प्रकृति के किसी एक ही जीव के विकसित रूप हैं। इस समय में अभी हम अन्तिम निश्चय तक नहीं पहुँच सके हैं, कि इस जीव का रूप कैसा था। किन्तु इस जीव के लक्षण थोड़े या बहुत बहुत उससे निकली मानुष तथा वनमानुषों की सभी जातियों में पाये जाते हैं। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि वनमानुष, मनुष्य का आरंभिक या अविकसित रूप नहीं हैं किन्तु वे स्वयं विकसित तथा समुन्नत जातियाँ हैं।

मानुष के तीन विशिष्ट लक्षण:—मानुष तथा वनमानुष की समानता के अंश अधिकतर स्पष्ट हैं किन्तु मानुष कितनी ही बातों में वनमानुष से भिन्न है। इन असमानताओं में तीन विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। प्रथम तो मनुष्य ने अपने अन्दर सीधा खड़ा होने तथा चलने की क्षमता प्राप्त की है। अनेक प्रकार के वनमानुष भी सीधे खड़े हो सकते हैं और कुछ दूर चल भी सकते हैं। किन्तु वह ऐसा करने में न तो सफल ही होते हैं तथा न सुख-पूर्वक ऐसा कर ही सकते हैं अतएव वे कभी-कभी ही ऐसा करते हैं। जब मानुष ने प्राचीन काल में दो पगों पर खड़ा होकर चलने का अभ्यास कर लिया तो उसका जीवन मार्ग अन्य वनमानुषों की अपेक्षा सरल हो गया तथा प्रकृति से लड़ने के लिये उसे नवीन हथियार मिल गये। अब वह आँखों द्वारा हर ओर सरलता से देख सकता था तथा दूर तक देख सकता है। उसके अगले पग हाथों का काम देने लगे, केवल

शरीर का भार सहन करने के लिये ही न रह गए। ये हाथ भोजन एकत्र करने, गृह निर्माण करने तथा शत्रुओं का सामना करने के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होने लगे तथा धीरे-धीरे मानुष के शरीर में हाथों तथा पगों का कार्य सर्वथा भिन्न हो गया। हाथ हल्के, योग्य, बड़ी अंगुलीयों वाले होकर शरीर के रक्षक एवं पोषक हो गये तथा उनमें वे बड़ी महान् शक्तियाँ उत्पन्न होनी संभव हो गईं जिनके लिये चित्रकार, कलाकार, वैज्ञानिक आदि प्रसिद्ध हैं। और पैर केवल शरीर का भार ढोने के गधे के समान रह गए। यह परिवर्तन मनुष्य के विकास में बड़ा महत्वपूर्ण है। अब मानुष अपने हाथों को प्रयुक्त कर तथा अपने शिर को सरलता से घुमाकर अपनी जीवित रहने की योग्यता को बढ़ता चला गया तथा उसे अन्य जीवों की भांति पँजे, नाखून या बड़े दाँतों की कोई आवश्यकता न रह गई जो उन्हें रक्षा तथा युद्ध में सहायता देते हैं। शरीर पर भी वनमानुष जैसे घने बालों की कोई आवश्यकता न थी। बाल शरीर को शीत से बचा सकते हैं किन्तु गर्मी के समय बेचैनी पैदा करते हैं। मनुष्य कृत्रिम ढँग से शीत को दूर रखने की क्षमता उत्पन्न करने में समर्थ हुआ।

दूसरा महान् परिवर्तन यह था कि मानुष के हाथ का अंगूठा घूम कर उंगलियों के विरुद्ध आ सकता था। वनमानुष का अंगूठा केवल एक अंगुली के ही समान है किन्तु मनुष्य का अंगूठा हथेली के स्तर से हटकर घूम जाता है तथा उंगलियों के विरुद्ध हथेली के ऊपर भी लाया जा सकता है। इस प्रकार मानुष के हाथ प्रकृति की यंत्र निर्माण करने की कुशलता का एक सर्वोत्तम नमूना है। अंगूठे का यह अद्भुत् विकास वास्तव में एक इतनी महान् घटना है यदि हम कहें कि मानुष के शरीर की इस आश्चर्य जनक योग्यता ने ही उसे विकास की सर्वोच्च सीढ़ी पर चढ़ा दिया है तो कोई अत्युक्ति

न होगी। हाथ की कुशलता तथा योग्यता ही ने मनुष्य को अपनी विचित्र से विचित्र इच्छा पूर्ण करने में सफल किया तथा उसकी बढ़ती हुई अनूठी आवश्यकताओं की पूर्ति की। हमारा हाथ जो हमारे बनाये हुए सब यंत्रों का पिता तथा निर्माता है। वास्तव में हमारी सभ्यता, कारीगरी, एवं संस्कृति की भी आधार-शिला है।

दोनों आँखों को एक हो वस्तु पर जमा सकना या एक ही वस्तु को देखने को क्षमता प्राप्त करना मनुष्य की तीसरी विशेषता है। इस कुशलता का प्रारम्भिक रूप अन्य स्तनपायी प्राणियों में भी पाया जाता है किन्तु मनुष्य में इस योग्यता का पूर्ण विकास देख पड़ता है। दूर तथा पास देख कर सामने की वस्तु का सर्वांग निरीक्षण करने की यह अद्भुत कुशलता मनुष्य के देखने में ही सहायक नहीं है किन्तु उसकी कल्पना शक्ति, भाव व्यंजना तथा मानसिक चित्रीकरण को भी जननी है। इस प्रकार इस क्षमता ने हमारे मस्तिष्क की उच्च साधनाओं में बड़ी सहायता की है।

मनुष्य के फोसील अवशेष—यद्यपि मनुष्य इस समय का सब से उन्नति-शील जीव है। तथापि मानव-फ़ौसीलों की बड़ी न्यूनता है। इस अभाव के कारण हम मनुष्य के विकास की कहानी को पूर्ण रूप से नहीं जानते। यह अभाव क्यों है?

कारण यह है कि आरंभ के मानवों में भी मृतशव के ठिकाने लगाने की कुछ न कुछ परम्परा अवश्य रही होगी। अनुमानतः चिता द्वारा शव-दाह करने की विधि अत्यन्त प्राचीन प्रतीत होती है। यह विधि आधुनिक काल में भी सभ्य, अर्द्ध सभ्य एवं असभ्य जातियों में अच्छी तरह प्रचलित है। सभ्य, संस्कृत आर्य से लेकर नग्न-प्रायः न्यूगिनी के निवासियों में भी शवदाह प्रचलित है। इस प्रथा ने मानव फोसीलों का अभाव कर दिया। दूसरे, मानव-जाति के आदि निवास स्थान के विषय में यह यह अनुमान किया जाता है कि यह स्थान मध्य

एशिया या दक्षिण पूर्वी एशिया था। एशिया की जलवायु तथा यातायात के साधनों की न्यूनता अन्वेषकों" को सदैव निरुत्साह करती रहती है। फिर भी जो अवशेष मिलते हैं उनसे मानव-जाति के विकास पर बड़ा प्रकाश पड़ता है।

संक्षेप रूप से मनुष्य के जो फ़ोसील-अवशेष मिले हैं वे इस प्रकार हैं। सन् १८६८ ई० में फ्राँस में क्रोमग्नों नामक स्थान के समीप एक मनुष्य के प्राचीन अवशेष मिले जिसे क्रोमोग्नन मानव (Crohognon) कहते हैं। जर्मनी में नेअन्डर्थल (Neanderthal) में कुछ मानव फ़ोसील अवशेष मिले। इस प्रकार के मनुष्य का नाम नेअन्डर्थल मानव (Hoho Nendarthalinis) पड़ा। इसी देश में हेडल बर्गीय मानव कहलाते हैं सन् १९१२ में इंगलैंड में एक मानव अवशेष मिला जो आधुनिक मानव (Homo sapilns) के समीप साही है तथा पिल्ट डौन मानव कहलाता है। १९२६ में चीन में एक मानव-अवशेष था जो पेकिंग मानुष कहलाता है तथा मानुष के विकास की एक अप्राप्य शृंखला को पूर्ण करता है। १९२४ में दक्षिणी अफ्रीका में एक द्विपद का अवशेष मिला जो मानुष तथ वन मानुष के बीच का बतलाया जाता है। सबसे प्राचीन द्विपद अवशेष जावा में मिला है, जो पाँच लाख वर्ष पुराना बतलाया जाता है। इनके अतिरिक्त अनेक अन्य अवशेष भी मिले हैं जिनमें विभिन्न प्रकार के मानवों का विस्तार तथा इतिहासातीतकाल (Pre-historie Period) में इन जातियों के फैलने तथा यात्राओं का कुछ पता चलता है।

इतिहासातील काल के सम्वत्सर—भूगर्भ शास्त्री पृथ्वी के इतिहास को अनेक सम्वत्सरों में विभक्त करते हैं एक एक सम्वत्सर में लाखों वर्ष होते हैं। ये सम्वत्सर विभिन्न चट्टानों के निर्माण के समय के अनुसार हैं। हमें यहाँ सब सम्वत्सरों से कोई तात्पर्य नहीं है। हमें केवल इतिहासातीतकाल के उन युगों से तात्पर्य है जब

मानव जाति का सम्बन्ध केवल तीन सम्वत्सरों से पड़ता है:—(१) तृतीय युग (Tertiary Period) (२) चतुर्थयुग (Quaternary Periodl) तथा (३) (आधुनिक युग) (Recent Period) तृतीय युग में उषाकाल (Eocene) प्राचीन काल [Oglio-cene] जब फोसील थोड़ी संख्या में मिलने आरंभ होते हैं नवीनतर [Miocene] जिसमें फ़ोसील अवशेषों की संख्या बढ़ती है तथा नवीनतम [Pliocene] जब अवशेष पर्याप्त संख्या में मिलते हैं, चार काल माने गये । इसी प्रकार चतुर्थ युग नवयुग (Ple-istocene) प्रसिद्ध काल हैं जब अवशेष उच्चतम संख्या को पहुँच जाते हैं। इस काल के पश्चात् आधुनिक युग आरम्भ होता जिसमें प्राचीन पाषाण-युग (Old Stone Age) भी सम्मिलित हैं। प्राचीन पाषाण युग ईसा से लगभग दश सहस्र पहले समाप्त हो जाता है।

इतिहासातीत काल का यह मापदण्ड मनुष्य के विभिन्न पूर्वजों का समय नियत करने में आवश्यक माना जाता हैं । यह माप दंड भूगर्भ की चट्टानों के निर्माण के समय पर निर्भर होने के कारण मनुष्य के समकालीन पशु-पक्षियों का ज्ञान प्राप्त करने में भी सहायक है। इस प्रकार जब हम किसी अवशेष की इन युगों के अनुसार प्राचीनता जान लेते हैं तो हमें उस काल के मानव का बहुत सीमा तक ज्ञान हो जाता है।

मानुष तथा द्विपद—प्राचीन काल के जिस जीव से आधुनिक मानव का विकास हुआ हैं उसी से वनमानुषों का विकास हुआ है। मनुष्य बनने से प्रथम सीढ़ी द्विपद बनने की है। वन मानुष द्विपद नहीं हैं। क्योंकि यद्यपि वह कभी-कभी दो पैरों से चल लेता है वह ऐसा करने में कठिनाई अनुभव करता है। द्विपद वह है जो दो पैरों पर चलने में अधिक कठिनाई नहीं देखता, तथा इस प्रकार यह जीव मानुष्य के बीच का माना जा सकता है। इस प्रकार यह समझना

कठिन नहीं है कि मानुष से भी पहिले द्विपद का अन्त हुआ तथा वास्तव में द्विपद के अवशेष मानव-अवशेष से पुराने है।

द्विपद के अनेक अवशेष मिले हैं। एक प्रसिद्ध द्विपद अवशेष मिश्र में मिला है जो (Australopithecus) के नाम से प्रसिद्ध है यह द्विपद बन मानुषों से इस बात में भिन्न था केवल वृक्षों में निवास करना छोड़ चुका था तथा इसने भूमि को अपना निवास स्थान बना लिया था। प्रोफेसर डार्ट जिन्होंने यह अवशेष खोज निकाला था, कहते हैं कि यह अवशेष मानुष तथा बनमानुष के बीच की सीढ़ी पर हैं। द्विपद का एक और समुन्नत अवशेष ट्रान्सवाल (Transvaal) नामक प्रदेश में मिलता है जो अनेक विद्वानों के मन में मानुष के विकास की ऊपरी सीढ़ी हैं। इन दो अवशेषों से यह वह संकेत होता हैं कि मानुष सर्व प्रथम अफ्रीका में विकसित हुए इस महाद्वीप में गोरिल्ला चिम्पाजी आदि प्रसिद्ध वनमानुष विकसित हुए हैं, तथा निवास करते हैं अतएव सम्भवत: मनुष्य भी सर्व प्रथम यहाँ प्रादुर्भूत हुआ था इस धारणा के विरुद्ध एशिया में मिले अनेक द्विपद फोसील हैं जिनसे इस सिद्धांत को पुष्टि होती है कि एशिया ही आरम्भिक मानव का उत्पत्ति स्थान है हिमालय के समीप एक अमेरिका की अन्वेषक टोली ने अनेक प्रकार के बन्दरों बनमानुषों एवं द्विपदों,, के अवशेष खोज निकाले है। ये तृतीय युग के नवीनतर काल के हैं। इनमें (Dryopithecus) नामक अवशेष प्रोफेसर ग्रेगरी के अनुसार मानुष एवं बनमानुष दोनों का पूर्वज है। ड्रायोपिथेकस के फ़ोसील फ्राँस की तृतीय युग की चट्टानों में भी मिले हैं।

सर्व प्रसिद्ध द्विपद अवशेष जावा में प्राप्त हुआ जिसकी प्राचीनता पाँच लाख वर्ष के लगभग है। यह पिथेकेन्थोपस एरेक्टस (Pithecanthropus Erectus) या खड़ा-द्विपद कहलाता। यह

द्विपद से मनुष्य के विकास की अन्तिम सीढ़ी का द्योतक हैं। भूगर्भ शास्त्र तथा फोसील अवशेषों से यह पता चलता है कि तृतीय युग में उष्ण कटिबन्ध उत्तर से दक्षिण की ओर हट गया जिस से भारतवर्ष, मध्य एशिया तथा चीन के जलवायु पर बड़ा प्रभाव पड़ा। परिणाम स्वरूप भारतवर्ष तथा चीन के स्तनपायी जीव (तथा अन्य पशुपक्षी) दक्षिण पूर्व एशिया की ओर चले गये। इस महान् यात्रा का प्रभाव मानुष के विकास पर बड़े मार्के का है। वैज्ञानिकों की धारणा है कि द्विपद मानुष आदि जिन्होंने इस महान् संकट का सामना किया। विकास की सीढ़ियां जल्दी-जल्दी चढ़ गये तथा पहले खड़े-द्विपद और फिर आरम्भिक मानुष विकसित हो गये अनुमानत: पेकिंग मानव या चीनी द्विपद (Pekin man) इसी महान् यात्रा का परिणाम हैं। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि द्विपद से मानुष के विकास की अन्तिम सीढ़ी एशिया में पूर्ण हुई है।

कुछ वैज्ञानिकों की यह भी धारणा है कि द्विपद से मनुष्य का विकास मध्य एशिया के दक्षिणी भाग में हुआ है। वे यह कहते हैं, कि यह विकास किसी सीमा तक उस भयंकर भूचाल का परिणाम है जिसके कारण हिमालय, हिन्दुकुश, कराकोरम, काकेशस तथा मध्य एशिया के अन्य पर्वत समुद्र तल से निकल कर खड़े हो गये। इस विप्लव ने मानुष के पूर्वजों को वृक्ष जीवन छोड़ने पर बाध्य किया तथा इस प्रकार प्रथम द्विपद तथा फिर मानुष का विकास हुआ। वैज्ञानिकगण इस विषय में लगभग एकमत हैं कि मानुष की आदिम जन्मभूमि एशिया ही है तथा यदि अध्यवसाय के साथ खोज की जाय तो इस महाद्वीप में मानुष के विकास की पूर्ण कहानी मिल सकती है।

आरंभिक मानव:—इस समय संसार में जो मानव जातियाँ पायी जाती है वे वास्तव में एक ही प्रकार के मानव से निकली हैं तथा उनमें मौलिक रूप से कोई भेद नहीं है। हम सपियन मानुष

(Homo Sapien) हैं। इस जाति के अवशेष अधिक से अधिक लगभग पचास हज़ार वर्ष प्राचीन हैं। किन्तु हमें एक ओर तो यह स्मरण रखना चाहिये कि सपिअन मानव का विकास मानुष विकास की उच्चतम सीढ़ी है तथा दूसरी ओर सपिअन मानव के विकास से पहिले अन्य मानुष जातियों की उत्पत्ति एवं सभ्यता का प्रमाण मिलता है। तथा इस विषय में मत भेद है कि ये जातियाँ सपिअन मानव की पूर्वज जातियाँ थीं या नहीं। इन में से कुछ जातियों के अवशेष तो आधुनिक मानव शरीर से इतने मिलते हैं कि कुछ वैज्ञानिक इन जातियों को सपिअन मानव के विकास की सीढ़ी ही मानते हैं।

आरंभिक मानव तथा अन्तिम द्विपद में बड़ा भेद है। दो पैरों पर स्वाभावत: चलन ही से द्विपद मनुष्य नहीं हो जाता। मनुष्य का का विशिष्ट लक्षण है कि अपने उपयोग के लिये औज़ार, अस्त्र तथा शस्त्र बनाना। प्राकृतिक औज़ार का प्रयोग तो वनमानुष भी कर लेता है। यदि चिम्पान्ज़ी के पास कोई लकड़ी पड़ी रहती है तो वह उसे उठा कर प्रयोग कर लेता है। किन्तु चिम्पांजी या कोई भी वन मानुष अपने प्रयोग के लिये लकड़ी आदि तैयार नहीं कर सकता। अतएव मनुष्य अस्त्र निर्माण करने वाला जीव है। वैज्ञानिकों ने मानुष के अवशेषों से भी अति प्राचीन औज़ारों को खोज निकाला है। मानुष के अवशेष चतुर्थ युग के नवयुग से अधिक प्राचीन नहीं मिलते किन्तु मानुष-निर्मित अस्त्रादि तृतीय युग के नवीनतम काल के आरंभिक समय के भी मिलते हैं। पूर्वी एंगलिया में प्राप्त अस्त्रादि तो तृतीय युग के मध्य के भी माने जाते हैं। इस प्रकार मानुष-विकास का इतिहास अति प्राचीन काल तक ले जाया गया है। तृतीय युग में पृथ्वी के स्तर में इतने भयंकर परिवर्तन हो रहे थे कि उस समय के मानुष के फ़ोसील अवशेष प्रायः अप्राप्य हैं। मानुष की तत्कालीन स्थिति का प्रमाण केवल कुछ औज़ार तथा अस्त्र ही हैं।

आरंभिक मानव तथा विकसित द्विपद् के तीन अवशेष विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हम ऊपर जावा द्विपद तथा पेकिंग मानुष या चीनी द्विपद का उल्लेख कर चुके हैं। तीसरा अवशेष ऐओन्थोपस (Eoanthropus) या पिल्टडौन मानुष है जो १९१२ में इन्गलैंड के ससेक्स (Sussex) प्रदेश में मिला था। इन तीनों अवशेषों में एक आश्चर्य जनक समानता मिलती है। आरंभिक मानव के ये तीन अवशेष एक ओर तो वनमानुष से समानता रखते हैं तथा दूसरी ओर अनेक बातों में सपिअन मानुषके समान हैं। वैज्ञानिकों ने इन तीन अवशेषों का अध्ययन एवं परीक्षण किया है। इनकी नाप आस्ट्रेलिया के मूल निवासी की खोपड़ी से समानता रखती है तथा इस प्रकार की खोपड़ियों में स्थित मस्तिष्क अनुमानतः वनमानुष के मस्तिष्क से भिन्न था तथा पूर्णता की ओर विकसित हो रहा था। इनके नीचे का जाबड़ा इस बात का द्योतक है कि ये बात करने में समर्थ थे। पेकिंग मानव के विषय में वैज्ञानिक इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि यह आधुनिक मंगोलियन जाति का पूर्वज है। सबसे आश्चर्य-जनक बात यह है कि एक ओर तो आरंभिक मानव के ये अवशेष चीन तथा जावा में मिले हैं तथा दूसरी ओर इंगलैंड में। इस से एक ओर तो यह सिद्ध होता है कि आरंभिक मानव-जातियाँ दूर दूर फैल गई थीं तथा दूसरी ओर मनुष्य का आदिम उत्पत्ति स्थान इन तीनों स्थानों के बीच में मध्य एशिया ही में हो सकता है।

नेअन्डर्थल मानव (Home neanderthalenis)—प्रारंभिक मानव का एक दूसरा विकसित रूप जर्मनी के नेअन्डर्थल नामक स्थान परे मिले अवशेषों के आधार पर माना गया है। सबसे पहले अति प्राचीन मानुष के अवशेष इसी स्थान पर मिले थे किन्तु इस के पश्चात् यूरोप, पश्चिमी एशिया तथा उत्तरी अफ्रीका में भी ऐसे अवशेष मिले जो इसी जाति के हैं। नेअन्डर्थल मानव जाति इतिहासातीत

काल ही में उत्पन्न हो कर नष्ट हुई तथा पूर्णरूप से लुप्त हो गई। नेअन्डर्थल काल अब से लगभग पचास सहस्त्र वर्ष पुराना है।

नेअन्डर्थल मानुष के अस्थिपंजर की परीक्षा करने से यह भ्रम होता है कि ऐसा अस्थिपंजर मानुष का नहीं हो सकता किन्तु वन मानुष ही का हो सकता है। खोपड़ी नीची होती है। माथा छोटा तथा पीछे को ओर झुकाव वाला होता है, चेहरा भारी होता है जिसका निम्न भाग तथा जाबड़ा बाहर को निकला हुआ है। ठोड़ी लगभग नहीं होने के समान है और दाँत बड़े तथा एक विशेष प्रकार के हैं। रीढ़ सीधी है तथा आधुनिक मानव को रीढ़ की भाँति भीतर को मुड़ नहीं रही है। ये लक्षण वन मानुष के से हैं। चीनी तथा जावा द्विपद से ये लक्षण कितनी ही बातों में मिलते हैं। नेअन्डर्थल अस्थिपंजर किसी वनमानुष द्विपद का ही मान लिया गया होता यदि इस मानव के बनाये औज़ार, हथियार तथा आदि न मिलते। ये उपयोगी वस्तुएं पाषाण की बनी हैं तथा अस्थियों के पात्र भी मिलते हैं। यह मानव अग्नि का प्रयोग जानता था तथा अपने मृतशवों को बड़े समारोह के साथ समाधि देता था। इसका शिर रीढ़ में इस प्रकार जुड़ा हुआ था कि आगे को झुका रहता था। यह पूर्ण रूप से सीधा खड़ा न होता था तथा वन मानुष के समान ही लड़खड़ाता हुआ चला करता था। नेअन्डर्थल मानव की बनाई हुई वस्तुएं प्राचीन पाषाण काल की मानी जाती हैं।

नेअन्डर्थल काल अन्तिम हिमयुग की समाप्ति के समय का है जब हिम धीरे धीरे कम होता जा रहा था। नेअन्डर्थल मानव विशेष रूप से योरोप के उस प्रदेश में फैला हुआ था जहां आजकल जर्मनी बेल्जियम तथा फ्रांस देश के हैं। किन्तु अनेक अस्थिपंजर स्पेन, फिलिस्तीन तथा काफ़ पर्वत में भी मिले हैं जिससे इस जाति के विस्तार का पता लगता है। उन दिनों भूमध्य सागर नहीं था तथा

यूरोप और अफ्रीका सम्मिलित महाद्वीप थे अतएव अनुमान किया जाता है कि नेअन्डर्थल जाति भूमध्यसागरीय देश में भी रहती थी।

हिमयुग के अन्त में इन देशों की जलवायु में जो उथल पुथल हुई उससे नेअन्डर्थल जाति का अन्त हो गया एवं यह जाति बिना सन्तान छोड़े ही संसार से चल बसी। अनेक विद्वान् इस मानव को आधुनिक (सपिअन) मानव का पूर्वज मानते थे। किन्तु नेअन्डर्थल मानव की शारीरिक बनावट हमारे शरीर से इतनी भिन्न है कि यह धारणा ठीक नहीं है। इस जाति के लुप्त होने से प्रथम ही सपिअन मानव का विकास हो चुका था।

नेअन्डर्थल मानव प्रकृति के असफल प्रयोगों में से एक है। इस मानव की उत्पत्ति एवं नाश केवल इस बात को सिद्ध करते हैं कि प्राकृतिक विकास धीरे धीरे बढ़ कर उस श्रेणी तक पहुँच गया था कि एक बुद्धि पर-केवल बुद्धि पर-निर्भर रह कर उन्नति करने वाले जीव को उत्पन्न कर सके, जो अपने बुद्धि-बल से अन्य पशु-पक्षियों ही से नहीं, प्रकृति से भी लोहा लेने को प्रस्तुत हो जाय। नेअंडर्थल मानव इस मार्ग पर थोड़ी ही दूर चला तथा फिर प्रकृति के प्राबल्य ने उसे परास्त करके नष्ट कर दिया। इस विनाश से पहिले ही सपिअन मानव के रूप में बुद्धिबल पर निर्भर रहने वाले जीव की उत्पत्ति हो चुकी थी निःसंदेह सपिअन तथा नेअंडर्थल मानव एक ही मूल पिता की सन्तानें हैं जैसे गोरिल्ला, चिम्पाँजी आदि वनमानुष हैं।

क्रो-मेग्नन मानव (Cro-Magnon Man)-१८६८ ई० में एक प्रकार के मानव-अवशेष फ्राँस के क्रोमओं नामक स्थान में मिले तथा जिस मानव जाति के ये अवशेष हैं वह क्रोमेग्नन मानव जाति कहलाती है। इस प्रकार के अवशेष योरोप के अन्य स्थानों पर भी मिलते हैं। क्रोमेग्नन मानव आधुनिक मानव से बड़ी समानता रखता था। यह आधुनिक मानव के समान लम्बा था तथा सरलता से सीधा खड़ा होकर

चल सकता था। इस की खोपड़ी, चौड़ी, जाबड़ा तथा मस्तिष्क आधुनिक मानव से बहुत कुछ मिलता था। वास्तव में यह मानव आधुनिक यौरोपीय मानव का पूर्वज प्रतीत होता है।

क्रोमेग्नन जाति के पुरुष छः फीट लम्बे होते थे किन्तु स्त्रियाँ कुछ छोटी होती थीं। इन मानवों के बनाये पत्थर तथा हड्डी की वस्तुएं तथा शस्त्र भी मिले हैं। उनकी गुफाओं में जहाँ ये निवास करते थे उनकी पत्थर पर खुदे चित्र आदि भी मिले हैं। इस से अनुमान होता है कि यह भी एक समुन्नत मानव जाति थी। यद्यपि क्रोमेग्नन मानव की उन्नत सभ्यता का समय नेअंडर्थल मानव के पश्चात् आता है फिर भी इस विषय के अनेक प्रमाण हैं कि क्रोमेग्नन-मानव-शाखा नेअंडर्थल मानव से कम प्राचीन नहीं है।

सपिअन मानव की ओर—सन् १९२५ ई० में प्राप्त एक मानव-अवशेष से, जो लन्दन में मिला है, इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है कि सपिअन मानव की विकास-शाखा नेअंडर्थल मानव से कम प्राचीन नहीं है। यह अवशेष यद्यपि सपिअन मानव से मिलता है किन्तु नेअंडर्थल अवशेषों से पुराना है। इसके अतिरिक्त सन् १९३३ ई० में कीथ तथा मेकाउन को फिलिस्तीन में दो अन्य मानव-जातियों के अवशेष मिले हैं। उनमें से एक जाति नेअन्डर्थल मानव से बड़ी समानता रखती है यद्यपि पूर्णरूप से समान नहीं है। दूसरी जाति योरोप के क्रोमेग्नन मानव से सामंजस्य रखती है। दोनों प्रकार के अवशेष नेअन्डर्थल मानव से पुराने हैं तथा इस बात के प्रमाण हैं कि आधुनिक मानव का विकास भी अति प्राचीन तथा नेअन्डर्थल का समकक्ष है। हम सपिअन मानव के विकास की शृंखलाबद्ध कहानी अभी नहीं लिख सकते किंतु यह अवश्य कह सकते हैं यह विकास स्वतंत्र रूप से उसी मूल जीव से हुआ है जिससे अन्य द्विपद तथा मानव प्रकट हुए थे।

इन प्रमाणों के अतिरिक्त सपिअन मानव के विकास की प्राचीन शृंखलाएं जावा में १९३२ ई० में प्राप्त सोलो मानव (Solo man)

तथा अफ्रीका में मिले रोडेशियन मानव के रूप में मिले हैं। ये दोनों अवशेष नेअन्डर्थल मानव से प्राचीन हैं तथा बनावट में उससे तथा सपियन मानव से मिलते हैं।

क्रो-मेग्नन मानव के अतिरिक्त योरोप में भी तीन या चार अन्य प्रकार के मानव-अवशेष मिल चुके हैं जो आधुनिक मानव से बड़ा सामंजस्य रखते हैं। अफ्रीका आस्ट्रेलिया तथा एशिया के "आधुनिक" मानव अवशेष भी उल्लेखनीय हैं।

इन सब सुदूरवर्ती अवशेषों से प्रकृति की उस प्रगति का ज्ञान होता है जो एक बुद्धिजीवी मानव उत्पन्न करने का निरन्तर प्रयास कर रही थी। तृतीय युग से लेकर चतुर्थ युग में तथा फिर आधुनिक-युग तक यह विकास चलता रहा तथा अन्त में सपिअन मानव जैसे बुद्धिमान जीव का विकास हो ही गया। या यों कहना उचित होगा कि मानव, मानव बनने के लिये इस काल में निरन्तर प्रयास करता रहा तथा अन्त में प्रकट होकर संसार में फैल गया।

मानव के विकास की पूर्णता संसार की अब तक हुई सब घटनाओं से क्रान्तिकारी थी। इसकी अन्य जीवों के विकास से कोई तुलना नहीं हो सकती। कह नहीं सकते कि यह एक सफल प्रयास था या असफल, क्योंकि ऐसे जीव को उत्पत्ति जो प्रकृति को अपनी दासी बना लेने की चिन्ता में हो, कम से कम प्रकृति के लिये अच्छी घटना नहीं है। Men's Great Adventunre नामक पुस्तक में इस बात की ओर संकेत किया गया है कि मनुष्य की उत्पत्ति मात्र से ही पशुओं की पराधीनता का प्रादुर्भाव हो गया।

पतित देव या उन्नत बन्दर—संसार के सभी धर्म अन्य प्राणियों से मानव की श्रेष्ठता मानते हैं। आर्य-धर्म में मनुष्य योनि उभय योनि मानी गई है अर्थात् यह मन्तव्य है कि केवल मनुष्य ही अपने कर्म में स्वतंत्र है तथा यह शरीर देव-दुर्लभ है। इस्लाम मत में यह स्वीकार
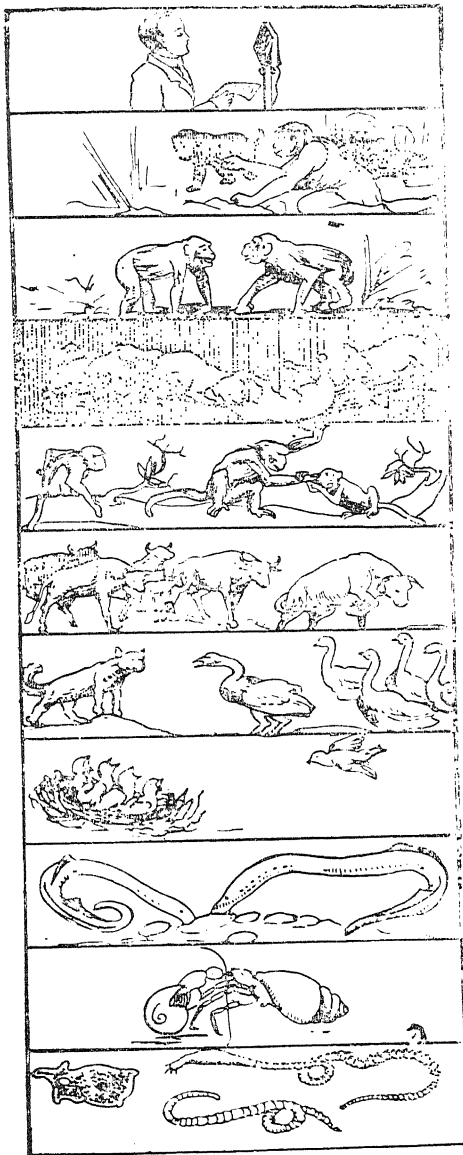
बौद्धिक विकास की श्रृंखलाएँ ।

किया गया है कि ईश्वर ने मनुष्य को अपनी आकृति के अनुसार निर्माण किया है। ईसाई मत के अनुसार मनुष्य जाति का आदि पिता ईश्वर का फरिश्ता था तथा ईश्वर की आज्ञा की अवहेलना करने पर स्वर्ग से निर्वासित किया गया था। इस प्रकार के प्रवचनों की न्यूनता अन्य धर्मावलम्बियों में भी नहीं है। अतएव यह आश्चर्यजनक बात न थी कि मानव के विकास की जो कहानी आप पढ़ चुके हैं, उसे जब आरम्भ में वैज्ञानिकों ने खोज के आधार पर प्रकाशित किया तो धार्मिक नेता बिगड़ उठे तथा सँक्षेप में यह प्रश्न संसार के सामने समुपस्थित हुआ कि "मानव पतित देव है या उन्नत बन्दर।" पिछली शताब्दी के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ डिजरेली ने तो स्पष्ट कहा—"मानव देव है या वनमानुष ? मैं तो इस के देव होने के पक्ष में हूँ ?" यह बात १८६४ ई० की है किन्तु १९३९ ई० में भी सर एम्ब्रोस फ्लेमिंग ने कहा कि —"पक्षपात पूर्ण नीति से मानव का विकास पशु से होना प्रमाणित किया है तथा इसके लिये काल्पनिक तथा भयंकर चित्रों का सहारा लिया गया है, जिनके द्वारा मानुष की अस्थियों, शरीर, रक्त एवं चाल-ढाल की समानता पर बल दिया गया तथा मानसिक एवं अध्यात्मिक महत्वपूर्ण असमानताओं को भुला दिया गया।"

इन विचारों के विरुद्ध डाक्टर फ्रांस ने यह कहा कि "यदि हम विकासवाद को ठीक ठीक समझें तो धार्मिक विश्वास को बड़ी सहायता मिलती है। विकासवाद से संसार को एक यंत्र के समान निर्जीव समझने की आवश्यकता न रह गई। अब सँसार उन्नति शील शरीर के समान है।" फिस्क ने तो यहाँ तक कहा कि विश्व एक घड़ी के यंत्र के समान न होकर एक विकसित होते हुए पुष्प के समान है। सँसार विकासवाद के अनुसार सदैव उन्नति तथा परिवर्तन के मार्ग पर होने के कारण मनुष्य के लिये और भी उज्वल भविष्य का द्योतक है। तथा ईश्वर एक साधारण यँत्र-निर्माता न होकर महान् "वीर्य स्थापक" माना जासकता है। जिस वीर्य में अनन्त विकास युक्त सृष्टि-वृक्ष उत्पन्न

करने की शक्ति है। डाकर इन्ज़ कहते हैं—विकास ही वह साधन है जिस के द्वारा ईश्वर संसार में अपनी इच्छाएँ कार्यरूप में लाता है। डाक्टर मेथ्यूज ने १६३२ ई० में कहा—"धर्मवेत्ता विकासवाद के विरुद्ध इस लिये नहीं थे कि विकासवाद अपूर्ण सिद्धान्त है। उनके विरोध का वास्तविक कारण यह था कि मनुष्य की श्रेष्ठता में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने का भय दिखलाई पड़ता था। मनुष्य पतित देव है या उन्नत बन्दर, यह परम्परागत धार्मिक सिद्धान्त तथा नवीन वैज्ञानिक कल्पना का पारस्परिक विरोध प्रदर्शित करने का एक सीधा-साधा आडम्बर रहित ढँग था। मेरा विचार है कि वैज्ञानिक विचार-धारा के भावी परिवर्तन भी हमें इस योग्य न कर सकेंगे कि हम फिर पुरानी धार्मिक परम्परा पर जा पहुँचें। अतएव हमें मानव को विकास धारा का परिणाम ही स्वीकार करना चाहिये।"

अध्याय ६

मानव-शरीर की क्रिया

साधारण दृष्टिपात को मानव का बाह्य रूप पशुओं से इतना भिन्न प्रतीत होता है कि यह देख पड़ता है कि मानव तथा पशु-पक्षियों में मौलिक भेद है। किन्तु वैज्ञानिक अन्वेषण से मानव या सपिअन मानव उन्नत स्तनपायी जीवों में से एक ही प्रमाणित होता है। सपिअन मानव शारीरिक दृष्टि में गोरिल्ला तथा गिबन से बड़ी समानता रखता है। गिबन में हमारे पूर्वज-जीव के अधिकतर लक्षण अभी तक विद्यमान हैं, गोरिल्ल ने कुछ उन्नति की है किन्तु सपिअन मानव उन्नत हो कर वर्तमान दशा को पहुँच गया है। स्तनपायी जन्तुओं को भी वे अनेक रोग होते रहते हैं जो मानव को कष्ट देते हैं। चिकित्सक गण चूहे, शशक, वनमानुष आदि पर सदैव नवीन औषधियों की परीक्षा करते रहते हैं तथा मानव के लिए इस प्रकार से अनेक प्रकार की नवीन औषधियों का आविष्कार करते रहते हैं।

मानव शरीर एक यंत्र के समान है। जैसे मनुष्य-निर्मित एंजिन को उचित संचालन के लिये तेल या कोयला, जल, वायु, आदि की आवश्यकता रहती है उसी प्रकार मानव शरीर को भी इन्ही वस्तुओं की आवश्यता होती हैं। एंजिन के समान मानव शरीर भी अनुपयुक्त मलमूत्र आदि को बाहर फेंक देता है। भेद यह है कि एंजिन अपने पुर्जे स्वयं निमार्ण नहीं करता है कि वह निर्जीव पदार्थ का बना हुआ है। मानव शरीर अन्य जीवधारियों के शरीर की भांति अत्यन्त सूक्ष्म यंत्रों अर्थात् सेलों का बना है। इन सेलों में एक ओर तो यंत्र के समान उचित क्रिया करने की शक्ति है किन्तु दूसरी ओर विभाजन-क्रिया द्वारा अपनी क्षीण संख्या के पूर्ण करके यदि

आवश्यकता हो तो नवीन सेल प्रस्तुत करने की भी शक्ति विद्यमान है। यंत्रों तथा जीव धारियों के शरीर का यह मौलिक भेद सदा स्मरण रखना चाहिये।

मानव ने सभ्यता के उषाकाल ही से शरीर के पालन-पोषण के लिये स्वास्थ्य की आवश्यकता समझ ली थी। तथा अपने ज्ञान के अनुसार आरोग्य-वर्धक साधनों का निर्माण किया था। मानव के इस प्रयास के दो अंग हैं— (१) शरीर के अन्तरिक अंगों तथा उन की क्रियाओं का ज्ञान तथा (२) रोगों से युद्ध करने के लिये चिकित्सा विषयक आविष्कार करना। यह दोनों प्रयास निरंतर चल रहें हैं तथा मानव रोग एवं अस्वास्थ्य पर इस समय भी पूर्ण रूप से विजय नहीं पा सका है।

मानव शरीर एक बड़ा जटिल यंत्र है तथा अभी तक भी इसकी क्रियाएं पूर्ण रूप से ज्ञात नहीं हैं। वास्तविक बात यह है कि मानव यंत्र स्वयं कई यन्त्रों का बना है जो एक दूसरे के सहयोग से कार्य करते हैं तथा जिनकी क्रियाओं में सामँजस्य स्थापित करना कोई साधारण कार्य नहीं है:—

संक्षेप में निम्नलिखित यन्त्रों से मानव-यन्त्र बना हुआ है: —

(१) अस्थि पंजर

(२) श्वास या रक्त शोधक यंत्र

(३) रक्त संवाहक यंत्र

(४) माँस पेशियाँ या भारवाहक यंत्र

(५) सन्तानोत्पादक यंत्र

(६) परिचालक यंत्र या यंत्र-सम्राट्

(७) पाचक यंत्र

अस्थिपंजर शरीर की आकृति तथा आधार को स्थित रखने के लिये है। शरीर के विभिन्न यंत्र किसी न किसी प्रकार इस पंजर के किसी भाग से बंधे हुए हैं तथा अपने २ विशिष्ट स्थान पर स्थित हैं।

श्वास यंत्र तथा पाचन-यंत्र बाहर से ईंधन लेकर शरीर को पुष्ट करते रहते हैं तथा किसी सीमा तक अनुपयुक्त वस्तुएं तथा कूड़ा बाहर फेंकते रहते हैं। किंतु कूड़ा फेंकने का काम प्रचालन यंत्र का है जो शरीर के तापमान को सदैव ९८.४ फा० रखने में बड़ा सहायक है। माँस पेशिया शरीर की भारवाहिनी शक्ति है। इन्ही के बल से शरीर चलता फिरता है तथा आंतरिक क्रियाएं सम्पन्न करता है। सबसे ऊपर इन सब यन्त्रों में सामंजस्य स्थापित करने वाला परिचालक यंत्र है जिसकी आज्ञा तथा नियम में विभिन्न यंत्र कार्य करते रहते है।

मानव के अस्थि पँजर में जितनी अस्थियाँ जिस स्थान पर हैं, गोरिल्ले में भी उतनी ही अस्थियां उसी प्रकार है। किन्तु अस्थियों की आकृति में भेद है। मानव-शिशु की अस्थियां नर्म होती हैं तथा मुड़ने और गिरने से टूटती नहीं हैं। ज्यों ज्यों बच्चा बड़ा होता जाता है अस्थियां कड़ी होती हैं। बीस वर्ष के युवक की लगभग सभी अस्थियां कड़ी होती हैं किन्तु अस्थियां सत्ताईस वर्ष से प्रथम पूर्ण नहीं हो पातीं। बच्चे की अस्थियां कार्टलेज (Cartilege) नामक पदार्थ की बनी होती हैं। अतएव नर्म होती है किन्तु बड़े होने पर मनुष्य की सभी अस्थियां खनिज नमक की बनी होती हैं जिनमें अधिकतर कैल्शियम फास्फ़ेट तथा कैल्शियम कारबोनेट होते हैं। तरल भाग केवल एक तिहाई होता है अतएव हड्डियां कड़ी होती हैं। अधिक मुड़ नहीं सकती। गिरने मुड़ने आदि से यूँही टूट जाती हैं अस्थियां यद्यपि प्रायः निर्जीव पदार्थ की बनी होती है किन्तु उनमें भीतर मज्जा भरी रहती है जो रक्त-सेल तथा चरबी की बनी होती है हड्डियों में रक्त तन्तु तथा नाड़ी-सेल भरे रहते हैं जो उन्हें पुष्ट करते रहते हैं।

अस्थि पंजर का केन्द्र रीढ़ है। यह तैंतीस छोटी २ अस्थियों का बना है जो एक दूसरे के ऊपर रखी है। प्रथम सात से मनुष्य को

ग्रीवा बनी है, फिर बारह से वक्षस्थल की पसलियां जुड़ी है इसमें आगे की पांच बड़ी अस्थियां कमर के नीचे का भाग बनाती हैं। फिर चार और अस्थियों द्वारा उरु की अस्थियां जुड़ी है तथा अन्त की चार अस्थियों से जो पुच्छास्थि कहलाती है वह भाग बना है जो जो हमारी पूंछ का शेष भाग है। मनुष्य की रीढ़ भीतर को मुड़ी है यही मनुष्य तथा पशुओं में विशेष भेद है। किसी भी अन्य पशु की रीढ़ भीतर को मुड़ी हुई नहीं है। नेअन्डर्थल मानव की रीढ़ वन मानुषों की भांति सीधी थी।

रीढ़ की ऊपर की दो अस्थियाँ खोप ी की "मंजूषा" के पिछले भाग से ऐसी बुद्धिमता से जुड़ी हुई है कि शिर घुमाने या झुकाने में कोई बाधा नहीं होती। खोपड़ी की मंजूशा बड़ी मोटी हड्डियों की बनी है जो दृढ़ता से एक दूसरे से सटी हुई है। क्योंकि इस मन्जूषा में प्रकृति की सबसे बहुमुल्य निधि अर्थात् मानव का मष्तिक सुरक्षित है। इसी प्रकार से वक्षथल की रक्षा के लिये बारह पसलियों का जाल फैलाया गया है तथा भीतर हृदय, फेफड़े आदि कोमल तथा अत्यन्त उपयोगी अंग है। शेष अस्थिपंजर उपयोगी एवं दृढ़ बना है तथा हाथों के अवधि के निर्माण में जो चतुराई दिखाई है वह अनिर्वचनीय है। इस विषय का उल्लेख हो चुका है।

अस्थि पंजर के साथ दृढ़ता पूर्वक संलग्न भारवाहक यंत्र या माँसपेशियाँ हैं। शरीर में ५०० माँसपेशियाँ हैं। हमारी समस्त गति-विधि इन्हीं पेशियों के द्वारा होती है। अधिकतर स्थानों में पेशियों के दो दल पाये जाते हैं, यदि एक दल किसी अंग को फ़ैलाता है तो दूसरा भीतर की ओर खींचता है। उदाहरणार्थ गर्दन की पेशियाँ सिकुड़ कर जब शिर को पीछे की ओर झुकाती हैं तो उस समय जंघ तथा पिंड़लियों की पेशियां स्थिति को संभाल लेती हैं। बाहु को जो माँस पेशियां फैलाती है उनकी दूसरी ओर की पेशियाँ बाहु

सिकोड़ लेती हैं। पेशियों में साथ मिल कर कार्य करने की अभूतपूर्व क्षमता पायी जाती है। एक पद आगे रखने में शरीर की लगभग १०८ पेशियाँ काम करती हैं। मनुष्य चाहे खड़ा हो या बैठा। वह अपनी रीढ़ की समस्त पेशियों को प्रयोग करता रहता है। अतएव जो श्रांति होती रहती है उसके कारण वह थोड़े थोड़े समय में अपनी स्थिति बदलता रहता है। माँसपेशियों पर मस्तिक का नियंत्रण है किंतु शरीर में इनके अतिरिक्त कितनी खुली (Unstripped) मांस पेशियां है जिन पर मस्तिक का कोई नि ंत्रण नहीं है तथा जो स्वयं निरन्तर अपने कार्य में संलग्न हैं।

पाचक यंत्र भी प्रकृति की कार्य-कुशलता का अद्भुत नमूना है। यह यंत्र वास्तव में एक लम्बी पाचक नली है। जो मुख से आरम्भ होती हैं। यह नली तीस फ़ीट लम्बी होती है। भोजन के मुख में पहुँचते ही पाचन क्रिया आरंभ हो जाती है। यहाँ भोजन को पीस कर लेसदार चटनी बनाने के लिये दन्त तथा लाला ग्रंथियां है। स्वादिष्ट भोजन के लिये अधिक लाला प्रस्तुत हो जाता है। अधिक स्वादिष्ट भोजनके देखने मात्र ही से "मुंह में पानी" भर आता है। लाला में ऐसे पदार्थ सम्मिलित हैं जो भोजन जब गले में उतरता है तो श्वास-नली का द्वार मंजूषा के आवरण की भांति बन्द हो जाता तथा भोजन इस पर से फिसल कर पाचन-नली में मांसपेशियों द्वारा नीचे की ओर को खिसकाया जाता है तथा आमाशय में ठेल दिया जाता है। आमाशय वास्तव में पाचन-नली ही है जो इस स्थान पर चौड़ी हो गई है। आमाशय के अन्दर के स्तर में अनेक सूक्ष्म ग्रंथियाँ हैं जो उदर-रस प्रस्तुत करती रहती हैं। इस रस में पेप्सीन रेनिन तथा थोड़ा सा हाइड्रोक्लोरिक तेजाब होता है। भोजन के वे भाग जो लाला द्वारा प्रभावित नहीं हुए इस उदर-रस (gestric juice) द्वारा घुल जाते हैं। किंतु घी, तेल, या चरबी पर उदर-रस का

प्रभाव न्यून पड़ता है। आमाशय लगभग चार घंटे तक आहार पचाने के लिये सिकुड़ता फैलता रहता है तथा जितना भोजन पच कर रक्त में मिलने योग्य बन सकता है सूक्ष्म केशिकाओं द्वारा चूस लिया जाता है। फिर भोजन पूर्णरूप से पचने के लिये छोटी आँतों में उतरता है।

इस समय तक आहार में पर्याप्त रूपान्तर हो जाता है। किंतु तैलीय पदार्थ अब तक नहीं पचे हैं। ये आंतें लगभग २३ फीट लम्बी होती है तथा इनका दूसरासिरा बड़ी आँत से जुड़ा रहता है। फिर भी इस आंत का पहला एक फुट लम्बा भाग बड़ा महत्वपूर्ण है। यहां प्रथम तो यकृत (liver) से पित्त रस निकल कर भोजन में मिल जाता है तथा उसके पश्चात् पंक्रिया (Pancreas) ग्रंथि से एक उपयोगी रस आहार में आ मिलता है। पित्त-रस से चर्बी दूध फेन हो कर फैल जाती है तथा पचे हुए भोजन का रंग पीला हो जाता है जो आगे चल कर रासायनिक क्रियाओं से लाल रक्त में परिवर्तित हो सकता है। पित्तरस न बनने से मनुष्य तैलीय पदार्थ नहीं पचा सकता किन्तु पंक्रिया-रस तो शरीर का भोजन पर अन्तिम प्रहार है। इसकी सहायता से स्टार्च चीनी में परिवर्तित होता है, घृत तथा मज्जा ग्लेसरीन या मज्जा वाले तेजाब में, तथा प्रोटीन के टुकड़े को अमिनो तेजाब में परिवर्तित कर देता है। प्रक्रिया ग्रन्थि जब ठीक कार्य नहीं करती तो मनुष्य को मधुमेह (Diabetes) नामक भयंकर रोग हो जाता है क्योंकि रुधिर में मिलने योग्य चीनी न बनने से रुधिर में चीनी की मात्रा बढ़ जाती है ऐसी अवस्था में रोग नाश के लिये कृत्रिम पंक्रिया-रस या इनूसोलिन् (insolin) तैयार किया गया है जिसके इंजेक्शन बड़े लाभप्रद होते हैं। आंतड़ी में भोजन निरन्तर बिलोया जाता है तथा इसके भीतर अत्यन्त छोटे २ 'बाल' होते हैं जो बचे हुए भोजन को- रुधिर तथा लिम्फ़ नाड़ियों में पहुँचाते हैं।

छोटी आँत से शेष आहार बड़ी आँत में चला जाता है।

बड़ी आंत के आरम्भ ही में एक ओर को एक छोटी सी नली लगी है जो एपेन्डिक्स कहलाती है। प्राचीन काल में यह नली बड़ी रही होगी। किन्तु अब इसकी आवश्यकता नहीं रही। यदि भोजन का कोई भाग इसमें अटका रह जाये तो भयंकर पीड़ा होती है। बड़ी आँत में पाचन-क्रिया नहीं के समान होती है। केवल जल सूख जाता है। अवशेष पदार्थ बड़ी आंत के अन्तिम सिरे से बाहर फेंक दिया जाता है।

पाचन-क्रिया का पूर्ण अन्वेषण करके वैज्ञानिक क्रियाओं द्वारा अब यह संभव है कि भोजन पर समस्त क्रियाएं विज्ञान की प्रयोगशाला में ही की जा सकें तथा मनुष्य को ऐसा भोजन दिया जा सके जो सीधा रक्त में मिलने के योग्य हो। रुग्णावस्था में प्रायः ऐसा किया जाता है परन्तु स्वस्थ मनुष्य को उचित प्राकृतिक भोजन देना ही ठीक है।

हम ऊपर यकृत का उल्लेख कर आये हैं। यकृत या जिगर का विशिष्ट कार्य है पित्तरस बनाना, रुधिर के योग्य चीनी उत्पन्न करना तथा पाचक यंत्र से प्राप्त अपक्व रुधिर को शुद्ध करना है। यकृत एक ग्रन्थि है तथा इसे कार्यशील रखने के लिये हृदय से सदैव शुद्ध शक्ति-शाली रक्त मिलता रहता है। यहां रुधिर की अनेक विषैली वस्तुएँ परिवर्तित होकर शुद्ध की जाती हैं तथा नाइट्रोजन मिश्रित वस्तुएं रक्त में मिला दी जाती हैं जिससे गुर्दे उन्हें निकाल कर रक्त को शुद्ध करदें।

अब हम प्रक्षालन यंत्र तक जा पहुंचते हैं जिसका एक महत्वपूर्ण भाग गुर्दे हैं। पेट में पिछली ओर रीढ़ के दोनों ओर बंधे हुए दो गुर्दे होते हैं। शरीर में शुद्ध आकृति तथा अन्य उपयोगी पदार्थ फैंकता हुआ तथा विषैले पदार्थ घोल कर लाता हुआ रक्त जब गुर्दे में पहुंचता है तो गुर्दे की अनन्त छोटी २ नालियां उसमें से मल युक्त भाग खींच लेती हैं तथा इसको मूत्र के रूप में फेंक देती हैं

जहां से यह बाहर निकल जाता है। शुद्ध रक्त को गुर्दे हृदय की ओर बढ़ा देते हैं। मूत्र में २% ऊरिया (urea) तथा १% अन्य विष तथा १% साधारण नमक होता है। यदि गुर्दे ठीक कार्य न कर रहे हों तो रुधिर में ऊरिया अधिक हो जाती है तथा शरीर के जोड़ों में इकट्ठी होकर गठिया नामक रोग उत्पन्न कर देती है कभी-कभी गुर्दों की उचित क्रिया न होने से स्फटिक सूक्ष्म कण मूत्राशय आदि में पथरी (stone) रोग उत्पन्न करते हैं। पथरी को प्रायः चीरा लगाकर निकालना पड़ता है क्योंकि इस रोग में भयंकर पीड़ा होती है। गुर्दे की रक्त-शुद्धि में बड़ी शक्ति लगानी पड़ती है तथा गुर्दे हृदय से अधिक शक्ति व्यय करते हैं।

प्रक्षालन यंत्र का दूसरा भाग त्वचा है। त्वचा मानव शरीर का महत्वपूर्ण भाग है। ऊपरी स्तर शुष्क छिल्के दार सेलों का बना है जो निरन्तर संघर्ष से नष्ट होता रहता है तथा नीचे से नवीन सेल निर्मित होकर उसका स्थान लेते रहते हैं। त्वचा में अनन्त छिद्र हैं जो एक वर्ग इंच में ४०० से लेकर ३००० तक होते हैं। प्रत्येक छिद्र एक चौथाई इंच लम्बी सूक्ष्म नली के सिरे पर है जो स्वेद-ग्रन्थि कहलाती है। यह ग्रन्थियाँ मुड़-तुड़ कर त्वचा के नीचे के स्तर को पार कर जाती है यहाँ तक कि ये चर्बी के स्तर तक पहुँचती हैं। यहां ये सूक्ष्म रक्त केशिकाओं [capillaries] से ऊरिया तथा जल त्वचा के ऊपरी स्तर पर फैंकती रहती हैं। शरीर के तापमान को सदैव ६८.४ फा. रखने के लिये इस छिड़काव की बड़ी आवश्यकता है तथा विशेष कर गर्मी की ऋतु में तो नितान्त आवश्यक है। व्यायाम तथा कड़े परिश्रम के समय हृदय से रुधिर अधिक परिमाण में त्वचा के समीप आता है तथा शुद्ध किया जाता है। इस प्रकार विष शरीर के बाहर हो जाता है। स्नान के समय मनुष्य त्वचा को धोकर जमे हुए विष को जल में घोलकर छिद्रों को स्वच्छ कर देता है। समस्त मलवाहिनी

नालियों के समान त्वचा के छिद्र धोना भी अत्यन्त आवश्यक है। प्रतिदिन मनुष्य दस छटाँक जल, आधी छटाँक कार्बन द्विओषित तथा आधी छटांक अन्य विष त्वचा द्वारा शरीर से बाहर निकाल देता है। इसी प्रकार गुर्दे द्वारा ढ़ाई बोतल जल, आधी छटाँक ऊरिया तथा कुछ तेजाब तथा अन्य विष शरीर से बाहर निकाल देता है। इनके अतिरिक्त फेफड़े भी प्रक्षालन का काम करते हैं।

रक्त संवाहक तथा रक्त शोधक यंत्र—रक्त ही वह साधन है जिसके द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों की पुष्टि के लिये उचित भोज्य पदार्थ पहुंचाया जाता है तथा इन अंगों का कूड़ा करकट स्वच्छ करके जला डालने के लिये फेफड़े में लाया जाता है। शरीर के जीवित रहने के लिये ये दोनों कार्य बड़े आवश्यक हैं। अतएव रक्त वाहिनी नालियाँ शरीर में प्रत्येक स्थान पर होती हैं। तथा हृदय का यह कार्य है कि निरन्तर रक्त इन नालियों द्वारा शरीर में फैंकता रहे। हृदय शरीर की 'सर्वोत्तम मांसपेशी' है। अन्य पेशियाँ थक जाती हैं किन्तु साधारणतया हृदय दिन रात क्या जीवन भर कार्य करने पर भी थकता नहीं। इस विचित्र पेशी पर दुहरा आवरण चढ़ा है। इसका आकार लट्टू जैसा होता है तथा भीतर से यह दो भागों में विभक्त है। एक भाग फेफड़े से शुद्ध रक्त लेकर शरीर में फेंकता है तथा दूसरा शरीर से मैला रक्त लेकर शुद्ध होने के लिये फेफड़ों में पहुँचाता है। अतएव रक्त वाहिनी नालियाँ तीन प्रकार की हैं-(१) धमनियाँ—ये नालियाँ हृदय से रक्त ले जाने वाली हैं तथा बड़ी दृढ़ तथा भीतर से लचकदार बनी हुई हैं। शरीर में यह नालियाँ माँस पेशियों के भीतर गहराई में होती है जिस से इन्हें आघात पहुँचने का भय कम रहे। यदि इनमें से कोई धमनी कट जाये तो रक्त बड़े वेग से कई फीट उछल आता है। (२) शिराएँ—ये को हृदय में वापस लाती है, उन तक पहुँचते पहुँचते रक्त की

गति पहले से $\frac{1}{3}$ रह जाती है अतएव ये नर्म होती हैं। ३—धमनियों से रक्त को शिराओं तक पहुँचाने वाली अत्यन्त सूक्ष्म नालियाँ हैं जो केशिका कहलाती हैं। इनकी भित्ति पतली होती है तथा ये आसपास के शारीरिक भाग को उचित भोज्य पदार्थ तथा आक्सीजन देती हैं तथा कूड़ा-करकट लेकर रक्तधारा में सम्मिलित कर लेती हैं। इस प्रकार रक्त निरन्तर शरीर को नवजीवन दान देता रहता है।

रक्त क्या वस्तु है? रक्त कई प्रकार के क्षारों तथा गैसों का जल में घोल [solution] है तथा इसमें दो प्रकार के कण [corpusel-es] तैर रहे हैं। देखने में रक्त लाल है। किन्तु अनुवीक्षण यंत्र से रक्त पीला दिखलाई पड़ता है तथा इसमें तैरते हुए सूक्ष्म लाल तथा श्वेत कण भी दीखते हैं। एक घन के सेन्टीमीटर [लगभग १५ बूँद] रक्त में पाँच करोड़ लाल कण तथा एक लाख श्वेत कण होते हैं। लाल कण ऐसे पदार्थ के बने हुए हैं कि ये आक्सीजन बड़ी मात्रा में अपने भीतर रख सकते हैं, केशिकाओं में पहुँचने पर ये कण अपनी सुरक्षित आक्सी-जन छोड़ देते हैं जिससे शरीर के अंग पुष्ट तथा मलरहित हो जाते हैं। मानव-शरीर को आक्सीजन पर्याप्त चाहिये क्योंकि शरीर का प्रत्येक अंग गतिमान रहता है तथा परिश्रम के समय तो आक्सीजन का व्यय और भी बढ़ जाता है। लाल कण यह आक्सीजन फेफड़े में पहुँच कर वायु से प्राप्त करते हैं। दूसरे कण-अर्थात् श्वेत कण-शरीर को सेलों के आक्रमण से रक्षा करने के लिये सेना का कार्य करते हैं। जब रोग कीटाणु शरीर में प्रवेश करते हैं तो श्वेत कण दल-बल सहित उस पर आक्रमण करते हैं तथा जब तक ये बाहरी कीटाणुओं को पराजित करते रहते हैं शरीर जीवित रहता है। ये कण अमीबा की भाँति एक से दो होते हुए अपनी संख्या बढ़ा सकते हैं। जब यह किसी रोग-कीटाणुओं को पराहत कर लेते हैं तो इन्हें उस प्रकार के शत्रुओं से संघर्ष करने की विशेष शक्ति प्राप्त हो जाती है तथा निर्धारित समय

तक यह शक्ति बनी रहती है। जो मनुष्य शीतला से रुग्ण होकर एक बार बच जाता उसे जन्म भर वह रोग फिर नहीं होता। इसी प्रकार से शरीर को किसी रोग से बचाने का एक प्रकार यह भी है कि उसी रोग के मृत कीटाणुओं को खाकर हमारे रक्त के श्वेत कण इसी प्रकार के जीवित कीटाणुओं को भी नष्ट कर सकते हैं। इस प्रकार रक्त शरीर की विशेष जीवन संचारिणी शक्ति है।

इस शक्ति का विशेष कार्य शरीर में आक्सीजन का विस्तार करना है। रक्त को आक्सीजन फेफड़ों से प्राप्त होती है। जब शरीर से लौटा हुआ रक्त हृदय द्वारा फेफड़ों में फैंक दिया जाता है तो वहाँ उसमें बड़े आवश्यक परिवर्तन होते हैं। फेफड़े दो नुकीले से नासपाती की आकृति के गोले हैं जो गले की नली की दो शाखाओं से ऊपर की ओर बँधे हैं तथा हृदय तथा बड़ी रक्तवाहिनी नालियों के दोनों ओर छाती में फैले हुए हैं। फेफड़े चारों ओर पसलियों से सुरक्षित हैं जिनका अग्रिम भाग कार्टलेज का बना है तथा पसलियाँ इस प्रकार लचीली हैं। फेफड़े को फूलने-पटकने में पसलियाँ कोई बाधा नहीं पहुंचातीं। फेफड़े के ऊपर दो आवरण हैं जिनके बीच में एक तरल पदार्थ भरा रहता है। फेफड़े को वर्धित तथा सूक्ष्म करने में वक्षस्थल और उदर के बीच की एक बड़ी मांस पेशी सहायता देती है। जो नीचे गिरते समय वक्षःस्थल में रिक्त स्थान बढ़ा देती तथा फेफड़ा फूल जाता है तथा ऊपर उठने से फेफड़े को सूक्ष्म करने में सहायता देती है।

श्वास नासिका प्रविष्ट होता है। वहां नाक के बाल तथा तरल पदार्थ उसके धूलकण तथा अन्य हानिकर वस्तुओं को रोकते हैं तथा एक विशेष झिल्ली उसे गर्म करती है। यदि हम मुख से श्वास लें तो यह क्रिया नहीं हो सकती अतएव नासिका द्वारा श्वास लेना उचित है। श्वास के बढ़ने के लिये श्वास नली का द्वार खुला रहता है। केवल ग्रास सटकते समय यह द्वार क्षण मात्र के लिये बन्द होता है। श्वास

नली आगे चलकर दो भागों में विभक्त हो जाती है। ये शाखाएँ (bronchi) धीरे धीरे अनेक विभागों में बँट जाती हैं अन्त में यह अनन्त सूक्ष्म वायुकोषों (air-sacs) में पहुँचती हैं जहाँ मैलयुक्त रुधिर केशिकाओं में फैला रहता है। वायु की शुद्ध आक्सीजन लाल कण ले लेते हैं तथा रक्त में से कार्बन द्विओषित तथा दग्ध अवयव वायु में मिलकर प्रश्वास के साथ बाहर आ जाते हैं। शुद्ध रक्त एक शिरा द्वारा हृदय में चला जाता है जो उसे फिर शरीर में फेंक देता है। फेफड़े में आक्सीजन ग्रहण करने वाले अनन्त रेशे हैं जो १५० वर्ग गज में फैल सकते हैं। फेफ़ड़े के भीतर एक गेलन वायु रुक सकती है। तथा सारी वायु एक साथ बाहर नहीं आती। एक सांस में लगभग $\frac{1}{7}$ वाँ भाग ही बाहर आता है तथा $\frac{6}{7}$ भाग वहीं उपस्थित रहता है। एक मिनट में साधारणतया हम १६ बार श्वास लेते हैं।

यंत्रसम्राट् या परिचालक यंत्र—हमारे शरीर की लगभग समस्त गतियाँ परिचालक यंत्र के आधीन हैं। हमारे हाथ पैर स्वयं नहीं चल सकते उन्हें परिचालक यंत्र का आदेश होता है। पढ़ना, हंसना, चलना, लिखना, आदि जितनी ऐच्छिक क्रियाएँ हैं सब वास्तव में परिचालक यंत्र द्वारा ही होती हैं, यहाँ तक कि हृदय का धड़कना, आमाशय, आँत का चलना, फेफड़ों का फूलना-पटकना आदि क्रियाएँ जो हमारी इच्छा पर अवलम्बित नहीं है इसी यंत्र के आदेशानुसार होती हैं। वास्तव में आँख नहीं देखती, वह एक कैमरे के समान चित्र लेने का यंत्र है। देखता है मस्तिष्क जो ज्ञान-तन्तुओं से उस चित्र का अनुभव करता है। मस्तिष्क का अनुभव करने वाला भाग ही प्रकाश को जान सकता है अन्यथा प्रकाश होते हुए भी विश्व अंधेरा ही है। हमारे शरीर के विभिन्न यंत्र अपना कार्य यंत्रसम्राट् की देख रेख में ही करते हैं। यही यंत्र सम्राट् एक यंत्र का सामंजस्य दूसरे से स्थापित करता है।

परिचालक यंत्र के निम्नलिखित विशेष भाग हैं:—

(१) सेरेब्रम् (Cerebrum) बृहन्मस्तिष्क।

(२) सेरेबल्लम् (Cerebellum) लघु मस्तिष्क।

(३) मृदुला (Mendulla)

(४) रीढ़ रज्जु (Spinal Cord)

(५) ज्ञान तन्तु (Nerve tissues)

बृहन्मस्तिष्क शरीर साम्राज्य का राजा है। यह कपाल की मंजूषा के अगले भाग से लेकर पिछले आधे भाग तक फैला हुआ है। ऊपर से अर्द्ध गोलाकार है तथा स्वयं भी दो भागों में विभक्त दिखलाई पड़ता है। बीच में गहरी खाई सी है। बृहन्मस्तिष्क अनुभव, बुद्धि तथा इच्छा का स्थान है। यह पहिले लिखा जा चुका है कि शरीर तथा मस्तिष्क के अनुपात से मनुष्य का मस्तिष्क सबसे बड़ा है। दूसरे मनुष्य के मस्तिष्क में पशुओं की अपेक्षा मोड़ अधिक पाये जाते हैं सेरेब्रूम के दो स्तर हैं। ऊपरी स्तर श्वेत-मिश्रित धूम्र वर्ण का है तथा कोर्टेक्स कहलाता है। कोर्टेक्स के नीचे श्वेत मज्जा का बना उसी आकृति का दूसरा भाग है जिसे सेरेब्रम ही कहते हैं। कोर्टेक्स में विभिन्न मनुष्यों में दस लाख से एक करोड़ तक सेल होते हैं तथा आश्चर्य की बात यह है कि जिस मनुष्य के जितने कोर्टेक्स-सेल होते हैं उतने ही रहते हैं। परीक्षणों से पता लगा है कि सोचना समझना आदि कार्य कोर्टेक्स ही में होते हैं तथा निम्न सेरेब्रम उसके आधीन काम करता रहता है। यदि समस्त कोर्टेक्स निकाल दिया जाये तो निम्न सेरेब्रम काम सम्हाल लेता है किन्तु यदि कोर्टेक्स का कोई भाग ही नष्ट कर दिया जाये तो जिस अंग का नियम वह भाग करता था वह व्यर्थ हो जायेगा क्योंकि शेष कोर्टेक्स के रहते निम्न सेरेब्रम इस कार्य को सम्हालना अपना कर्त्तव्य नहीं समझता। शरीर के समस्त ऐच्छिक कार्य सेरेब्रम का मध्य का भाग जो कान के पास आरम्भ होता है करता है। इस अर्ध वृत्ताकार भाग के अंग गला, चेहरा, हाथ,

पग आदि की गति के नियामक है। एक और आश्चर्य की बात यह है कि इस अर्धवृत्त का दाहिना भाग शरीर के बाईं ओर के अंगों का नियामक है तथा बाँया भाग दाहिनी ओर के अंगों का। इस प्रकार यदि सेरेब्रम के दाहिने भाग को आघात पहुँचेगा तो शरीर के बायें अंग व्यर्थ हो जायेंगे। अधिकतर लोग दक्षिण हस्तक हैं अर्थात् दायें हाथ से अधिकतर कार्य करते हैं तथा इनके समझने; चलने, फिरने आदि का काम सेरेब्रम के बायें भाग के आधीन है। किन्तु वाम हस्तकों में इसके प्रतिकूल विशेष क्षेत्र दाहिनी ओर है। शरीर की समस्त गतियों के अंग बटवारे के अनुसार दो क्षेत्र हैं किन्तुबोली या भाषण का नियामक एक ही है, जोड़ा नहीं।

सेरेवल्लम जो कभी कभी लघुमस्तिष्क कहलाता है कपाल के पिछले भाग में सेरेब्रम के नीचे गोल सामज्जा पिंड है। इस भाग का कार्य शरीर की विभिन्न क्रियाओं को सन्नद्ध रखना तथा सेरेब्रम से उनका सम्बन्ध स्थापित करना है। चलने फिरने में स्थिति को ठीक रखना भी इसी भाग का काम है। सेरेवल्लम के बाहर सेलों का आवरण सा है तथा भीतर भी सेलों के अनन्त गुच्छे हैं।

मृदुला मस्तिष्क का सब से निम्न भाग है। इसमें अत्यधिक संख्या में ज्ञान तन्तु हैं जो एक ओर से दूसरी ओर फैले हुए हैं। यही कारण है कि सेरेब्रम का दाहिना भाग बाँये अंगों का नियन्त्रण करता है तथा बांया दाहिने का। यह लगभग एक इंच लम्बी है तथा रीढ़ रज्जु से मस्तिष्क का सम्बन्ध स्थापित करती है। मृदुला को थोड़ी सी भी क्षति होने से फालिज गिर सकता है तथा अधिक क्षति होने से मृत्यु तक हो सकती है।

मृदुला से प्रारम्भ होने वाली डेढ़ फुट लम्बी रीढ़ रज्जु है जो रीढास्थियों के भीतर लगभग एक अंगुल मोटी है। मस्तिष्क की भांति रीढ़रज्जु पर भी कोमल सम संवाहक आवरण चढ़ा है। रीढ़रज्जु

श्वेत तन्तुओं की बनी है तथा दोनों ओर को ६१ शाखाएँ छोड़ती है। इस रज्जु का केन्द्रीय भाग श्वेत-धूम्र वर्ण है। रीढ़ से निकलने वाली ज्ञान तन्तुओं की शाखाएँ शाखा-प्रशाखाओं में विभाजित होकर शरीर के प्रत्येक स्थान में फैली हुई है। मस्तिष्क के संदेश इन्हीं शाखाओं के द्वारा पहुँचते हैं तथा वहाँ के निकले आदेश भी इन्हीं के द्वारा पहुँचते तथा कार्य रूप में परिणत होते हैं। अनेक प्रकार के कार्य तो रीढ़ द्वारा ही सम्पन्न हो जाते हैं। क्योंकि इन कार्यों में इच्छा या बुद्धि की आवश्यकता नहीं होती है। उदाहरणार्थ यदि हाथ में कोई वस्तु चुभ जावे तो वहाँ के ज्ञानतंतु यह संदेश रीढ़ रज्जु तक पहुँचाते हैं जहाँ से तुरंत ही हाथ खींचने का आदेश हो जाता तथा हाथ खिंच जाता है। किन्तु यदि चुभने वाला काँटा हाथ में घुस गया है तो फिर सेरेब्रम उसके निकालने या अन्य चिकित्सा के आदेश भेज सकता है।

निम्न श्रेणियों के प्राणियों के शरीर में ज्ञानतन्तुओं का जाल नहीं बिछा रहता किन्तु विकसित प्राणी बिना ज्ञान तन्तुओं से जीवन-रक्षा नहीं कर सकता। यदि ऐसा न हो तो शरीर के विभिन्न भागों में महान् दुर्घटनाएँ हो जावें तथा मस्तिक को उनका समाचार भी न पहुँचे तथा प्रतिकार के लिये भी कोई क्रिया न हो सके। ज्ञान तन्तु दो प्रकार के हैं (१) संदेश वाहक (२) आदेश वाहक। शरीर के विभिन्न भागों से संदेश लाने वाले तन्तु मुट्ठों के बाहरी ओर होते हैं किन्तु आदेश ले जाने वाले भीतरी ओर होते हैं। ये दोनों प्रकार के ज्ञान तन्तु तार के गुच्छों की भाँति प्रथम रीढ़ रज्जु में प्रवेश करते हैं तथा फिर मस्तिष्क में निर्दिष्ट स्थानों तक पहुँचते हैं। ज्ञान तन्तु बड़े लम्बे होते हैं। हाथी आदि बड़े जीवों के ज्ञान तन्तु तो कई गज़ लम्बे देखे गये हैं। प्रत्येक ज्ञान तन्तु एक सेल है, भेद यह है कि इस सेल का नाभिकण आदि एक ओर होता है तथा शरीर लम्बा फैला रहता है। बड़ा होने पर भी यह सेल भारी नहीं होता। ज्ञान तन्तुओं का

संदेश किसी भाव या कल्पना के रूप में नहीं चलता किन्तु यह भी विद्युत की तरंग की भाँति लंबान या दबाव के रूप ही में चलता है। उन तन्तुओं में जाने वाले आदेश या संदेश की चाल ४०० फुट प्रति सेकंड होती है तथा कार्य करते समय ज्ञानतन्तु का तापमान भी १/१० सेंटीग्रेड बढ़ जाता है। अतएव ज्ञान तन्तु का संदेश या आदेश वाहक कार्य भी एक रासायनिक घटना ही प्रतीत होती है।

ज्ञानेन्द्रियाँ—वास्तव में हमारी इन्द्रियाँ परिचालक यंत्र का एक भाग ही है तथा मस्तिष्क को संदेश पहुँचाने में सहायक हैं। त्वचा, जिह्वा, घ्राण, कान तथा चक्षु पाँच ज्ञानेद्रियाँ हैं जो वास्तव में स्पर्शोन्द्रिय ही के विकसित रूप हैं। त्वचा किसी वस्तु के स्पर्श से तीन प्रकार का अनुभव कर सकती है १ तापमान, २ दबाव तथा ३ दर्द। किन्तु स्पर्श करते समय तीनों अनुभव एक साथ होते हैं तथा अनुभव संदेश ज्ञान तन्तुओं द्वारा रीढ़ रज्जु में जा पहुँचता है। यदि ये ज्ञान तन्तु टूट जाये या इनका तापमान नष्ट हो जाये तो त्वचा यह अनुभव नहीं कर सकतीं। शरीर के प्रत्येक भाग की त्वचा एक ही क्षमता से अनुभव नहीं करती, कुछ स्थानों में अनुभव शक्ति अधिक होती है क्योंकि वहाँ अनुभव करने वाले तन्तु-यंत्र अधिक संख्या में विद्यमान है। जिह्वा की त्वचा में यह अनुभव तन्तु इतने अधिक हैं कि जिह्वा द्वारा अनुभूत दाँत के विछिद्र या उतार चढ़ाव वास्तविक रूप से कहीं बड़े प्रतीत होते हैं। जिह्वा में उपरोक्त तीन प्रकार के अनुभव तन्तुओं के अतिरिक्त विशेष प्रकार के स्वाद-अनुभवी गुच्छक होते हैं। इन गुच्छकों में स्वाद-सेल तथा ज्ञान तन्तुओं का समूह सा होता है जो स्वाद के ज्ञान की क्षमता रखता है। विभिन्न प्रकार के स्वाद अनुभव करने के लिए विभिन्न प्रकार के गुच्छक होते हैं तथा इनके सिरे ज्ञान तन्तुओं द्वारा रीढ़ रज्जु से जुड़े रहते हैं। यद्यपि सभी प्रकार के स्वाद गुच्छक जिह्वा के भीतर फैले रहते हैं किन्तु एक प्रकार के गुच्छक एक

स्थान-विशेष पर घनी संख्या में पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ जिह्वा अग्रिम भाग से मीठे का, मध्य भाग से नमकीन तथा तिक्त का तथा भीतरी भाग से कटु का अनुभव करती है। समुच्चय रूप से समस्त जिह्वा का अनुभव मस्तिष्क को पहुंचता रहता है तथा सुस्वादु भोजन का प्रभाव लाला ग्रन्थियों पर पड़ता है। जिह्वा के समान नासिका या घ्राणेन्द्रिय भी एक प्रकार की विशेष त्वचा है। नासिका का केवल १० प्रतिशत भाग ही सूंघने का काम करता है। नासिका के मूल के समीप वायुमार्ग के ऊपरी तल पर एक झिल्ली है जो पीले से तरल पदार्थ से तर रहती है। जब तक गन्ध वायु इस झिल्ली का स्पर्श नहीं करती हमें गन्ध का ज्ञान नहीं होता। इस झिल्ली में गन्ध ज्ञान-गुच्छक बिखरे पड़े हैं तथा ज्ञान तन्तुओं से सम्बन्धित हैं। मस्तिष्क इन ज्ञान तन्तुओं से गन्ध जान लेता है। अच्छे भोजन की गन्ध से भी लाला ग्रन्थियों पर प्रभाव होता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रथम तीन ज्ञानेन्द्रियों की बनावट सीधी-सादी है किन्तु कर्ण तथा चक्षु की बनावट असाधारण है। श्रोत्रेन्द्रिय के तीन भाग हैं। बाह्य कर्ण का कर्ण-शष्कुली एक त्वचा से आच्छादित कार्टिलेज का खण्ड है जो कपाल के कर्ण-छिद्र के चारों ओर फैला हुआ है तथा शब्द को कर्ण-नली में भेजने में सहायक है। मध्य कर्ण तथा आन्तरिक-कर्ण-यंत्र अस्थियों से सुरक्षित कुहर में बड़ी बुद्धिमानी से निर्मित प्रतीत होते हैं। कर्ण शष्कुली से कर्ण नली आरंभ होती है जो प्रायः एक इंच लम्बी होती है जिसके अन्त में एक झिल्ली (या कर्ण-ढोल) नली को रोके हुए है। इस झिल्ली का सम्बन्ध एक आगे की ऐसी ही झिल्ली से तीन सूक्ष्म अस्थियों की एक श्रृंखला से होता है। प्रथम अस्थि कर्ण-ढोल से संलग्न है तथा नवीन दूसरी झिल्ली से जो शंख के से चक्र की आकृति के कुहर की "खिड़की" पर लगी है। इसी कुहर के भीतर एक झिल्ली का थैला है जो कोचेला

(cochela) कहलाता है तथा जिसमें कर्ण के ज्ञान तन्तु का सिरा डूबा हुआ है। दूसरी ओर यह ज्ञान तन्तु मस्तिष्क के शब्दानुभवशील भाग से सम्बन्धित है। शब्द पहले बाह्य कर्ण पर पड़ता है तथा कर्ण नली में प्रवेश करता है। इस शब्द से कर्ण-ढोल चलायमान होता है जिससे इससे सटी तीन अस्थियों की श्रृंखला हिलकर द्वितीय झिल्ली को गतिमान करती है। इससे तरल पदार्थ में कम्पन होता है तथा ज्ञान तन्तु तुरन्त शब्द-संदेश मस्तिष्क को पहुँचा देता है। कर्ण-ढोल के उचित रूप से गतिमान होने के लिये ढोल के दोनों ओर वायुभार एकसा होना आवश्यक है। अतएव गले के निम्न भाग से एक नली कर्णढोल के पीछे तक गई है। जुकाम-नज़ले के समय कंठ के सूजन के कारण प्रायः यह नली (Eustachian Tube) बन्द हो जाती है तथा कर्ण-ढोल ठीक कार्य नहीं कर पाता। ऐसी दशा में मनुष्य कुछ समय के लिये बहरा हो जाता है।

आन्तरिक कर्ण मनुष्य की स्थिति तथा संतुलन रखने में भी सहायक है। यह कार्य कोचलिया की समकक्ष तोलन इन्द्रिय द्वारा होता है। मनुष्य द्विपद है तथा दो पगों पर आधार तथा स्थिति रखना साधारण बात नहीं है। कर्ण की दूसरी झिल्ली के परली ओर तोलन-इन्द्रिय है जिसका आधार एक छोटा सा तवा है इस तवे पर तीन अर्ध वृत्ताकार तोलन-नलियाँ खड़ी रहती हैं। इन नलियों में एक तरल पदार्थ भरा रहता है तथा बहुत से छोटे छोटे रोम होते हैं तथा कुछ चूने के पत्थर के कण तैरते रहते हैं। शरीर के झुकने से तरल पदार्थ एक ओर को होता है तथा चूने के कण तोल नलियों के रोमों को दबाते हैं। इन रोमों से सम्बन्धित ज्ञान तन्तु मस्तिष्क को यह संदेश पहुंचाते हैं तथा मस्तिष्क तुरन्त शरीर के बिभिन्न अंगों को स्थिति संभालने के लिये गति का आदेश भेज देता। इस प्रकार पृथ्वी

के आकर्षण का प्रभाव निरंतर पड़ता रहता है तथा मस्तिष्क तोलन इन्द्रिय द्वारा स्थिति का ज्ञान प्राप्त करके शरीर का संतुलन ठीक रखता है। मछली झींगुर आदि निम्न श्रेणी के प्राणियों में तोलन इन्द्रिय रीढ़ के समीप होती है तथा विकास की सीढ़ियाँ चढ़ने में मानव-शरीर में यह कर्ण के समीप जा पहुंची है। यह बड़े आश्चर्य की बात है। वास्तव में यह छठी इन्द्रिय है जिसका उल्लेख पहले के विद्वानों ने नहीं किया। कर्ण कुहर के भीतर होने के कारण उन्हें इसका ठीक ज्ञान न था।

हमारे शरीर में केवल एक ही ऐसी इन्द्रिय है जो दूर से भी वाह्य वस्तु का अनुभव कर सकती है। हम अपनी आंखों से पास की सूक्ष्म वस्तुओं के अतिरिक्त दूरवर्ती तारों का भी अस्तित्व जान सकते हैं। किन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि हमारी आँखें उसी वस्तु को देख सकती हैं जिससे निकला हुआ या प्रतिबिम्बित प्रकाश हमारी आँख को स्पर्श करे। जिन तारों का प्रकाश दूरी के कारण पृथ्वी तक नहीं पहुँचा है वे हमें नहीं दीखते। इस प्रकार से यह इन्द्रिय भी स्पर्श पर निर्भर है।

चक्षु गोल कपाल की मंजूषा के निम्न कुहरों में रखे हैं। बाहर से हमें आँख गोलार्द्ध जैसी देख पड़ती है। आँख की वाह्य-रक्षा पलकों द्वारा होती है। पलकों के भीतर की त्वचा गीली रहती है तथा इसको तरल पदार्थ अधिकतर नमकीन- छोड़ने वाली अश्रु-ग्रन्थि से प्राप्त होता है। यह ग्रन्थियाँ आँखों के ऊपरी भाग में होती हैं। पलकों की त्वचा आँख को निरन्तर स्वच्छ करती है। आँख में श्वेत भाग से घिरी हुई काली पुतली है जिसके बीच में आँख के "कैमेरे" का लेन्स है। बाहर की वस्तु का प्रति बिम्ब काली पुतली पर पड़ता है जिससे कैमरे की भाँति वाह्य प्रकाश को रोकने की क्षमता है। जिस प्रकार कैमरे में फोकस के लिये मोटा या पतला लेन्स आवश्यकतानुसार

चश्मे से नेत्रों का विकार दूर करने की रीति

१. चक्षु की स्वस्थ स्थिति—प्रकाश किरण चक्षु-शीशे द्वारा ठीक रश्मिपट पर मिल रही है।

२. विकृत चक्षु—चक्षु के चपटा हो जाने से चित्र रश्मिपट के पीछे पड़ता है।

३. उन्नतोदर—शीशे से विकार दूर हो गया।

४. विकृत चक्षु—चक्षु के स्थूल हो जाने से चित्र रश्मि पट से आगे पड़ता है।

५. अवनतोदर—शीशे से विकार दूर हो गया।
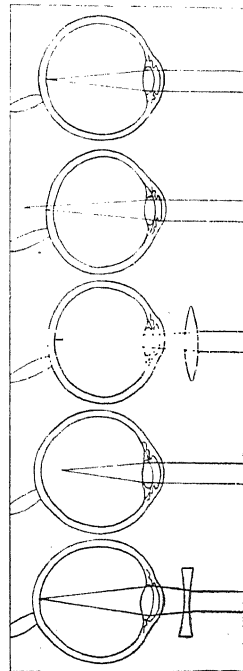
लगाना पड़ता है उसी प्रकार आंख का लेन्स भी मोटा या पतला हो सकता है। इस लेन्स में तरल पदार्थ भरा रहता है तथा आँख की सूक्ष्म पेशियाँ इसका आकार बदल सकती हैं। बाह्य वस्तु का प्रतिबिम्ब उचित रूप में सूक्ष्म होकर चक्षु गोलक के भीतरी आवरण पर पड़ता है। यह प्रकाश-पट (Retina) एक सेकंड के आठवें भाग तक चित्र को रख सकता है तथा इस पर से पिछले चित्र के हटने के पश्चात् ही नवीन चित्र आ सकता है। अतएव हमें $\frac{1}{8}$ सेंकड तक एक ही वस्तु दीखती रहती है। इसी लिए तीव्र गति से चलते हुए गोले तथा उल्का एक प्रकाश रेखा से प्रतीत होते हैं। महा कवि तुलसीदास जी कहते हैं—मानो विसाल परब्बत की नभलीक लसी कपि यों धुकि धायो।" सिनेमा चित्रपट पर भी चलते-फिरते चित्रों का दिखाई देना भी आंख को इसी प्रकार का धोखा है। प्रकाश-पट का सम्बन्ध चक्षु-ज्ञान तन्तुओं से होता है तथा ये तन्तु इसके अनुभव को मस्तिष्क के दृष्टि-कक्ष में पहुँचाते हैं। यदि यह भाग अपना काम बन्द कर दे तो आँख का सारा कार्य व्यर्थ हो जाये।

आंख की पुतली का रंग गर्म देशों में काला होता है क्योंकि यहाँ सूर्य का प्रकाश तीव्र होता है किन्तु ठण्डे देशों में पुतली भूरी होती है। पुतली का रंग प्रायः माता पिता की पुतलियों के रंग पर भी निर्भर है।

दोनों आँखों पर बाह्य वस्तु के दो अलग-अलग प्रतिबिम्ब पड़ते हैं तथा इनके कोण भी भिन्न होते हैं। किन्तु ये प्रतिबिम्ब एक दूसरे को पूर्ण करके वस्तु का वस्तुतः रुद प्रदर्शन करने में समर्थ होते हैं। चक्षु यंत्र की यह विशेषता हमारी मानसिक शक्ति को बड़ी सहायता पहुँचाती है तथा मानव की उन्नति में विशेष महत्व रखती है।

भाषण:—हम बोलने में जो ध्वनि करते हैं वह वास्तव में फेफड़े से निकली हुई वायु की गूंज है जो ध्वनि-यंत्र (Larynx) से आरंभ होती है यह वास्तव में श्वास-नली का ऊपरी भाग है तथा

ग्रीवा के ऊपरी तिहाई भाग तक फैला हुआ है। ध्वनि-यंत्र चार कार्टिलेज के अर्ध वृत्ताकार ख़ंडों तथा दो ध्वनि-रज्जुओं का बना है। ये रज्जु छोटी छोटी माँस पेशियों द्वारा खींचे जाते हैं तथा जितने भी खींच लिये जाते हैं उतनी ही तीव्र ध्वनि निकलती है। मीठी तथा सुरीली आवाज़ इन रज्जुओं को ढीला रखने से निकलती है इस ध्वनि की गूंज तथा प्रतिध्वनि वक्षस्थल, ग्रीवा तथा शिर करते हैं तथा फेफड़े ध्वनि उत्पन्न करने के लिये हारमोनियम की फुकनियों के समान कार्य करते हैं। ध्वनि का चढ़ाव ध्वनि-यंत्र ही से होता है। भाषण के समय स्वरों का उच्चारण मुख तथा ओष्ठ आदि के बढ़ाने, दबाने आदि के द्वारा होता है तथा व्यंजन जिह्वा द्वारा किसी स्थान विशेष पर ध्वनि को रोकनेसे उच्चरित होते हैं। जैसे ओष्ट्य व्यंजन (प फ ब भ म)। देव-नागरी में व्यंजनों का विभाग बड़ी वैज्ञानिक रीति से उच्चारण के स्थान के अनुसार किया गया है तथा प्राय: सभी स्वर व्यंजनों को वर्णमाला में रखने की चेष्टा की गई है। अतएव देवनागरी संसार की सभी वर्णमालाओं में श्रेष्ठ है किन्तु इसे भी दोषरहित नहीं कह सकते।

निष्प्रणालिक ग्रन्थियाँ (Ductless Glands) बीसवीं शताब्दी के अन्वेषणों से मानव-शरीर के एक नवीन यँत्र का पता लगाना आरंभ होगया है। अभी इस यंत्र के कार्य का पता पूर्ण रूप से नहीं लगा है किन्तु यह वैज्ञानिक जगत् की एक प्रबल धारणा है कि इस ग्रन्थियंत्र का पूर्ण अन्वेषण हो जाने पर मानव तथा अन्य जीवधारियों के शरीर के विषय में हमारा ज्ञान बहुत बढ़ जायेगा। संक्षेप में ग्रन्थियों तथा उनके प्रभावों का तारतम्य निम्नलिखित है:—
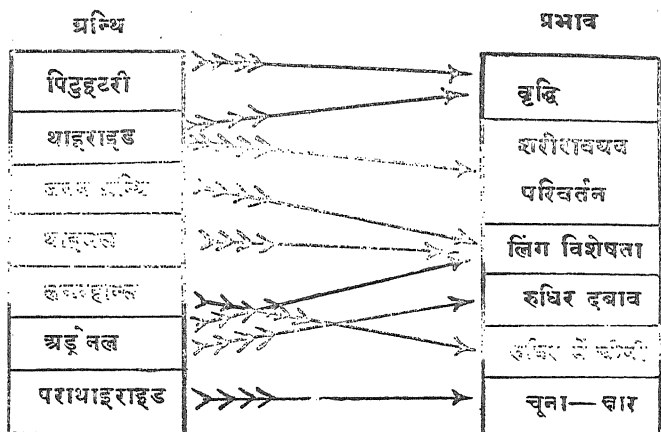
ये सब ग्रन्थियां निष्प्रणालिक इस लिये कहलाती हैं कि इनमें निर्मितरस को बाहर पहुँचाने के लिये नालियाँ नहीं हैं। इनमें जीवन रस (Harmones) बनते हैं जो विभिन्न ग्रन्थियों में विभिन्न प्रकार के होते हैं किन्तु भिन्न-भिन्द जातियों की एक ही ग्रन्थि के हार्मोन में कोई भेद नहीं होता अर्थात् बैल के थाइराइड हार्मोन में तथा मानव के थाइराइड हार्मोन में वैसे कोई अन्तर नहीं होता। अतएव यदि किसी मनुष्य में कोई ग्रन्थि थोड़ा जीवन रस उत्पन्न कर रही हो तो किसी पशु की उसी ग्रन्थि का जीवन-रस इन्जेकशन द्वारा शरीर में डाला जा सकता है। ऊपर के चित्र से स्पष्ट है कि भिन्न ग्रन्थियाँ विभिन्न प्रकार का पौष्टिक जीवन रस प्रस्तुत करके सीधा रक्त में डाल देती हैं।

पिटुइटरी (Pituitary) ग्रन्थि का विख्यात कार्य शरीर की वृद्धि है किन्तु यदि यह ग्रन्थि उचित रूप से कार्य न करने पर शरीर में विकृति उत्पन्न कर दे तो लिंग विशेषता पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। इस ग्रन्थि की कार्य शीलता अधिक होने पर मनुष्य बढ़ कर नौ

या दस फ़ीट का भी हो जाता है तथा शिथिलता से वामन (बौना) भी रह सकता है। एक ग्यारह वर्ष का लड़का पिट्युइटरी ग्रन्थि अधिक कर्मशील होने के कारण नौ फ़ीट लम्बा हो गया। वामन तो प्रायः देखने में आते हैं। यदि युवक होने पर यह ग्रन्थि चपल बनी रहे तो शरीर के कुछ बढ़ने योग्य अवयव—जैसे, हाथ, पाँव, चेहरा, नाक, ठोड़ी आदि—बढ़ते ही चले जाते हैं। यह ग्रन्थि मस्तिष्क के आधार-स्थान पर स्थित है।

इस ग्रन्थि से बड़ा सम्बन्ध रखने वाली दूसरी ग्रंथियाँ थाइराइड (Thyroid) हैं जो गले में ध्वनि-यंत्र के दोनों ओर दो छोटी-छोटी ग्रंथियाँ हैं। इस ग्रंथि द्वारा निर्मित रस थाइरोजिन (Thyroxin) प्राणियों की वृद्धि तथा सुख का विशेष कारण है। इस जीवन-रस का बड़ा भाग आयोडिन् (Iodine) है। जिन देशों या प्रान्तों की भूमि में यह पदार्थ कम है या इसका अभाव है वहाँ प्राणियों का निवास करना तथा स्वस्थ रहना प्रायः असंभव था किंतु ग्रंथि-अन्वेषण के पश्चात् वहाँ प्राणी तथा मनुष्य थोड़ी सी मात्रा में आयोडिन् खाकर रह सकते हैं। यदि किसी मनुष्य की थाइराइड ग्रन्थि ठीक कार्य न करती हो तो उसे थाइरोजिन या आयोडिन देना ठीक होता है। शरीर की वृद्धि तथा तारतम्य में थाइरोजिन तथा पिट्युइटरी के हार्मोन मिलकर कार्य करते हैं। यदि शरीर से थाइराइड को निकाल दें तो वह मनुष्य गंजा, मूर्ख, मोटी त्वचा वाला, बड़े सी थोंध वाला हो जाता है। मेंढक; मछली, पनखिलाड़ी आदि पर थाइरोंजिन तथा आयोडिन् के प्रयोग करके देखा गया है कि शरीर के अवयवों के परिवर्तन में इस ग्रंथि का विशेष हाथ है। थाइरोजिन की कमी से इन प्राणियों का विकास तक रुक जाता है।

पराथाइराइड (Parathyroid) ग्रन्थियाँ थाइराइड के समीप तथा सम्मिलित ग्रन्थियाँ हैं। ये शरीर के लिये चूने के लवण का प्रबन्ध

करती हैं। यदि इन्हें निकाल दिया जाये तो रक्त में चूने के लवण (Calcium) की इतनी कमी हो जायेगी कि शरीर की पेशियाँ स्थिर-सी हो जायेंगी तथा मृत्यु भी हो सकती है।

अड्रेनल ग्रन्थियाँ (Adranals) गुर्दों के छोर पर दो छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ हैं। ये ग्रन्थियाँ एड्रिनेलिन नामक रस रुधिर में छोड़ती हैं। यह रस शरीर पर चार प्रकार से प्रभाव डालता है:—[१] रुधिर के दबाव को ठीक रखना; [२] रुधिर में रुधिरचीनी (Glucose) को ठीक रखना; [३] श्रम को दूर करना तथा [४] लिंग विशेषता को उचित उन्नति। एड्रिनेलिन रुधिर में घुलकर केशिकाओं को सिकोड़ती हैं तथा दबाव को कम या अधिक कर सकती हैं। इसी क्रिया से शरीर का तापमान भी ठीक रहता है। यह रस रुधिर चीनी के निर्माण में सहायक है। रुधिर का प्रवाह बढ़ा कर यह रस श्रम को दूर कर सकता है। इसके चौथे प्रभाव के विषय में अभी पूर्ण अन्वेषण नहीं हुआ है।

जिस प्रकार मस्तिष्क समस्त परिचालक-यंत्र पर अपना नियंत्रण रखता है उसी तरह पिटुइटरी ग्रन्थि सभी ग्रन्थियों पर प्रभाव रखती है। ग्रन्थि यंत्र का पूर्ण अन्वेषण हो जाने पर यह संभव है कि हम इस सम्बंध को और भी अधिक समझ लें तथा शरीर के बहुत से रहस्य खुल जायें। इस में संदेह नहीं कि यह नवीन यंत्र भी हमारे शरीर पर अत्यन्त प्रभावशाली है। अस्थि पंजर की भांति ग्रंथि यंत्र भी प्राणियों की एकता तथा विकास का प्रमाण है। प्रत्येक प्रकार की ग्रन्थि से निकले हार्मोन सब पशु-पक्षियों में एक से हैं। बैल तथा मानव के शरीर का थाइरोज़िन एकसा ही है तथा अन्य प्राणियों का भी। कुछ प्राणी कम विकसित हैं तथा कुछ अधिक किन्तु उनके हार्मोन् में कोई भेद नहीं होता तथा एक जाति के जीव के हार्मोन् बेखटके दूसरी जाति को दिये जा सकते हैं। ग्रन्थि-यंत्र प्राणिमात्र की एकजातीयता का ज्वलंत प्रमाण है।

इस अध्याय में मनुष्य के शरीर की क्रियाओं की रूप रेखा आप के समक्ष रखी गई है। संभवतः संक्षेप में सभी उल्लेखनीय विषयों का वर्णन आया है। मानव-शरीर का यह आन्तरिक एवं महत्वपूर्ण ज्ञान प्राप्त करना कोई साधारण बात नहीं थी। यह मानव के सहस्त्रों वर्षों के अध्यवसाय का फल है तथा प्रकृत-मानव संघर्ष में मानव का बड़ा सहायक है।

अध्याय ७

मानव में जातियों का प्रादुर्भाव

वैज्ञानिकों का इस विषय में एक मत है कि इस समय जो मानव संसार में निवास करता है, एक ही जाति का है। उसकी उत्पत्ति तथा आनुवंशिकता में कोई भेद नहीं है। अतएव जाति (Nace) विषयक मिथ्याभिमान केवल उन अत्याचारों का मूल कारण है जो कुछ लोग दूसरों पर किया करते हैं। एक स्थान या समूह के मानव दूसरों से श्रेष्ठ या नीच नहीं हैं। पिछले युद्ध में हिटलर ने यहूदियों तथा अन्य योरोपीय निवासियों पर इस आधार पर अत्याचार किया कि हिटलर तथा उसके जर्मन-निवासी ईसाई "आर्य" हैं तथा शेष सब "अनार्य"। प्रथम तो उसकी यह धारणा ही निर्मूल थी कि योरोप या जर्मनी के सब निवासी "आर्य" हैं; दूसरे वैज्ञानिक दृष्टि से आर्यों को अनार्यों से श्रेष्ठतर समझना अन्याय है। सब मनुष्य मानव की सन्तान है तथा उन्हें पृथक् जाति समझना अज्ञानता का द्योतक है। जाति तथा उसके आधार पर व्यर्थ की श्रेष्ठता का ढोंग संसार में मानव-जाति के एक बहुत बड़े भाग के कष्ट का कारण बना हुआ है। योरोपीय लोगों का यह मिथ्याभिमान अफ्रीका तथा एशिया के निवासियों के जीवन को भार बनाये हुए है और साम्राज्यवाद का पृष्ठ-पोषक है। हमारे प्रवासी भाई जो अफ्रीका, फिजी, लंका, बर्मा, मलाया आदि में रहते हैं इस आधार-हीन जाति-भेद से महान् कष्ट उठा रहे हैं।

<u>जाति क्या है</u>—मानव के विभिन्न समूहों में जो भेद पाये जाते हैं प्रायः उन्हें जाति का नाम दिया जाता है। चीनी पीतवर्ण, छोटी आँख वाले तथा चौड़े से मुख वाले होते हैं। योरोपीय प्रायः गौरवर्ण लम्बे मुख वाले तथा सीधी विशाल आँखों वाले हैं। भारतवर्ष में अनेक मनुष्य योरोपीय लोगों की सी आकृति के हैं क्योंकि ये योरोपियनों की भाँति आर्यों के वंशज हैं। किन्तु बहुत से लोग इस देश के मूल निवासियों के तथा आर्य, शक, हूण, यूची, मंगोल आदि आक्रमणकारियों के सम्मिश्रण से उत्पन्न हुए हैं। उनकी आकृति पर उनके पूर्वजों की छाप स्पष्ट है। अतएव "भारतीय" उस मिश्रित मानव-समुदाय का नाम है जो इतिहासातीत काल से ही निर्माण होता चला गया है। वैज्ञानिक दृष्टि से संसार के सभी मानव-समुदाय थोड़े या बहुत सम्मिश्रण के परिणाम हैं। "जाति विषयक शुद्धता" का संसार में अस्तित्व नहीं है। अतएव जाति-भेद उन लक्षणों पर निर्भर है जो किसी मानव-समुदाय में पाये जाते हैं तथा अन्य समुदायों में प्रायः नहीं मिलते या अत्यन्त न्यून परिमाण में मिलते हैं। ऐसे लक्षणों के विषय में यह भी आवश्यक है कि वे उस मानव समुदाय में पैतृक रूप से चलते हों। कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि विभिन्न मानव समुदायों में कुछ लक्षण स्वयं भी उत्पन्न हो गये हैं तथा पिता से पुत्र को निरंतर मिल रहे हैं। इसका कारण वे निष्प्रणालिक ग्रन्थियों के कार्य की भिन्नता को समझते हैं जो किसी स्थान विशेष में अपनी कार्य प्रणाली में कुछ परिवर्तन कर लेती हैं तथा जो भेद उत्पन्न कर देती हैं वह उस विशेष मानव समुदाय में चलता ही रहता है।

जिन वाह्य लक्षणों पर जातियों के अध्ययन में बल दिया जाता है वे ये हैं—१ त्वचा का वर्ण। २ केशों का वर्ण तथा आकृति। ३ शरीर की लम्बाई। ४ शिर का "लम्बा" या "चौड़ा" होना। ५ चेहरे की बनावट।

त्वचा का वर्ण श्वेत तथा काले के अतिरिक्त पीत भी हो सकता है। श्वेत तथा काले के सम्मिश्रण से तथा जलवायु के प्रभाव से भी श्वेत तथा काले के बीच के वर्ण देखने में आते हैं। केश सीधे, लहरदार, घुंघराले हो सकते हैं किन्तु इनका ऐसा होना प्रत्येक बाल की आकृति पर—अर्थात् गोल, दीर्घवृतीय या चपटा होने पर—निर्भर है। केश-भेद वास्तव में जाति-भेद का आधार माना जा रहा है। शरीर तथा अंगों की लम्बाई यद्यपि जातिभेद में प्रायः आधार मानी जाती है किन्तु यह बहुत कुछ पौष्टिक भोजन पर निर्भर है। शिर के लम्बा या चौड़ा होने का आधार वैज्ञानिक रीति से शिर की भाप है। यदि चौड़ाई लंबाई का ७० प्रतिशत या उससे न्यून हो तो फिर लम्बा कहा जाता है तथा यदि चौड़ाई लम्बाई की ८० प्रतिशत के समीप हो तो शिर चौड़ा है। किसी जाति-विशेष के विषय में ऐसा निष्कर्ष अनेक मनुष्यों के शिर नाप कर औसत के आधार पर निकाला जाता है। चेहरे की बनावट भी जाति-अध्ययन में विशेष महत्व रखती है। हमें आँखों का वर्ण तथा आकृति, ठोड़ी की आकृति, बालों की न्यूनता या अधिकता, नाक की आकृति आदि पर ध्यान देना पड़ता है। उन्हीं विभिन्न अंगों की आकृति का समुदाय प्रायः किसी मानव-समुदाय का जाति-निर्णायक होता है।

आनुवंशिकता—ये लक्षण हमारे समक्ष यह समस्या रख देते हैं कि क्या ये लक्षण पैतृक-सम्पत्ति के रूप में विभिन्न मानव-जातियों में चलते रहते हैं? इस विषय में पूर्ण रूप से "हाँ" नहीं कह सकते। आनुवंशिकता एक विचित्र वस्तु है। गोरी तथा काली जातियों के सम्मिश्रण से गेहुएँ रंग वाली जाति उत्पन्न होनी आवश्यक नहीं। सन्तान गोरी भी हो सकती है तथा काली भी। यह भी होता है कि कुछ व्यक्ति गोरे हों तथा कुछ काले। सम्मिश्रण से नवीन जातियाँ भी उत्पन्न हो सकती हैं। उदाहरणार्थ किसी व्यक्ति की आँखों का वर्ण माता की जाति का हो सकता है तथा त्वचा का वर्ण पिता की जाति

का सा। अतएव किसी व्यक्ति विशेष की आकृति के आधार पर उसकी जाति का अनुमान लगा बैठना भ्रमात्मक हो सकता है। जाति के विशेष लक्षणों को समस्त जाति के अवलोकन तथा अध्ययन के पश्चात् ही निश्चित कर सकते हैं। नियमानुकूल अध्ययन ही से उन विशेष लक्षणों का पूरा पता लगाया जा सकता है जो साधारणतया किसी जाति या समुदाय में मिलते हैं तथा उन व्यक्तिगत विशेषताओं से अलग हैं जो प्रकट होकर लुप्त भी होती रहती हैं।

जब हम किसी जन-समुदाय को विशेष जाति बतलाते हैं तो हमारा तात्पर्य यह होता है कि उस में कुछ ऐसे लक्षण विद्यमान हैं जो अन्य समुदायों के लक्षणों से भिन्न हैं तथा ये लक्षण उस समुदाय के अधिकतर व्यक्तियों में मिलते हैं। यदि कुछ व्यक्ति ऐसे भी हों जिनके लक्षण समुदाय के साधारण लक्षणों से भिन्न हैं तो वे अपवाद कहे जाते हैं। इस प्रकार के अपवादों के आधार पर ही यह निष्कर्ष स्थित है कि समस्त मानव वास्तव में एक ही जाति है। जाति-भेद मूल में नहीं था किन्तु पश्चात् की उत्पत्ति है। जाति-अध्ययन से यह लाभ है कि किसी जाति के लक्षणों को स्पष्ट करने के पश्चात् किसी सीमा तक उस जाति के इतिहास का पता लगता है तथा यह अनुमान लगाया जाता है कि किन दूसरे जन-समुदायों के साथ उसका सम्मिश्रण हुआ होगा तथा ऐतिहासिक एवं इतिहासातीत काल में उस जाति की यात्राएँ किधर को हुई होंगी। दूसरे जाति-अध्ययन द्वारा जब हम किसी जन-समुदाय के शारीरिक लक्षणों को स्थिर कर लेते हैं तो हमें यह बतलाना भी सरल होता है उक्त जाति भोजन की न्यूनता आदि से कितनी प्रभावित हो रही है अथवा वह जाति शारीरिक तथा मानसिक उन्नति कर रही है या अधोगति को प्राप्त हो रही है। हम उस जाति की परंपरागत जीवन प्रणाली से यह भी अनुमान लगा सकते हैं कि यदि उस जाति के कुछ व्यक्ति किसी

नवीन वातावरण में जाकर रहने लगे हैं या रहते हैं तो उन पर क्या प्रभाव होने की संभावना है।

मानव की जातियाँ:—त्वचा के वर्ण के अनुसार श्वेत जाति योरोप तथा एशिया के उन भागों में निवास करती है जिनमें उत्तरी तथा मध्य योरोप, पश्चिमी एशिया तथा भारतवर्ष भी सम्मिलित है। कृष्ण या काली जाति का निवास-स्थान अफ्रीका है। पीली जाति मध्य तथा पूर्वी एशिया में रहती है किन्तु इसकी एक प्राचीन शाखा अमेरिका के आदिम निवासी हैं। दक्षिणी-पूर्वी एशिया के प्रशान्त महासागरीय द्वीपों के निवासी भी इसी जाति में हैं किन्तु उन्हें कोई कोई विद्वान् ताम्र जाति नाम की पृथक् जाति भी मानते हैं। आस्ट्रेलिया के आदिम निवासी कभी-कभी पृथक् जाति माने जाते हैं। यद्यपि इनका रंग काला है। फिर भी वास्तव में ये श्वेत जाति की एक प्राचीन शाखा है जो शायद उक्त जाति के पूर्ण रूप से विकसित होने के प्रथम ही अलग हो गई थी। जापान के उत्तरी हिस्सों में भी ऐसी ही एक और शाखा है। यद्यपि यह जाति-भेद केवल त्वचा के वर्ण के अनुसार है किन्तु यदि इसमें केश तथा शिर की आकृति को भी सम्मिलित कर दिया जावे तो भी बहुत सीमा तक यह भेद स्थिर रहता है। काली जाति या अफ्रीका के नीग्रो लोगों के बाल गुलझटदार तथा शिर लम्बा होता है। चीनी या पीली जाति के केश सीधे तथा शिर चौड़ा या गोल होता है। श्वेत जाति में केश लहरदार तथा शिर न तो लम्बा ही तथा न चौड़ा ही होता है। यहाँ तक तो कुशल है किन्तु जब हम आगे बढ़ते हैं तो कठिनाइयाँ बढ़ जाती हैं। यदि हम अमेरिका के आदिम निवासियों को पीली जाति में रखें तो कठिनाइयाँ यह हैं कि इनमें लम्बे तथा चौड़े दोनों प्रकार के शिर मिलते हैं। दूसरे ताम्र जाति में भी लम्बे तथा चौड़े शिर मिलते हैं और लहरदार गुलझटदार बाल भी पाये जाते हैं जिससे केवल त्वचा के वर्ण के

आधार पर की गई विभिन्नता अपूर्ण सिद्ध होती है। कुछ वैज्ञानिकों या यह मत है कि दक्षिणी-पश्चिमी एशिया में निवास करने वाली जाति का सम्मिश्रण आदि प्राचीन काल में किसी लम्बे शिर वाली जाति के साथ हुआ था जो श्वेत जाति से मिलती-जुलती रही होगी। इस प्रकार से श्वेत-जाति दो विशिष्ट मानव जातियों के मध्य में है एक पीली चौड़े शिर वाली तथा दूसरी काली लम्बे शिर वाली। संभव है श्वेत जाति ही मानव की प्रथम जाति है तथा काली और पीली जातियाँ विकसित एवं विशिष्ट जातियाँ हैं।

योरोप में मानव की उपजातियाँ:—अब हम मानव के भौगोलिक विस्तार की ओर दृष्टिपात करते हैं। इस समय योरोप में मानव की तीन उपजातियाँ हैं:—उत्तरी योरोपीय नार्डिक मानव, मध्य योरोपीय मानव तथा भू-मध्य सागरीय मानव। नार्डिक उपजाति लम्बी, श्वेत त्वचा वाली, सुन्दर केश वाली, नीली आँखों वाली तथा लम्बे शिर वाली होती है। भू-मध्य सागरीय मानव कुछ छोटा, काली-सी त्वचा वाला, काले बालों वाला, काली आँखों वाला और लम्बे शिर वाला होता है। अल्पीय मानव मंझोला, हल्के ताम्र-वर्ण केशों वाला, तथा चौड़े शिर वाला होता है। योरुप के उत्तरी भागों के मनुष्य नार्डिक हैं, मध्य के अल्पीय हैं तथा दक्षिणी ब्रिटेन, तथा भूमध्य सागर के तटस्थ देशों में सहारा मरुस्थल के किनारे तक भूमध्य सागरीय मानव पाया जाता है। अरब इसी मानव के एक भाग हैं किन्तु यह ही जाति इस मानव तथा अल्पीय मानव के सम्मिश्रण से बनी है। मध्य योरुप की प्रसिद्ध स्लाव जाति अल्पीय मानव की एक शाखा है तथा रूस के निवासी स्लाव, एशियाई, तथा मंगोल जातियों के सम्मिश्रण हैं।

"कृष्ण" अफ्रीका में मानव की उपजातियाँ:—अफ्रीका का उत्तरी तट तथा सहारा मरुस्थल की उत्तरी सीमा तक भूमध्य साग-

रीय मानव रहता है। इस महान् मरुस्थल की दक्षिणी सीमा से आरम्भ होने वाला समस्त अफ्रीका "कृष्ण" अफ्रीका कहलाता है क्योंकि यही अफ्रीका की काली जातियों का निवास-स्थान है। अफ्रीका के निवासियों का जाति-विश्लेषण करने में उन महान् यात्राओं का उल्लेख करना आवश्यक है जो मानव की विभिन्न जातियों ने इतिहासातीत काल में की थीं। अफ्रीका की सबसे प्राचीन जातियाँ बुशमेन तथा पिग्मी हैं तथा दोनों के विषय में यह निश्चित है कि ये बाहर से इस महाद्वीप में आये थे। पिग्मी जाति की अनुन्नत दशा यह सिद्ध करती है कि ये सबसे प्रथम यहाँ आये। बुशमेन जो छोटे, काले, अत्यन्त घुंघराले केशों वाले तथा भारी उरू वाले होते हैं। प्राचीन पाषाण युग में स्पेन से अफ्रीका चले आये थे। दोनों उप-जातियों का सम्मिश्रण विशुद्ध नीग्रो लोगों से अवश्य हुआ है जो इनके पश्चात् इस महाद्वीप में आ पहुँचे। ये पश्चिमी अफ्रीका में प्राय: पाये जाते हैं तथा काले, घुंघराले केश वाले, मोटे होठों वाले, चपटी नाक वाले हैं। किन्तु अफ्रीका में सर्व प्रसिद्ध जाति बन्तू-भाषा-भाषी लोग हैं जो नीग्रो तथा उनके पश्चात् आने वाली हेमैटिक जाति के सम्मिश्रण से उत्पन्न हुए हैं। हैमेटिक जाति के विषय में यह धारणा है कि यह भूमध्य सागरीय मानव की एक शाखा थी। नीग्रो दोनों प्राचीन उपजातियों से सभ्य थे किन्तु बन्तू-भाषा-भाषी और भी उन्नत थे।

मानव के आदिमस्थान एशिया की उपजातियाँ:—एक पिछले अध्याय में मानव के विकास की कहानी लिखते हुए हम यह उल्लेख कर चुके हैं कि एशिया ही इस युग प्रवर्तक जीव की जन्म भूमि है। उद्गम स्थान होने के कारण एशिया के निवासियों का जाति-विभाग जटिल एवं अन्धकारपूर्ण है। हो सकता है कि मानव का सर्व-प्रथम सुरक्षित निवास स्थान एशिया के मध्यवर्ती पर्वतों तथा

पठारों के किनारे हों जहाँ आरम्भिक मानव को निवास करने योग्य गुहाएँ तथा छोटी छोटी जलवाहनी धाराएँ मिलीं तथा जहाँ की ऊँची नीची पथरीली भूमि में प्रकृति के विरुद्ध निरन्तर संग्राम करने वाले नये जीव ने अपनी प्रारम्भिक विकास-यात्रा पूर्ण की हो। यदि यह अनुमान सत्य है तो सबसे पहले हमें इस भाग के निवासियों पर ध्यान देना उचित है। इस पर्वतीय प्रदेश में चौड़े सिर वाले मानव रहते हैं। पामीर पठार को मध्यवर्ती सीमा मान कर यहां के निवासी दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं। पामीर के पश्चिम में अल्पीय मानव से मिलते-जुलते श्वेत रंग के, भूरी या नीली आँखों वाले तथा उभरी नासिका वाले मानव पाये जाते हैं। पामीर के पूर्व में कुनलुन पर्वत की उपत्यकाओं में, तिब्बत में, तथा चीन में भी पीले, सीधे तथा मोटे काले बालों वाले, काली पुतली वाले, चौड़े मुख के, चपटी छोटी नासिका वाले तथा चेहरे पर कम बालों वाले मंगोल जाति के मानव हैं। इन दोनों प्रकार के मानवों का मानव के इतिहास पर बड़ा प्रभाव है।

प्राचीन पाषाण युग के अन्त से ही पामीर से पश्चिम के निवासी निरंतर योरोप तथा पश्चिमी एशिया पर आक्रमण करते रहे तथा नव पाषाण युग के आरंभ में तो इनकी शाखाएँ योरोप के मध्यवर्ती पर्वतों पर जम कर बैठ गयीं। तथा योरोप के निवासियों को इन्होंने पशु-पालन तथा कृषि सिखाई। इसके पश्चात् भी ये लोग योरोप पहुँचते ही रहे तथा मध्य युग में निरंतर इनके आक्रमण होते रहे तथा अन्त में सन् १४९३ ई० में इन्होंने कुस्तुन्तुनियाँ की प्रसिद्ध राजधानी को विजय किया। उत्तरी एशिया, अफ्रीका, तथा चीन के उत्तरी प्रदेश में सर्व प्रथम जो मानव बस गये थे वे एशिया के मध्यवर्ती दक्षिणी प्रान्त से भारत के उत्तर पश्चिम में गये थे। ये यात्राएँ प्राचीन पाषाण युग में हुई थी तथा इस यात्रा की समाप्ति अमरीका में नव पाषाण युग में

हुई । इस बीच में पामीर के पूर्व के निवासी मंगोल भी अमरीका जा पहुँचे थे तथा इसी कारण से वहाँ के प्राचीन निवासियों की आकृति में मंगोल जाति के लक्षण मिलते हैं । पश्चिम की ओर मंगोल जाति का सम्मिश्रण समस्त उत्तरी एशिया होते हुए योरोप के उत्तरी प्रदेश लैथलैन्ड तक पाया जाता है । फिनलैन्ड के हंग्री तक के प्रदेश के निवासी भी एशिया ही से आये प्रतीत होते हैं ।

जो देश मध्यवर्ती पार्वत्य प्रदेश से दक्षिण में स्थित है उन पर मंगोल जाति का प्रभाव जानने से प्रथम हमें संसार में मानव के सब से पहिले विस्तार तथा यात्राओं को समझना आवश्यक हैं । इस बात के अनेक प्रमाण मिलते हैं कि भारत पश्चिोत्तर में, पामीर के दक्षिण में जो प्रदेश हैं, उससे इतिहासातीत काल में निरन्तर मानव समुदाय संसार के विभिन्न देशों एवं महाद्वीपों में पहुँचते रहे हैं । इस प्रकार की अनेक यात्राएँ हुई हैं किन्तु प्रत्येक यात्रा के यात्री आकृति में पहिली यात्रा वालों से भिन्न थे । उसका कारण यह था कि मानव निरन्तर विकास की सीढ़ियाँ चढ़ रहा था एक यात्रा से दूसरी यात्रा के बीच में विकास होता रहता था । इसके अतिरिक्त जो समुदाय इस जन्म प्रदेश से चलता रहता था वह निरन्तर नवीन लक्षण विकसित करता रहता था तथा यात्रा के अन्त में अपने पूर्वजों से कुछ भिन्न हो ही जाता था । फिर उसके नवीन निवास स्थान की जलवायु, वनस्पति, पशु आदि का प्रभाव उसमें अन्य परिवर्तन करता था । प्राथमिक मानव में जाति-भेद का यह एक मुख्य कारण है । काली जाति की कृष्ण त्वचा, मोटे होंठ तथा गुलझटदार बाल अवश्य ही अफ्रीका में पहुँचकर विकसित हुए हैं ।

अनुमानतः इस उद्गम स्थान से सबसे पहले एक छोटे कद का जन समुदाय चला जो पश्चिमी अफ्रीका से न्यूगिनी तक समस्त उष्णतर प्रान्त में फैल गया । इस समय तक भी अफ्रीका के घने बनों में, अन्ड

मन द्वीपों में तथा मलाया में फिलीपाइन में इस जन समुदाय के भाग मिलते हैं। इसके पश्चात् एक और महान् यात्रा में उष्ण-तर प्रदेश की ओर वह जाति गई जो कालान्तर में नीग्रो के रूप में विकसित हुई। न्यूगिनी की में पैपुअन जाति तथा मेलेनिसिया के काले निवासी अफ्रीका के नीग्रो लोगों के भाई हैं और पूर्वी नीग्रो कहलाते हैं। यह भी संदेह होता है कि इस यात्रा का भारत के प्राचीन निवासियों पर भी प्रभाव पड़ा है। फिर एक और जन समुदाय जन्मभूमि से चल कर भारत को पार करता हुआ लंका पहुँचा तथा स्याम; मलाया, जावा आदि में फैलता हुआ आस्ट्रेलिया जा पहुँचा। भारत के आदिम निवासी, लंका स्याम आदि के निवासी तथा प्राचीन आस्ट्रेलियन इसी जन समुदाय के वंशज हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस विशेष जन-समुदाय के विस्तार के पश्चात् लगभग इसी मार्ग पर वह जाति फैली जिसका वर्णन पहले भूमध्य सागरीय मानव के नाम से हो चुका है। भारतवर्ष के द्राविड़ इसी जाति के थे तथा एक समय ये लोग इस देश में बड़ी संख्या में विद्यमान थे। किन्तु यदि आधुनिक भूमध्य सागरीय मानव से इन द्राविड़ों की तुलना की जाय तो यह सिद्ध होता है कि यह जाति भूमध्य सागरीप मानव तथा भारत के मूल निवासियों के सम्मिश्रण का परिणाम है मूल निवासियों से हमारा तात्पर्य इस देश में और भी पहिले आये हुए मानवों से है जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। द्राविड़ों ने भारत में एक महान् सभ्यता की स्थापना की थी जिसके भग्नावशेष सिंधु नदी की धारा में से खोदकर निकाले गये हैं। सभ्यता तथा संस्कृति के विचार से इस जाति ने भारत में असाधारण उन्नति की थी। इनकी यह सभ्यता मेसोपोटामिया की सभ्यता से सामंजस्य रखती है। इस जाति के विस्तार तथा उन्नति के साथ हम ऐतिहासिक काल की आर्यजाति की महान् यात्रा तथा विस्तार तक जा पहुंचते हैं। योरोप का नार्डिक मानव तथा आर्य एक ही जाति

आर्यों के भारत, फारस, अफग़ानिस्तान आदि देशों में

आगमन को यदि हम आर्यों का "परावर्तन" कहें तो अनुचित नहीं। निःसन्देह आर्यों के पूर्वज भी अन्य जातियों की भाँति इसी देश के समीप से योरोप की ओर गये थे तथा वहाँ विस्तारित होकर किसी अज्ञात कारण से कदाचित् जलवायु परिवर्तन के कारण फिर सहस्रोंवर्ष पश्चात दक्षिण की ओर लौटे। भारत में प्रविष्ट होने पर गृहहीन पशु-पालक आर्यों को नागरिक द्राविड़ों का सामना करना पड़ा और भयानक युद्ध हुए जो प्राचीन साहित्य में अनेक रूपों में पाये जाते हैं। कुछ भी हो शीघ्र ही इस देश में आर्यों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। भारत में आर्यों के आगमन के पश्चात् इस देश के निवासियों में जो परिवर्तन या परिवर्धन हुए वे नाम मात्र के हैं।

अब हम फिर मंगोल जाति के विस्तार की ओर लौटते हैं। हम देख चुके हैं कि ऐतिहासिक काल में कितनी वार विभिन्न मानव-समुदाय दक्षिणी पूर्वी एशिया में पहुँचते रहे। वहाँ के द्वीपों तथा देशों में इन आगन्तुकों का मंगोल जाति के लोगों से सम्मिश्रण होता रहा अतएव उन अनेक जातियों का उद्गम हुआ जो इन स्थानों में मिलती हैं। इन लोगों के राजकुल तथा जातियाँ किसी सीमा तक भारतीय आर्यों से सम्बन्धित प्रतीत होती हैं। धीरे-धीरे मंगोल जाति पूर्वी एशिया के सभी देशों में फैली। आसाम तथा बंगाल में भी इस जाति का सम्मिश्रण अवश्य है। मंगोल जाति का अमरीका तथा उत्तरी एशिया में जो विस्तार हुआ उसका उल्लेख हो चुका है। ऐतिहासिक काल में भी मंगोलों के अनेक आक्रमण मध्य तथा पश्चिमी एशिया और पूर्वी योरोप पर हुए हैं। बहुत से तातारों के वंशज तो अब भी रूस में विद्यमान हैं। इस विषय में चंगेज़ खाँ के आक्रमण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

ऊपर के समस्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि मानव का जाति-विभाजन एक जटिल समस्या है। इतिहासातीत काल में और विभिन्न

मानव समुदायों में जो सम्मिश्रण हुआ है। वह परिमाण में इतना अधिक है कि जाति-विभाग केवल थोड़े से लक्षणों पर अवलम्बित है। संक्षेप में हम मानव जाति को निम्नलिखित समुदायों में विभक्त कर सकते हैं।—

(१) हिन्दी योरोपीय जाति—योरोप, पश्चिमी एशिया, तथा दक्षिणी मध्यवर्ती एशिया, तथा उत्तरी अफ्रीका में।

(२) नीग्रो जाति— अफ्रीका में, किन्तु इसकी प्राचीन शाखाएं मैलेनेशिया तथा न्यूगिनी में मिलती हैं।

(३) मंगोलियन जाति—पूर्वी एशिया में किन्तु इसकी सम्मिश्रित शाखाएं दक्षिणी-पूर्वी एशिया तथा अमरीका में पायी जाती है।

(४) आस्ट्रेलियन जाति—आस्ट्रेलिया में, यह हिन्दी योरोपीय जाति का एक प्राचीन तथा अनुन्नत शाखा भी कही जाती है।

उपरोक्त विभाजन में योरोप, चीन, भारत आदि देशों के निवासियों के आधुनिक विस्तार को छोड़ दिया गया है।

जाति-भेद उच्चता या नीचता का द्योतक नहीं है—इस अध्याय के आरंभ में जाति-भेद पर अवलम्बित 'उच्चता' तथा 'नीचता' के भ्रमात्मक होने का उल्लेख किया गया है। जातीयता न उच्चता की द्योतक है न नीचता की। यह भेद केवल वाह्य रूप-रंग पर अवलम्बित है तथा वैज्ञानिक दृष्टि से मानव की एकता सिद्ध है। यह भेद केवल मानव-जाति को कुछ अव्यवस्थित समुदायों में विभाजन करने में सहायक है। अवश्य ही, कुछ जातियाँ अनुन्नत तथा पिछड़ी हुई हैं तथा कुछ सभ्य, संस्कृत तथा उन्नतिशील हैं। जातियों की यह दशा उनकी जातीयता पर निर्भर नहीं है। पिछड़ी जातियों की अनुन्नत दशा सुधर सकती है प्राकृतिक रूप से या जन्म के आधार

पर उन्हें निम्न श्रेणी के मानव समझना अन्यायपूर्ण तथा अवैज्ञानिक हैं। उन्नति का अवसर या अवकाश के मिलते ही पिछड़ी जातियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन होते देखे गये हैं। संसार का राजनैतिक वातावरण साम्राज्यवाद के अत्याचारों से इसलिये परिपूर्ण है कि जिन जातियों या उपजातियों के हाथ में शक्ति है वे दूसरी जातियों को संभलने तथा उन्नत होने का अवसर नहीं देना चाहतीं। क्योंकि वे भली प्रकार जानती हैं कि प्रत्येक जाति में उन्नत होने की योग्यता समान-रूप से विद्यमान है। अतएव पिछड़ी जातियों की उन्नत होने देने में उनकी हानि होने की सद्भावना है। यह भावना संसार को एक भयङ्कर भविष्य के समीप ले जा रही है। अनेक विद्वानों का मत है कि या तो संसार ही रहेगा या यह स्वार्थ-भावना ही। मानव को इस अपनी स्वार्थ भावना से जो संघर्ष करना है वह प्रकृति-मानव-संघर्ष से भी प्रबल होगा।

अध्याय ८

पशुत्व से संघर्ष

द्विपद से मानव के विकास तक पहुँचते २ हम इतिहासातीत काल के अन्तिम भाग में प्रवेश कर लेते है। द्विपद ने वनमानुषता से संघर्ष किया तथा किसी न किसी प्रकार निष्ठुर प्रकृति से सामना करके मानवता में पग रखा। उसे अनेक महान् तथा भयानक पशुओं से एव ऋतुओं और अन्य प्राकृतिक बवंडरों से निरन्तर प्राण रक्षा करनी पड़ी होगी। उसके पास न तो प्राकृतिक नाखून, पंजे सींग, तथा विष आदि अस्त्र थे तथा न ही मानव-निर्मित्त धनुष, खड्ग, बन्दूक आदि थे। वास्तव में उसका जीवन निरंतर भयानक घटनाओं से परिपूर्ण रहता होगा। किंतु निःसंदेह ही वह इस युद्ध में सफल रहा तथा मानव तक पहुँच ही गया। द्विपद से मानव बनने में अन्तिम सीढ़ी कृत्रिम अग्नि का आविष्कार था। आरंभिक मानव ने प्राकृतिक दावाग्नि को उसी भयभीत दृष्टि से देखा होगा जिससे अन्य पशु अब भी उसे देखते हैं किन्तु बुद्धिबल से शनैः शनैः उसने इसकी उपयोगिता पर भी दृष्टिपात किया होगा। उस समय हिमयुग समाप्त हो रहा था तथा वस्त्रहीन मानव ने अग्नि के ताप की उपयोगिता पर अवश्य ही ध्यान दिया होगा। इसके अतिरिक्त उसने अपने शत्रु-महान् पशुओं को भी इससे भयभीत देख कर इसे अपना सहायक बनाने की चेष्टा की होगी। अग्नि-निर्माण से प्रथम उसने सूखी पत्तियों तथा काष्ठ

से अग्नि-रक्षा का साधन सीखा तथा फिर पाषाण या काष्ठ-खंडों के संघर्ष से अग्नि-निर्माण करना आरम्भ किया। यह युगांतर लाने वाला आविष्कार था। अग्नि द्वारा भोजन फल तथा माँस को सुस्वादु बना लेना भी उसे शीघ्र ही आ गया होगा। इस प्रकार बुद्धि ने बल पर प्रथम विजय प्राप्त की। मानव ने अग्नि द्वारा अपने आप को अत्यन्त सुरक्षित और बलवान् बना लिया। इस आरंभिक मानव ने धीरे धीरे अपने लिये मोटे ढंग पर बने हुए पाषाण-शस्त्र बनाये जिनकी उसे आखेट एवं रक्षा के लिये बड़ी आवश्यकता थी। आरंभिक शस्त्र पाषाण के अव्यवस्थित खण्ड से प्रतीत होते हैं किंतु कुछ समय पश्चात् उस समय के मानव ने पाषाण की कुल्हाड़ियाँ, भाले, सुई आदि भी बनाईं। उसके पास भोजन पकाने के लिये कढ़ाई या पतीली न थी। प्राय: वह अग्नि में तप्त पाषाण खंडों को जल से भरे गढ़ों में डाल कर जल में उबाल उत्पन्न करता था और इस प्रकार जल में पड़े हुए फल और माँस उबल जाते थे या लकड़ी तथा पाषाण अस्थियों से निर्मित पात्रों में भोजन पक जाता था। उस समय निवास करने के लिये मकान था झोंपड़ियाँ न थीं। मानव प्रायः गुफाओं में रहते थे। आधुनिक दृष्टि से उनका जीवन वास्तव में पिछड़ी दशा में था किंतु उस समय भी गुफाओं की दीवारों पर चित्र बनाते थे जो मनोमोहक तो नहीं किन्तु अच्छे थे।

मानव की उन्नति का यह आरम्भिक युग प्राचीन पाषाण युग कहलाता है। यह सहस्रों वर्षों तक चलता रहा तथा मानव अत्यन्त न्यून गति से आगे को बढ़ता गया। इस युग की समाप्ति से पहले ही संसार के जलवायु में महान् परिवर्तन हो गया था हिम खिसकते खिसकते उत्तरी सागर तक ही सीमित हो गया तथा युरेशिया के बड़े बड़े प्रदेश हिम से निकल कर वन एवं घास से ढक गये। जो मानव इन वनों तथा मैदानों में रहते थे वे प्राथमिक मानव से उन्नत तथा सुखी थे

किंतु पाषाण इस समय भी मानव की बड़ी उपयोगी वस्तु थी। इस युग को नव पाषाण युग कहते हैं। यह ऐतिहासिक काल से प्रथम सहस्र वर्ष तक माना है।

उत्तर पाषाण युग का मानव बड़ा उन्नति शील था। भोजन के लिये उसे आखेट पर ही निर्भर नहीं रहना पड़ता था। उसने कृषि का आविष्कार किया। प्राचीन पाषाण युग में मानव का बहुत सा समय भोजन प्राप्त करने ही में नष्ट होता था किंतु कृषि द्वारा भोजन उपजाने से उस का अवकाश का समय बढ़ता चला गया। पशु-पालन ने भी जोर पकड़ा। घोड़े, गाय, कुत्ते, भेड़, बकरी आदि इस समय से उसके जीवन संगी हो गये। अवकाश मिलने के कारण उसने कई अन्य उपयोगी वस्तुओं का निर्माण किया। उसने मिट्टी के बर्तन बनाने आरम्भ किये तथा भोजन पकाने में इन पात्रों का प्रयोग करने लगा। कपड़ा बुनने का आविष्कार भी इसी समय हो गया तथा आतप, शीत एवं लज्जा निवारण का यह साधन अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ। इस मानव ने निवास स्थान भी बनाना आरम्भ किया। पिछले पाषाण युग के मानव गुफाओं में निवास करते थे किन्तु अब उन्होंने झोंपड़ी डालना सीखा। ये झोंपड़ियाँ निरापद स्थानों में झीलों में या वन रहित प्रदेशों में बनाई जाती थीं। मधु एकत्रित करना तथा इसी प्रकार की अन्य प्राकृतिक निधियों का प्रयोग भी वे सीख गये थे। इस प्रकार यह मानव उन्नति के पथ पर अग्रसर होता गया तथा आगे चल कर इसने तांबा, राँगा तथा उनसे मिश्रित काँसे का प्रयोग सीखा। धातु के प्रयोग होने पर पाषाण का प्रयोग न्यून हो गया तथा जो युग आरम्भ हुआ वह धातुयुग कहलाया। नव पाषाण युग के अंत में जिब्राल्टर के समीप की मिट्टी बह जाने से अकस्मात् अटलाँटिक महासागर का जल एक विशाल परिमाण में उस देश में भर गया जिसे आज कल भूमध्य सागर में कहते हैं। यह

एक बड़ी दुर्घटना थी तथा इससे अनेक मानव-समूह एवं पशु पक्षी नष्ट हो गये। बाईबिल तथा दूसरी प्राचीन पुस्तकों में आलंकारिक भाषा में इस बाढ़ का उल्लेख आया है। हमारी पौराणिक जलीय महाप्रलय की कल्पना इसी आधार पर स्थित है।

पाषाण-युग धातुओं के आविष्कार के साथ समाप्त होता है। धातु के यन्त्र औजार, अस्त्र-शस्त्र आदि के प्रयोग में आने के पश्चात् धीरे २ मानव उस दशा को पहुंच गया जिसमें आज कल भी अनेक सीधी-साधी अनुन्नत जातियां रहती है। किंतु मानव अपनी इस उन्नति में दो नवीन धाराओं में और प्रभावित हुआ। मानव सामयिक पशु है। अतएव उस के विकास के साथ उसके कौटुम्बिक एवं सामजिक संगठन का विकास भी बड़े महत्व का है। हम यह नहीं कह सकते कि द्विपद का समाज कैसा था किन्तु मानुष एवं वनमानुष के समाज का अध्ययन करके अर्द्ध सभ्य तथा असभ्य जातियों के समाज की खोज के आधार पर हम बहुत सीमा तक मानव के प्रारंभिक समाज का चित्रीकरण कर सकते हैं। पैतृक कुटुम्ब जो मानव में साधारण रूप से पाया जाता है तथा जिसका प्राचीन रूप इस समय भी हिंदुओं में सम्मिलित कुटुम्ब की अवस्था में प्रस्तुत है, आरम्भिक मानव में नहीं पाया जाता था। कुटुम्ब का प्रारंभिक रूप मातृक कुटुम्ब था। स्त्री मानव-समाज में बड़ा अधिकार रखती थी। वह मातृ रूप में कुटुम्ब नेत्री थी तथा परिवार के सभी स्त्री-पुरुष उसकी देख-रेख में थे। इसी प्रकार के परिवार ने आगे बढ़ कर जन का रूप धारण किया। जन वास्तव में एक जननी के पुत्र-पौत्रादिकों का समूह था जो पारस्परिक सहयोग से जीवन यापन करता था। जन वास्तविक रूप से साम्यवाद पर निर्भर था। विद्वानों का यह विचार है कि मानव-समूहों के युद्ध एवं संघर्ष के कारण जन की नेत्री स्त्री के स्थान पर पुरुष ने प्रभुत्व स्थापित किया तथा धीरे २ पैतृक रीति पर कुटुम्ब

की स्थापना हुई। कालान्तर में जन या गण नेक पैतृक-कुटुम्बों के समूह का नाम पड़ा तथा युद्ध में एवं शासन में सर्वोत्तम मनुष्य ऐसे जनों का सरदार या सेनापति होने लगा। मानव का जीवन विषमताओं से भरता जा रहा था। यह स्वाभाविक ही था कि प्रथम तो सेनापति के कुटुम्ब की प्रभुता बढ़ी तथा यह रीति स्थापित हुई कि सेनापति एक ही कुटुम्ब में से हो तथा दूसरे यह कि यदि पिता के पश्चात् पुत्र सेनापति या मुख्य बने तो और भी उत्तम। इस प्रकार राजा तथा राज़्यों की नींव रखी गयी जिस से प्रत्येक युग में प्रजातन्त्र का संघर्ष होता रहा है। प्रजातन्त्र वास्तव में जनतन्त्र के रूप में प्राचीन राज-नैतिक व्यवस्था है। दूसरी धारा जिस से मानव का जीवन प्रभावित हुआ कार्य विभाग की है। कृषि के आविष्कार के पश्चात् से अधिकतर मानव कृषक हो गये। किंतु अनेक आखेटजीवी तथा मछुए ही रहे। इसमें संदेह नहीं कि पात्र-निर्माण, अस्त्र निर्माण, वस्त्र निर्माण आदि में नवीन आजीविकाएं उत्पन्न हुईं तथा कार्य विभाग आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हो गया। पैतृक कुटुम्ब की स्थापना से कौटुम्बिक संपत्ति तथा उसके पश्चात् व्यक्तिगत संपत्ति की प्रथा निकली। जिन की संपत्ति अब व्यक्तिगत संपत्ति बन चली तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का आरम्भिक रूप कार्य-विभाग का प्रसार था। भारतवर्ष में तो कार्य-विभाग के आधार पर जाति-भेद तक निर्माण हुआ। कार्य-विभाग के बढ़ने पर व्यापार एवं वस्तु विनिमय आरम्भ हुआ और वस्तु एवं सेवा के मूल्य के उचित माप के लिये मुद्रा का प्रचार हुआ। आरम्भ में मुद्रा का कार्य गौ, बकरी-चर्म खंड, शंख, कौड़ी आदि से भी लिया जाता था किन्तु ताम्र, चाँदी तथा स्वर्ण के प्रचलित होने पर मुद्रा धीरे २ आधुनिक रूप में आ गई। साराँश यह है कि मानव का जीवन ज्यों-ज्यों उन्नति-पथ पर अग्रसर होता गया त्यों-त्यों जटिलता बढ़ती ही गई एवं मानव-समाज एक अनेक प्रकार से गुथी हुई पहेली के समान हो गया।

जिस प्रकार प्रारम्भिक मानव का सांसारिक जीवन बड़ा पिछड़ा हुआ था उसी प्रकार उसके धार्मिक विचार भी अत्यन्त अविकसित दशा में थे। अनेक प्राकृतिक घटनाओं को वह दैवी आपत्ति ही समझता था तथा समझ सकता था। महान् आँधियों तूफानों, दावाग्नि के प्रहारों को वह देवताओं का कोप समझता था। महामारी तो उस की समझ में अवश्य ही एक कोप थी। ये देवता उसकी समझ में क्रोधी तथा ईर्ष्यालु होते थे। वे हित के स्थान पर अहित अधिक करते थे। उसके लिये वन नदी,पर्वत, मेघ, विद्युत्, जल आदि सभी देवता थे। क्योंकि इनके द्वारा प्रस्तुत आपत्तियें उसके जीवन को भय प्रद बनाये हुए थीं। मृत्यु भी एक दैवी कोप ही थी। मानव भय भीत होकर इन देवताओं को प्रसन्न करने की चेष्टा किया करता था। वह फल, पशु, तथा पुरुष-स्त्री एवं बच्चों को भी देवताओं की भेंट कर दिया करता था इन देवताओं की अनेक प्रकार की मूर्तियां बनाना भी धीरे २ आरंभ हुआ तथा मूर्तियों में बड़ी शक्तियों की कल्पना की गई। विभिन्न जन समूहों की पृथक् मूर्तियां बनी तथा अनेक वार तो मूर्तियों को छीन लेने के लिये जनों एवं जनसमूहों में युद्ध हुए। तब पाषाण युग में कई जातियों में देवताओं के सर्वोपरि एक महादेव या ईश्वर की कल्पना हुई तथा ईश्वर में सद्गुणों का अस्तित्व भी माना गया। किंतु अधिकतर जातियाँ प्राचीन अन्धकार में पड़ी रहीं। अपनी रक्षा के लिये पितृ-पूजन भी अनेक मानव समूह करते थे। ये पितृ कोई प्राचीन वास्तविक या काल्पनिक पूर्वज होते थे जिनकी उत्पत्ति कभी कभी सूर्य, समुद्र या अग्नि आदि से भी मानी जाती थी। धर्म के श्रद्धास्पद एवं सुष्ठु विचारों की आधार शिला वास्तव में ये प्राचीन कल्पना ही थी। दार्शनिक सिद्धाँतों की नींव इन्हीं रीतियों पर है। उत्तम धार्मिक शिक्षाएं वास्तव में मानव के प्रारम्भिक धार्मिक विचारों का विकास हैं

अध्याय ६
सभ्यता का उदय

वन तथा मानव :—वनों में तथा मानव में बड़ा प्राचीन संबन्ध है। मानव जीवन के उस काल में निःसंदेह वन मानव की जीवन-यात्रा में सहायक थे। मनुष्य का आदिम भोजन माँस तथा फल थे और ये दोनों पदार्थ वनों द्वारा ही मनुष्य को प्राप्त होते थे। इन वनों में वे पशु निवास करते थे जो भोज्य थे। किन्तु वनों के सहायक होने पर भी मानव को वन के भय भी अनेक थे। वन मार्ग पहचानने में कठिन होते थे तथा प्रायः वर्षा आदि में नष्ट भी हो जाते थे। वन में अनेक माँसाहारी पशु भी होते थे जिनके लिये मानव भी एक भोज्य पशुओं में से था। आखेट जीवी मानव के समूह बहुरूपक नहीं हो सकते थे। आखेट का सदैव सफल हो जाना आवश्यक नहीं। उसमें निराहार रह जाने की संभावना है। बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये आखेट-पशुओं के अतिरिक्त अन्य भोजन-सामग्री की भी आवश्यकता होती है। वन कृषि को रोकता है तथा मानव के शत्रुओं को मानव पर प्रहार करने का अवकाश देता है। व्यापारिक विनिमय में तो वन बड़ा बाधक है। अतएव मानव की उन्नति के साथ-साथ वन तथा मानव में पारस्परिक विरोध होने लगा तथा मानव को यह स्पष्ट होगया कि वनों का नाश करना अग्रिम उन्नति के लिये उत्तम है। प्रथम तो अपने निवास्थान निर्माण करने में मानव ने वनों को काटना आरंभ किया तथा फिर कृषि और व्यापार के लिये भी वन नष्ट किये गये। वन तथा मानव का यह संग्राम सहस्रों वर्षों से चल रहा है तथा इस समय भी नवीन आविष्कृत देशों में वनों का नाश किया जा रहा है। इसे हम संग्राम इसलिये

कहते हैं कि पृथ्वी के अनेक प्रदेशों में मानव भी वन द्वारा परास्त हुआ था तथा जब वनों को नष्ट प्रायः करने में वह असमर्थ रहा तो उसे स्वयं को अरण्यजीवी बनाना आवश्यक हो गया तथा एक प्रकार से उसे प्रकृति का प्राबल्य स्वीकार करना पड़ा। ऐसा भी हुआ कि कुछ मानव समूहों को वनाच्छादित देश छोड़कर ऐसे देशों में जाना पड़ा जहाँ वन कम थे वा नहीं थे। अनेक पशु-पालक मानव समूह नदियों द्वारा प्लावित घास और वृक्षों से ढके प्रदेशों में पशुओं के चरने के लिये स्थान ढूंढते हुए पहुंच गये तथा फिर वहीं कृषि-जीवन व्यतीत करने लगे।

गृहस्थ तथा गृहविहीन :—गृहविहीन चरवाहे तथा आखेटजीवी लोगों से गृहस्थ कृषक तथा पशुपालक अधिक सभ्य होते हैं। उन्नति के लिये एक स्थान पर निवास करना तथा न्यून से न्यून समय में आजीविका प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है। आखेट फलाहार तथा पशु-पालन में समय भी अधिक लगता हैं तथा सदैव घूमते रहने के कारण परस्पर विचार विनिमय तथा मानसिक उन्नति में भी बाधा पड़ती है। वाह्य दृष्टि से इस प्रकार का जीवन चाहे सुखमय तथा सादा प्रतीत हो किन्तु यह जीवन एक निरन्तर द्वन्द्व के समान संलग्नता तथा चिंताओं से परिपूर्ण होता है। पशुपालकों को सदैव नवीन भूमि खोजनी पड़ती है तथा अच्छी भूमि न मिलने पर पशुओं की मृत्यु आवश्यक है। इस निरन्तर खोज में ऐसे मानव समूहों में प्रायः भिड़ंत भी हो जाती है आर्यों की प्राचीन पुस्तकों में युद्ध का दूसरा नाम 'गविष्टि' अर्थात् गायों की अच्छा भी लिखा है। गृहविहीन मानव समुदायों के जीवन में वर्षा, ताप; तुहिन, ओलों आदि प्राकृतिक कारणों से भी बड़ा कष्ट पहुंचता रहता है। अतएव उन्नति के साधन न्यून रहते हैं। संसार में इस समय भी अनेक मानव-जातियाँ गृहविहीन जीवन व्यतीत करती है किन्तु ये जातियाँ उन्नति तथा

सभ्यता में बहुत पिछड़ी हुई हैं। सभ्यता का उदय सर्व प्रथम उन्हीं स्थानों में हुआ जहाँ मानव गृहस्थ होकर रहने लगे। यहाँ मनुष्य को परस्पर विचार विनिमय, सामाजिक तथा राजनैतिक संगठन, उपयोगी आविष्कार भवन निर्माण, धार्मिक एवं शिष्टाचार विषयक उन्नति करने का अवसर मिला तथा मानव सभ्यता के उन समस्त अंगों की नींव पड़ी जिन्हें हम आज विकसित या विकृत रूप में देखते हैं। एक दूसरे दृष्टि कोण से हमें यह भी मानव पड़ता है कि मानव का पशुपालक से गृहस्थ कृषक हो जाना बढ़ती हुई जनशंख्या के साथ अवश्यम्भावी घटना थी। आखेट या पशुपालन इतिहासातीत काल की थोड़ी सी जनसंख्या को ही भोजन देने में समर्थ थे। जिन जातियों ने उन्नति पथ पर अग्रसर होने का विचार किया वे प्रकृति से लड़ गईं तथा कृषि द्वारा बढ़ी हुई जनसंख्या को जीवित रखने में समर्थ हुईं। किन्तु आट्रेलिया के आदिम निवासियों की भाँति अनेक मानव समुदाय प्रकृति द्वारा पछाड़ दिये गये तथा अनुन्नत रह गये। प्रकृति उनके लिये अब भी प्रबल बनी हुई है।

द्राविडों की महान् सभ्यता:—इससे स्पष्ट है कि सब जातियों ने प्रकृति के समान कुशलता से युद्ध नहीं किया। भारतवर्ष की प्राचीन जातियों के अवलोकन से यह सिद्धान्त और भी स्पष्ट हो जाता है। जातियों के विस्तार तथा निर्माण में मानब की प्राचीन महान् यात्राओं का वर्णन आया है उसके अनुसार पन्द्रह या बीस सहस्र वर्ष पहले भारत के सबसे प्राचीन निवासी यहाँ आये तथा इस समय भी इनके गोंड, संथाल आदि के रूप में विद्यमान हैं। ये मानव-जातियाँ हमारे सुन्दर देशमें भी समुन्नत न हो सकीं। किन्तु इनके पश्चात् जो भूमध्य सागरीय मानव से मिलती-जुलती द्राविड़ जाति भारत में आई उसने अत्यंत प्राचीन काल में सराहनीय उन्नति की तथा एक महान् सभ्यता का निर्माण किया। द्राविड़ लोग खैबर या बोलन की उपत्यकाओं

से नहीं आये थे, वे पारस से दक्षिण होते हुए सिंध प्रांत में पहुंचे तथा वहाँ से एक ओर तो सिंधुनदी के किनारे बढ़ते हुए पंजाब में फैले तथा दूसरी ओर काठियावाड़ से होकर दक्षिण को चले गये । यह घटना लगभग छः हज़ार वर्ष पहले की है जब कि भारत के उत्तरी-पश्चिमी भागों तथा देशों का जलवायु आज कल की भांति शुष्क न था। सिंध प्रान्त मरुस्थल न था किन्तु एक उपजाऊ प्रदेश था अतएव द्राविड़ इस उत्तम प्रदेश में बस गये। इसी प्रदेश में भारत की आर्यों से पहले की सभ्यता की नींव पड़ी तथा निःसंदेह आर्यों के आगमन से पहले ही यह सभ्यता सिंध पंजाब तथा किसी सीमा तक गंगा की घाटी में फ़ैल गई थी।

सिंध एवं पंजाब में अमीरी, चुनरी, मोहिनजोदड़ो, हरप्पा आदि स्थानों पर खुदाई की गई है तथा इस प्राचीन सभ्यता के चिन्ह खोद कर निकाले गये हैं। मोहिनजोदड़ो में जिस महान् नगर के भग्नावशेष निकले हैं उसकी स्थापना ईसा ` ढाई सहस्र वर्ष प्रथम हुई होगी किन्तु इस नगर में सफ़ाई का प्रबन्ध आजकल नगरों के समान अच्छा था। भली प्रकार बनी नालियाँ सार्वजनिक स्नानागार उत्तम कुएँ तथा पक्के फर्श होते थे। सड़कें भी पक्की और चौड़ी होती थीं तथा दोनों ओर सीधी रेखा में सुन्दर गृह बने हुए थे। मिट्टी के चित्ताकर्षक वर्तन पत्थर की मूर्तियां, सोने-चाँदी के गहने तथा हीरे-मोती की मालाएँ इतनी संख्या से मिली हैं कि यह सिद्ध हो गया कि ये लोग बड़े सभ्य एवं धनवान् थे।

मेसोपोटामिया :—द्राविड़ सभ्यता से मिलती-जुलती एवं समकक्ष सभ्यता दजला तथा फरात की घाटियों में उत्पन्न हुई। द्राविड़ों को जो सुविधाएँ सिंधु एवं उसकी सहायक नदियों से प्राप्त हुईं वे ही सुविधाएँ दजला एवं फरात द्वारा मेसोपोटामिया में विद्यमान थीं। इस देश में बाबुल, नेनुवा एवं अस्सुर नाम के बड़े नगर थे। आरँभ में यहाँ

के नगरों में महान् युद्ध हुए किन्तु धीरे-धीरे इस सभ्यता का राजनैतिक एकीकरण हो गया। अनेक युद्ध तो देवताओं की मूर्तियाँ छीनने के कारण हुए क्योंकि इन मूर्तियों की दैवी शक्तियों में लोग बड़ा विश्वास रखते थे। इन लोगों के नगरों में स्वच्छ स्नानागार, पानी के नल, सुन्दर मिट्टी के बर्तन, चित्र, धातु एवं हस्तिदंत की बनी सुन्दर वस्तुएं मिलती हैं। प्रथम तो चित्र लिपि का यहाँ प्रचार था। इस सभ्यता का सम्बन्ध एक ओर तो भारत से था तथा दूसरी ओर शाम के प्राचीन नगर दमिशक से। यहाँ के 'उर' नामक नगर के कई महल भारत से मँगाई गई लकड़ी के बने प्रतीत होते हैं। सोना, मोती, हाथी-दाँत, मोर, बन्दर आदि भी अनुमानतः भारत ही से यहाँ पहुँचते थे।

प्राचीन-चीन :—सिंधु एवं फरात-दजला की घाटियों में जिस प्रकार सभ्यता का उदय हुआ उसी प्रकार चीन की महान् नदियों की घाटी में एक प्राचीन सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ। यह जाति उस बड़ी मँगोल जाति की शाखा थी जिसका उल्लेख किया जा चुका है। यहाँ के निवासी पीतल के सुन्दर बर्तन बनाते थे तथा कुछ समय पश्चात् लोहे का प्रयोग भी जान गये थे। इन्होंने नहरें और सुन्दर भवन भी बनाये तथा लिखने का एक नवीन ढँग आविष्कार किया। यह ढँग चित्र लिपि से निकला है। प्रत्येक शब्द तथा कभी-कभी छोटे वाक्यों के लिये भी एक विशेष प्रकार का चित्र निश्चित है। यह चित्राक्षर ऊपर से नीचे को लिखे जाते हैं। अन्य भाषाओं की भांति बाँये या दायें से नहीं, खेती का भी चीन में स्वतंत्र रूप से आविष्कार हुआ।

अध्याय १०

सभ्यता की प्रगति

पिछले अध्याय में आपने मानव के उषाकाल में चार स्थानों पर सभ्यता का उदय देखा। सभ्यता संक्रामक रोग के समान फैला करती है। सभ्यता के प्रत्येक पग पर मानव नवीन परिवर्तन से घबराता सा है। मानव स्वभावत: संकीर्ण है क्योंकि वह अपने अतीत से सर्वथा था विलग हो ही नहीं सकता। नवीनता पशुओं के लिये एक असंभव सी बात हैं तथा मानव के लिये संभव ही नहीं आवश्यक होते हुए भी दु:खद अवश्य है। किन्तु मानव परिवर्तन शील परिस्थितियों को बुद्धिमता से विजय करता रहा है। नवीन वस्तुएँ चाहे घृणास्पद हों किन्तु आवश्यक होती हैं तथा प्रकृति के साथ निरन्तर चलते रहने वाले संघर्ष में सहायक होती हैं। अतएव प्राचीन सभ्यता जहाँ उदय हुई वहाँ से शीघ्र ही समीपवर्ती प्रदेशों में फैलती चली गई। सभ्य मानव जातियों के अस्त्र-शस्त्र तथा अनेक ऐश्वर्य एवं विलास सामग्री असभ्य जातियों को दुर्लभ प्रतीत हुई तथा एक के पश्चात् दूसरे नवीन आविष्कारों का प्रचार बढ़ता ही चला गया। गृहस्थ जीवन व्यतीत करने वालों पर अनेक बार गृहविहीन जातियों के आक्रमण हुए तथा यह भी हुआ कि इन आक्रमणकारियों को शान्त करने के लिए सभ्य जातियों ने समपिवर्ती प्रदेशों को विजय करके सभ्य-शासन निर्माण किये। कुछ हो अनेक प्रकार की घटनाओं के साथ सभ्यता फैली तथा अब भी फैल रही है।

"ये कल के आर्य"--भारत की प्राचीन द्राविड़ सभ्यता जिसका उल्लेख पिछले अध्याय में हुआ है भारत की सार्वभौम सभ्यता कभी न हो सकी। अब तक के प्रमाणों के अनुसार यह सभ्यता सिंध तथा पंजाब में अवश्य फैली हुई थी। सम्भवतः गंगा की ऊपरी घाटी की सभ्यता जिसे आजकल उत्तर-प्रदेश कहते हैं, की इस सभ्यता के अंतर्गत हो। दक्षिण में यदि द्राविड़ सभ्यता प्रवेश कर गई थी तो कुछ विशेष स्थानों पर ही परमित रही होगी। इस प्राचीन सभ्यता पर २५०० ई० पू० में एक महान् संकट आया। पीछे लिखा गया है कि आर्यों के जो आक्रमण ऐतिहासिक काल में योरोप, फारस तथा भारतवर्ष पर हुए वह वास्तव में आर्यों का परावर्तन था। आर्य लोग केस्पियन सागर के समीप के घास मैदानों तथा वनों में निवास करते थे। यह कहना कठिन है कि इस प्रदेश में ये कहाँ से आये। उस समय केस्पियन प्रदेश इतना शुष्क नहीं था किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि शुष्कता बढ़ रही थी। दूसरे आर्यों की बढ़ती हुई जन संख्या भी उन्हें इस प्रदेश को छोड़ने पर वाध्य कर रही थी। तीसरे संभवतः भारत, फारस, मिश्र के सभ्य प्रदेशों के धन तथा ऐश्वर्य एवं उपजाऊ होने की कहानियां भी उन तक पहुँच चुकी थी।" आर्य पशुपालक चरवाहे थे किन्तु इनमें अनेक कुटुम्ब कृषि से परिचित थे। कृषि का प्रचार अवश्य ही दक्षिण के सभ्य प्रदेशों से वहां पहुँचा होगा। गाय, बैल और घोड़े उनका विशेष धन था। ऊन के वस्त्र का भी वे प्रयोग करते थे। आर्य अनीश्वरवादी न थे। किन्तु ईश्वर की आराधना अनेक प्राकृतिक विभूतियों के द्वारा करते थे। इन्द्र, वायु अग्नि, वरुण, रुद्र आदि प्राकृतिक शक्तियों को ईश्वर की प्रकट विभूतियाँ समझते थे। इन आर्यों के कुटुम्ब २५०० ई० पू० से भारत में प्रविष्ट होने आरम्भ हुए तथा एक सहस्र वर्ष तक इनके आने का तांता लगा रहा। द्राविड़ सभ्य अवश्य थे किन्तु आर्यों से तुलना करने पर अच्छे योद्धा नहीं थे। सभ्यता के

साथ-साथ विलासिता भी इनमें नहीं हुई थी। अतएव द्राबिड़ सभ्यता विशेष संकट में फँस गई। आर्यों ने द्राविड़ों को 'असुर' कहा तथा इन असुरों को पंजाब से निकाल बाहर किया। जब आर्य और आगे बढ़े तो गंगा की घाटी में द्राविड़ों से गहन युद्ध हुए किन्तु पंजाब की भाँति द्राविड़ों को सर्वथा न निकाला जा सका। फलतः सम्मिश्रण हुआ। समस्त उत्तरी भारत पर आर्यों की राजनैतिक सत्ता स्थापित हो गई।

भारत पर ऐतिहासिक काल में यह सबसे बड़ा आक्रमण था। यह इसी का परिणाम था कि समस्त भारत निवासी आर्यों की सभ्यता तथा संस्कृति में रंग गये। वास्तव में सभ्य द्राविड़ों तथा पशु पालक आर्यों की विभिन्न संस्कृतियों का सम्मिश्रण हुआ तथा जो संस्कृति प्रस्तुत हुई वह सदा के लिये स्थिर हो गई। भारत में आर्यों में जाति-विकास हुआ जो वास्तव में गोरी आर्य जाति तथा काले द्राविड़ों के बीच जातीय घृणा का फल है। जातीयता का आधार 'रक्त की शुद्धता' है किन्तु एक वार आरम्भ होने हर अनेक भेद तथा उपभेदों के आधार पर नवीन जातियों का निर्माण होता गया। आर्यों के प्राचीन ग्रन्थ वेदों में चार जातियों का उल्लेख है, रामायण, महाभारत में कई अन्य जातियों का वर्णन है। स्मृतियों में वर्णसंकरता के आधार पर सैकड़ों जातियों का उल्लेख पाया जाता है। इस समय हिन्दुओं में तीन सहस्र के ऊपर जातियाँ हैं। भारत के निवासी हो जाने के पश्चात् आर्यों के प्राचीन राजनैतिक संगठन में भी परिवर्तन हुआ। केस्पियन प्रदेश के आर्यों में राजसत्ता का अभाव था। कुटुम्ब को पितृगण जनसमिति के रूप में एक कुटुम्ब समूह का शासन चलाते थे। प्रत्येक पितृ को कौटुम्बिक विषयों में पूर्ण अधिकार था। जन कई कुटुम्बों का समूह होता था तथा युद्ध के समय को छोड़ कर जन को किसी सरदार की आवश्यकता न थी। जनसमिति नित्य के शासन का

भार हाथ में लिये थी भारत में आने पर द्राविड़ों की राज-सत्ता का एक प्रकार से अंत सा हो गया। भारतीय आर्यों द्वारा जो सभ्यता भारत में बनी उसमें 'प्रजातन्त्र' तो केवल नाम मात्र को पाया जाता है।

आर्यों का इतिहास केवल उनकी विजय के लिये ही स्मरणीय नहीं है। इस बात में तो मंगोल, शक तथा हूण आर्यों से बढ़ चढ़ कर निकले तथा अपनी निरंकुशता और निर्दयता के लिये इतिहास में अमर हैं। आर्य अपनी शिष्टाचार पूर्ण सभ्यता, उच्च दार्शनिकता, विवेक विज्ञान, कला-कौशल साहित्य, तथा सर्वांगपूर्ण उन्नति के लिये स्मरणीय हैं। आर्यों की छाप भारत पर इतनी प्रबल है कि भारत का इतिहास ही आर्यों के आगमन से माना जाता है। किन्तु द्राविड़ों की प्राचीन सभ्यता का पता लगने पर आर्यों की सभ्यता नवीनतर तथा अनुकरण की हुई सी प्रतीत हुई तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी ने तो इनको कल के आर्य कह कर टाल दिया। इसमें सन्देह नहीं कि आर्यों की तथा उनके पहले की दोनों सभ्यताओं के लिये भारतवासियों को स्वाभिवान होना चाहिये।

भारत में सभ्यता का सार्वभौम प्रसार आर्यों की सत्ता की स्थापना से लेकर बौद्धों के अस्थायी प्रभुत्व के पश्चात् आर्यधर्म के पुनरुत्थान तक चला रहा। इस सभ्यता का प्रसार मानव-जगत् के लिये एक बड़े महत्व की बात है। भारत के निवासी अधिकतर असभ्य तथा अर्द्धसभ्य दशा में थे। आर्य ऋषि प्रायः नगरों से दूर वनों में निवास करते थे इनके चरित्र तथा शिष्टाचारकी छाप अरण्यकों पर पड़ती थी। आर्यों ने ज्योतिष, व्याकरण, छन्द, गणित, दर्शन, काव्य आदि विद्या के अंगों पर संसार की सर्वोत्तम पुस्तकों का निर्माण किया। इन्होंने राजा, प्रजा, नागरिक राजकर्मचारी, न्यायाधीश, पड़ोसी इत्यादि के कर्त्तव्यों की विवेचना की तथा कौटुम्बिक सत्ता और पारस्परिक व्यवहार के लिए उच्च आदर्शों की स्थापना की। अतिथि-धर्म

को तो इन्होंने बड़ा सराहनीय समझा। आर्य-संस्कृति संसार के सामने शान्ति, संतोष एवं प्रेम का उपदेश रखती है। इस संस्कृति द्वारा भारत में जिस समाज की स्थापना हुई उसकी विदेशी यात्रियों ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

चीन के गुरुः—चीन की प्राचीन जाति किस समय से ह्वाँग हो (पीत नदी) यांगट्सी की घाटी में आ बसी यह घटना इतिहास के गहन अन्धकार में छुपी हुई है। आर्यों की भाँति इस जाति की गृहविहीनता के युग का चिन्ह नहीं मिलता। निःसंदेह सहस्त्रों वर्ष से यह जाति चीन के विस्तृत मैदानों में विद्यमान है। अन्य जातियों में जैसे योरोपीय जातियों में—जो सामन्त प्रथा (fendalism) बाद में प्रचलित हुई। चीन में इसका विकास बहुत पहिले हुआ। इस प्रथा के अनुसार भूमि पर सर्वोपरि अधिकार राजा या सम्राट् का माना जाता है तथा भूमि सामन्तों या महानायकों में विभाजित होती है तथा वे राजा को समय पड़ने पर सैनिक सहायता प्रदान करते थे। इस प्रकार सामन्त सेना रखते थे तथा राजा उनके हाथ का खिलौना हो जाता था। राजा को सदैव समान्तों पर निर्भर रहना पड़ता था। विशेषतया दुर्बल राजा तो चैन से बैठ ही न सकते थे। चीन में इस प्रथा के कारण ८०० ई० पू० से ४०० ई० पू० तक राजनैतिक अराजकता थी और इस समय चीन के प्रसिद्ध गुरू कन्फूशियस का जन्म हुआ। भारत में इसी समय ऐसी ही अराजकता के समय एक सामन्त राज्य में गौतम बुद्ध का जन्म हुआ था। कन्फूशियस बचपन से ही बड़ा बुद्धिमान था। विद्याध्ययन के पश्चात् वह ल्यू नामक सामन्त राज्य में एक साधारण कर्मचारी हो गया। उसने बड़ी कर्त्तव्य परायणता के साथ प्रजा का उपकार किया। ल्यू में एक राज द्रोही के कारण उसे अपना पद छोड़ना पड़ा किंतु लोग उसके उपकारों को भूले नहीं। उसके शिष्यों की संख्या बढ़ती ही चली गई।

बावन वर्ष की आयु में वह फिर वहीं प्रधान मंत्री हुआ तथा उसके राज्यकाल में यह सूक्ष्म राज्य, एक रामराज्य हो गया। उसने वस्तुओं के भाव निश्चित करके व्यापारिक अनीति को रोक दिया। सामन्तों के अत्याचारों को रोका तथा निर्धन और धनवान् सबके साथ एक समान न्याय किया। उसने भोजन के औचित्य पर भी ध्यान दिया। कन्फूशियस की शिक्षा हिन्दुओं के प्राचीन सिद्धान्त-धर्म से बहुत कुछ मिलती है। उसने मानव के कर्त्तव्यों के पाँच भाग किये:—

(१) पति-पत्नि का कर्त्तव्य,(२) पिता-पुत्र का कर्त्तव्य; (३) राजा-प्रजा का कर्त्तव्य; (४) बड़े छोटों का कर्त्तव्य; (५) मित्रों का कर्त्तव्य। यह भी बुद्ध के समान आत्मा तथा ईश्वर सम्बन्धी जटिल प्रश्नों में नहीं पड़ना चाहता था। कन्फूशियस की शिक्षा का संकेत कार्य-शीलता की ओर है, निरी धार्मिक अकर्मण्यता के विरुद्ध है। उसके उपदेश का चीन के प्रत्येक व्यक्ति पर प्रभाव पड़ा है चीनियों के समान संतोषी, शिष्टाचारी, एवं संयमी जाति दूसरी नहीं है।

जिस समय कन्फूशियस उत्तरी चीन में उपदेश कर रहा था। लगभग उसी समय दक्षिणी चीन में लाओ ट्ज नामक महात्मा हुआ जिसकी शिक्षाएँ हिन्दुओं के उपनिषत्कार दार्शनिकों से मिलती हैं। तथा इन दोनों महान् आत्माओं के पश्चात् भारत को गौतम बुद्ध की शिक्षाएँ चीन में फ़ैलीं। चीनी जाति के आचार, विचार, धर्म, जीवन तथा राष्ट्रीय संस्कृति या चीन के इन तीन प्राचीन धर्म गुरुओं की बड़ी छाप है।

चीनी शान्ति-प्रिय, संतोषी तथा राज नियम पालक होते हैं। अनुमानतः वे संसार में सदैव से ही वास्तविक अर्थों में सभ्य रहे हैं। अनेक आक्रमणों तथा क्रान्तियों ने भी उनकी शान्तिप्रियता को ठेस नहीं पहुँचाई। चीन में सैनिक जीवन को सर्वोपरि नहीं माना जाता। उनका कुटुम्ब तथा कौटुम्बिक जीवन से जो प्रेम है वह उनके राष्ट्रीय

जीवन की भित्ति है। अपने कुटुम्ब के लिये वे बड़े से बड़ा बलिदान कर सकते हैं। उनमें जाति-भेद नहीं होता। अतएव वे अच्छे प्रामाणिक तथा देशभक्त बन सकते हैं। चीन के इन महान् गुरुओं ने जो संस्कृति निर्माण की थी उसी के बल पर चीनी जापान के बलशाली राष्ट्र से वर्षों भिड़े रहे तथा अन्त में विजयी हुए। चीन के उज्वल भविष्य की यह आधार-शिला है।

मेधावी यूनान—सभ्य मिश्र के उत्तर में भूमध्य सागर के उस पार भी शनैः शनैः सभ्यता का प्रचार हुआ। ट्रय नगर के प्रसिद्ध लकड़ी के घोड़े की कहानी सभी को ज्ञात है। यह नगर भूमध्य सागर के क्रीट (Crete) द्वीप की राजधानी था। क्रीट तथा समीपवर्ती द्वीपों के निवासी अनुभवी नाविक थे तथा इनका व्यापार सभ्य देश मिश्र से रहता था। लगभग १००० ई० पू० में क्रीट में मोहन जोदड़ो के समान एक बड़ी सभ्यता का निर्माण हुआ। इनके राज-महलों एवं नगरों के भग्नावशेषों में भी सिंध के प्राचीन नगरों का सा स्वच्छता का प्रबन्ध मिला है। स्नानागार, जलवाहक-नल चौड़ी मनोमोहक वीथियाँ दिखलाती हैं कि ये लोग बड़े सभ्य थे।

किंतु क्रीट-सभ्यता के समय में ही आर्यों की यूनानी शाखा यूनान में पहुँची। इसी समय भारतीय मैदानों में भी आर्य के रास्ते जा रहे थे। यूनान जैसे देश में ये आर्य नौचालन में बड़े प्रवीण हो गये। जैसे भारत में आर्यों तथा सभ्य-अनार्यों के प्रबल युद्ध हुए तथा अनार्यों को परास्त करने पर भी आर्य उनकी उच्चतर सभ्यता से प्रभावित हुए उसी प्रकार यूनान-वासी आर्य क्रीट नगरों को नष्ट करने में सफल हुए किन्तु उनकी सुन्दर सभ्यता से अनेक शिक्षायें उनको मिलीं। संसार ग्रीक-सभ्यता का अनेक अंगों में ऋणी है किन्तु हमें इस प्रकरण में क्रीट सभ्यता को न भूल जाना चाहिये।

यूनान की प्राचीन एवं प्रगतिशील सभ्यता योरोप की आधुनिक सभ्यता की जननी थी। आर्यों के आगमन से पहिले यूनान में अल्प संख्यक आर्य सभ्य लोगों का निवास स्थान था। यह देश वास्तव में अनेक उपत्यकाओं का समूह है जो निम्न पर्वत श्रेणियों द्वारा एक दूसरे से प्रायः पृथक् हैं। यहाँ आने पर आर्य अपनी प्राचीन संस्था "गणतन्त्रता" या "प्रजातन्त्र" की रक्षा करके उसका विकास करने में समर्थ हुए। प्रत्येक उपत्यका में एक सूक्ष्म गण-राज्य या नगर-राज्य स्थापित हुआ तथा बड़े बड़े साम्राज्य न बन सके। निःसंदेह ये नगर संस्थाय आर्यों की इतिहासातीतकाल की जनसमिति का विकसित रूप ही थीं। यूनान में आर्यों को इस प्रकार की संस्थाओं को उन्नत करने का पूर्ण अवसर था। समीप वर्ती क्रीट-सभ्यता का विनाश हो जाने के पश्चात् नवागन्तुक आर्यों को वाह्य भय नहीं था। प्रजातन्त्र का पौधा युद्ध तथा बाह्य आक्रमण रूपी तुषारपात में नहीं पनपता। उसे शांति रूपी सूर्य की जीवन-रश्मियों की आवश्यकता है।

इस प्रकार पृथ्वी पर स्वतन्त्रता का तथा स्वतंत्र शासन का उदय हुआ। यह आरम्भिक प्रजातन्त्र क्या था? उस आदिम काल में यह जनसाधारण का स्वतंत्र शासन न था। यूनानी नगरों के सभी निवासी स्वतंत्र नागरिक न होते थे। लगभग आधे लोग दास होते थे जो अनुमानतः विजित जातियों के वंशज थे तथा थोड़े से ऋणी आर्य भी दासों की श्रेणी में आते थे। दास स्वतंत्र नागरिक न थे। अतएव नागरिक जिन्हें शासन में सम्मति देने तथा भाग लेने का अधिकार था—थोड़े से ही व्यक्ति होते थे। ऐसी दशा में यह सम्भव था कि समस्त नागरिक एक स्थान पर एकत्र हो कर शासन-कार्य चला सकें। आजकल के प्रजातन्त्र की भांति प्रतिनिधि निर्वाचन करके व्यवस्थापिका सभायें बनाने की आवश्यकता न थी। आधुनिक समय में एक राज्य में करोड़ों नागरिक होते हैं अतएव जनतन्त्र का स्थान प्रतिनिधि

शासन ने ले लिया है। इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिक प्रजा प्रतिनिधि शासन यूनान के जनतंत्र का विकसित रूप है।

यूनान के नगर राज्यों में नगर सम्बन्धी नियम समस्त नागरिक एकत्र होकर बनाते थे। प्रमुख राज्य कर्मचारी निर्वाचित या लाटरी के समान चुने हुए नागरिक होते थे। उदाहरणार्थ सर्व प्रसिद्ध नगर अथेन्स में प्रत्येक न्यायालय में लगभग पाँच सौ न्यायाधीश होते थे जो वास्तव में अवसर-विशेष या कुछ दिनों के लिये नागरिकों में से लाटरी के ढँग पर छाँट लिये जाते थे। शासन विभागों के अध्यक्ष, निरीक्षक सेना नायक आदि भी इसी प्रकार से चुने जाते थे। नागरिकों को राज्य कार्य के लिये पर्याप्त समय मिलता था क्योंकि जीविका कार्य में उन्हें दासों से बड़ी सहायता मिलती थी। इस प्रकार के प्रबन्ध में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं यूनान के नगरों में कला तथा साहित्य की सराहनीय उन्नति हुई।

यूनान का स्वर्ण-युग ई० पू० पाँचवीं शताब्दी से आरम्भ होता है। यह कहा जा चुका है कि आर्यों का एक दल फ़ारस भी पहुँचा। इन्होंने बेबीलोन को विजय करके आधुनिक तुर्की, मिश्र, शाम, इराक, फारस, अफगानिस्तान तथा सिंध प्रदेश में भी अपना आधिपत्य जमा लिया। फिर इन्होंने या इनके महासम्राट् ने यूनान के क्षुद्र नगर-राज्यों को अपना लक्ष्य बनाया। अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिये ये परस्पर निरंतर लड़ने वाले राज्य एकता के सूत्र में बद्ध परिकर हो गये तथा विजयोन्मत्त फारस-सम्राट् को मुँह की खानी पड़ी। इस भय के संपूर्ण रूप से निवारण होने के पश्चात् यूनान के नगरों की अभूतपूर्व उन्नति हुई। विशेष कर अथेन्स में पेरीक्लीय नामक नेता के शासन-काल में जो बहुमुखी उन्नति हुई वह संसार के इतिहास में अमर है। इसी समय पार्थेनान नामक महान् मन्दिर का निर्माण हुआ जिसमें एथिनी (यूनानी सरस्वती) की प्रतिमा प्रतिष्ठित थी। ज्ञान, विज्ञान, कला,

साहित्य, चित्रकला, आदि की भी सराहनीय उन्नति हुई। संसार यूनान के तीन मेधावी पुरुषों को कभी नहीं भूल सकता। इसमें प्रथम नाम सोक्रटीज का है जो इस सिद्धान्त को मानने वाला था कि वस्तुओं के सम्बन्ध में अशुद्ध धारणा रखने से मस्तिष्क तो क्या आत्मा की भी अशुद्धि हो जाती है। अतएव वह लोगों से प्रश्न करके उनके विचार तर्क की कसौटी द्वारा ठीक किया करता था। इस प्रकार के प्रश्नोत्तर यद्यपि लाभप्रद होते थे किन्तु जो लोग तर्क में परास्त हो जाते थे वे एक प्रकार से सोक्रटीज़ के शत्रु बन जाते थे। शत्रुओं की संख्या बढ़ती ही गई तथा अन्त में इन्होंने सोक्रटीज पर यह अभियोग लगाया कि उसकी शिक्षा युवकों को धर्म विरुद्ध कर देती है। न्यायाधीशों ने उसे मृत्यु दंड दिया। सोक्रटीज का प्रमुख शिष्य प्लेटो दूसरा प्रसिद्ध मेधावी था। उसके समय में यूनान में गृहयुद्ध हो रहे थे अतएव उसकी पुस्तकों में आदर्श राज्य पर विशेष बल दिया गया है उसकी ख्यात नामा पुस्तक "प्रजातन्त्र" (Republic) में एक आदर्श स्वतन्त्र राज्य का वर्णन है तथा एतद्विषयक राजनैतिक विवेचना है। इस पुस्तक में संसार में सब से पहले इस विषय पर विचार किया गया है कि मनुष्य को कैसी सामाजिक और राजनैतिक संस्थाएं निर्माण करना चाहिये। अब तक मानव की यह धारणा थी कि समाज देवताओं तथा ईश्वर को स्थापना है। प्लेटो एक उच्चकोटि का दार्शनिक भी था। उसने एकड़ेमी नाम का एक विद्यालय स्थापित किया था जिसमें वह विद्यार्थियों का अपने विचारानुसार शिक्षा देता था इसी विद्यालय में उसका एक शिष्य था जो आगे चल कर यूनान का तृतीय और अत्यन्त प्रसिद्ध मेधावी हुआ। यह जगद्विजयी अलक्षेन्द्र (Alexander) का गुरू अरिस्टाटल था। अरिस्टाटल को आर्थिक सहायता सुगम होने के कारण वैज्ञानिक, ऐतिहासिक एवं राजनैतिक अन्वेषण में बड़ी सरलता रही

उसने इन विषयों पर संसार की आरंभिक पुस्तकें लिखीं। इस प्रकार अरिस्टाटल "आधुनिक विज्ञान का पिता" कहलाता है।

पूर्व तथा पश्चिम की पहली टक्कर:— ऊपर फ़ारस के आक्रमण का उल्लेख किया गया है जो एक प्रकार से "पूर्व" का "पश्चिम" पर पहिला आक्रमण था। किन्तु वह एक असफल प्रयत्न था। यद्यपि यूनान के प्राचीन इतिहास का स्वर्ण-युग लगभग इसी का परिणाम था। यूनानी सभ्यता का प्रसार होता रहा और इसका प्रभाव यूनान के उत्तर में अर्द्ध सभ्य आर्यों पर भी पड़ा। इस भाग के एक प्रान्त के शासक फिलिप ने अपनी सेना में अनेक सुधार किये तथा अपने पुत्र अलक्षेन्द्र के लिए अरिस्टाटल को गुरु नियुक्त किया। फिलिप की इच्छा फ़ारस के प्रसिद्ध साम्राज्य को विजय करने की थी। किन्तु पूर्ण रूप से प्रस्तुत होते हुये भी वह अचानक काल ग्रास हो गया तथा उसका पुत्र उसकी योजना को पूर्ण करने के लिये तत्पर हुआ।

अलक्षेन्द्र ने सर्व प्रथम यूनान को एक ध्वजा के नीचे एकत्र किया उसमें उसको अनेक कठिनाइयाँ हुईं। फिर यह जगद्विजयी वीर सर्वोत्तम सन्नद्ध सेना लेकर फ़ारस सम्राट् के भूमध्य सागरीय पोतस्थानों पर टूट पड़ा और फिर पर्वतमालाओं को पार करता हुआ शाम में उतरा। वहां उसने फ़ारस की महान् सेना को परास्त किया। इस प्रकार उसे शाम, फिलस्तीन तथा मिश्र में अपना आधिपत्य जमाने में सफलता हुई। किन्तु फ़ारस वालों से वह पूरा प्रतिशोध लेना चाहता था। अतएव मिश्र से वह फिर फ़ारस की ओर बढ़ा। इस बार उसने फ़ारस के सभी महान् नगर जीत लिये। फ़ारस का सम्राट् प्राण रक्षा के लिए भागा किन्तु अपने कर्मचारियों द्वारा मार डाला गया। इस प्रकार यूनान का प्रतिशोध पूरा हो गया। किन्तु अलक्षेन्द्र फ़ारस के समस्त साम्राज्य को विजय करना चाहता

था अतएव वह अव-गमन स्थान (अफ़ग़ानिस्तान) पर ससैन्य बढ़ा तथा विजयी भी हुआ। अब वह भारत के समीप था तथा इस देश के वैभव ने उसे इस ओर आकर्षित किया। भारत में पोरस नामक एक पंजाब प्रान्तीय राजा से उसे गहन युद्ध करना पड़ा किन्तु भाग्य वश वह जीत गया। उसके सैनिकों ने भय वश या परिवर्तन की इच्छा से आगे बढ़ने के लिये अनिच्छा प्रकट की। अलक्षेन्द्र सिंध बिलोचिस्तान, तथा दक्षिणी भारत के दुर्गम मार्ग से लौटा तथा अन्त में बत्तीस वर्ष की आयु में ही काल का ग्रास हो गया।

पूर्व तथा पश्चिम की टक्कर केवल सेनाओं तथा शस्त्रों की टक्कर नहीं थीं। यह सिद्धान्तों तथा विज्ञान की भी टक्कर थी। भारत तथा फ़ारस के विद्वानों को यूनान के विद्वानों से मिलने का अवसर मिला तथा परस्पर विचार विनिमय से दोनों ने एक दूसरे से बहुत कुछ सीखा। एक नवीन काल की उत्पत्ति हुई। अलक्षेन्द्र के सेनानायक तथा उनके वंशज शताब्दियों तक फारस तथा भारत के पश्चिमोत्तर में राज्य करते रहे तथा कितने ही बौद्ध हो गए। इस प्रकार यूनान की कला का भारतीय कला से सम्मिश्रण हुआ। इस के अतिरिक्त अलक्षेन्द्र के एक प्रसिद्ध सेनानी तालमी ने अपने स्वामी द्वारा स्थापित नगर अलक्षेन्द्र (Alexandria) में एक विश्व विद्यालय स्थापित किया जिसमें उसने एक महान् पुस्तकालय भी निर्माण किया। इस प्रकार यह नगर यूनानी ज्ञान-विज्ञान का केन्द्र बन गया। जो ख्यातनाम विद्वान् इस विश्व विद्यालय में हुये उनमें एक तो स्वयं तालमी था जो प्रसिद्ध ज्योतिषी तथा वैज्ञानिक था। दूसरा रेखागणित का पिता इक्लिड था जिसे स्कूल में प्रत्येक बालक आज भी जानता है। तीसरा, एराटोस्थीन्स नामक भूगोलवेत्ता था जिसने पृथ्वी की परिधि को नापने का प्रथम प्रयास किया। उनके अतिरिक्त वाष्पीय एंजिन का आविष्कारक हेरन, प्रसिद्ध यांत्रिक

आर्कमीडिस, तथा हेरोफिलस नामक शल्य चिकित्सक था। इन विद्वानों ने तथा प्राचीन भारतीय एवं चीनी विद्वानों ने अनेक नवीन आविष्कार किये थे जो आज कल फिर से आविष्कृत होकर उपयोगी हो गये हैं। उस समय वे अविष्कार जन-साधारण के लिये उपयोगी न बन सकते थे, केवल विद्वानों और पुस्तकों तक ही परिमित थे।

धर्म की दिग्विजय:— पूर्व तथा पश्चिम की टक्कर के पश्चात् पश्चिम की आगामी उन्नति की गाथा से प्रथम संसार में सर्व प्रथम धर्म प्रसार की अमर कहानी का उल्लेख किया जायगा। विश्व के इतिहास में ई० पू० छठवीं शताब्दी महत्वपूर्ण है क्योंकि इस शताब्दी के पश्चात् ऐतिहासिक प्रगति आधुनिक युग की ओर चल पड़ी। इस शताब्दी में समस्त संसार के आर्यों ने मानव जाति का नेतृत्व संभाल लिया। फारस में आर्यों ने बेबीलोनिया तथा असीरिया को विजय कर लिया तथा यूनानी आर्य क्रीट को स्थानच्युत करने में समर्थ हुए। रोम की नींव भी अभी पड़ी तथा वहाँ भी आर्य अन्य जातियों पर प्रमुख स्थापित करने लगे। इसके अतिरिक्त यह शताब्दी वह समय था जब संसार के महान् शिक्षकगण प्रादुर्भूत हुए। जैसे चीन के कन्फूशियस, लाओट्ज़ भारत के बुद्ध तथा महावीर, यूनान के पाइथेगोराज़ सोक्रटीज़, और प्लेटो। आर्यों ने जो महान् साम्राज्य स्थापित किए उनमें से हम फ़ारस तथा यूनानी (अलक्षेन्द्र) साम्राज्य का उल्लेख कर चुके हैं भारत का प्रसिद्ध सम्राट् अशोक जिसने संसार में सर्व प्रथम दूर-दूर धर्म तथा कर्त्तव्य की ज्योति का प्रसार किया अपनी धार्मिक दिग्विजय के लिये सभी सम्राटों में सर्वोपरि है।

अशोक ने जिस धर्म का प्रचार किया उसके संस्थापक भगवान् बुद्ध थे। बुद्ध से पूर्व आर्यों के प्राचीन धर्म ने विकसित होकर मिश्रित रूप धारण कर लिया था। भारत के विशेष वातावरण में द्राविड़ों से जो

तुमुल युद्ध आर्यों को करना पड़ा, इसके परिणाम स्वरूप जातीय गौरव की नींव पड़ी तथा जैसा कि अभी उल्लेख किया गया है जाति-भेद विकसित होने लगा। इसके साथ ही साथ पशु बलि द्वारा देवताओं की उपासना करने की भी एक बाढ़ सी आ गई। कठोर तप तितिक्षा तथा शारीरिक कष्ट द्वारा मोक्ष साधन भी सर्व श्रेष्ठ माने जाने लगे। वास्तव में यह विकास प्राचीन आर्य धर्म के ही सिद्धान्तों पर निर्भर था किन्तु यह कठोर धर्म-पथ अनेक आर्य विद्वानों को जन-साधारण के लिए उचित नहीं लगता था। भारतीय आर्य अपने विचार स्वातंत्र्य के लिए प्रसिद्ध हैं अतएव यह आश्चर्यजनक घटना न थी कि सुधारकों ने इस विकास के विरुद्ध आन्दोलन करना अपना कर्त्तव्य समझा। यद्यपि इस काल में अनेक सुधारक हुए हैं किन्तु इनमें सर्व प्रसिद्ध महावीर एवं गौतम बुद्ध ही हैं। महावीर किसी नवीन मत के प्रवर्तक न थे। वे वैदिक धर्म के समकक्ष जैन धर्म के प्रचारक थे किन्तु वे नवीन प्रवृत्तियों के विरुद्ध थे। पशु-बलि के विरुद्ध उनका अहिंसात्मक उपदेश परिस्थिति के बड़ा अनुकूल था किन्तु तप एवं शारीरिक कष्ट द्वारा परमपद की प्राप्ति के वे पक्ष में थे। बुद्ध का मत आर्य धर्म के नवीन विकास का प्रत्यक्ष विरोध था। उन्होंने अपने विचारों को जन-साधारण में फैलाने के लिये किसी प्राचीन ग्रन्थ एवं धर्म का आश्रय न लिया। स्पष्ट रूप से उन्होंने अहिंसा के नाम पर पशु-बलि का विरोध किया तथा जाति-भेद की निष्ठुरता के विरुद्ध मानव मात्र को एकता तथा साम्य का उपदेश दिया। तप इत्यादि की व्यर्थता पर तो वे अटल थे। सर्वोपरि बात यह है कि उन्होंने अपने विचारों को प्रत्येक दिशा में फैलाने के लिए एक भिक्षुसंघ की स्थापना की। यह संघ अनुमानतः संसार में साम्यवाद पर निर्भर प्रथम जन-समूह था। संघ में छोटे बड़े, ऊँच नीच सभी समकक्ष थे तथा संघ वास्तव में जाति-भेद को क्रियात्मक चुनौती थी। बुद्ध के सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन के विषय में जो

विचार थे वे इतने उत्तम एवं हृदयग्राही थे कि मानव मात्र के जीवन को सुखद बनाने पर मानो तुले हुए थे। और फिर इन विचारों का सार्वभौम प्रसार करने के लिए संघ था ही। बुद्ध के लगभग दो सौ वर्ष पश्चात् मौर्य कुल के प्रसिद्ध सम्राट् अशोक ने इन सिद्धान्तों एवं इनके पृष्ठपोषक संघ को अपनाया। केवल व्यक्तिगत जीवन में ही उसने इन्हें चारितार्थ नहीं किया किन्तु समस्त भारत में प्रेम-बल पर इसने उनका प्रचार किया। । उसके परिजनों ने संघ की सहायता से इस धर्म का लंका में फैलाया तथा जो उत्साह एवं सहायता संघ को इस प्रकार मिली उससे संघ इस छोटे से भारतीय मत को विश्व धर्म बनाने में सफल हुआ। संसार में लगभग सभी स्थानों के निवासियों को बुद्ध का महान् संदेश मिला तथा धर्म के सच्चे स्वरूप का कम से कम एक बार उन्हें आभास हुआ। संसार भर में यह धर्म-ज्योति सर्व प्रथम थी तथा न जाने मानव को सभ्यता की ओर बढ़ाने में कहाँ तक सफल हुई। इस समय इस धर्म के मानने वालों की संख्या सर्वोपरि है।

रोम तथा रोम राज्य—जिस प्रकार एशिया में अर्द्धसभ्य तथा असभ्य जातियों को धर्म तथा कर्त्तव्य का प्रथम ज्ञान अशोक द्वारा हुआ उसी प्रकार योरोप में सभ्यता का सुदूरवर्ती प्रसार रोम की विजय पताका द्वारा हुआ। रोम नगर की स्थापना की गाथा एक पौराणिक कथानक के समान रोचक और गौरव पूर्ण है। इटली के मध्य प्रान्त में आर्य जाति की एक शाखा निवास करने लगी थी तथा इन्हीं में से कुछ कुटुम्बों ने क्षुद्र नदी टाइबर की तटीय पहाड़ियों पर निवास करना आरम्भ किया तथा इस प्रकार एक नगर स्थापित हो गया। जिस प्रकार यूनानी आर्यों को क्रीट निवासियों से संघर्ष करना पड़ा उसी प्रकार रोम निवासियों को टस्कन जाति से जो अनुमानतः क्रीट निवासियों की एक शाखा थी—सामना करना पड़ा। प्रथम तो रोम

निवासी आर्यों ने अपने टस्कन अत्याचारी राजाओं को बहिष्कृत किया तथा एक प्रकार के परंपरागत प्रजातंत्र की स्थापना की। रोम के प्रजातंत्र तथा यूनानी प्रजातन्त्र में यह भेद था कि रोम में राजशक्ति दो मुख्य राजकर्मचारियों के हाथ में रहती थी जो 'कौन्सल' कहलाते थे। इन का निर्वाचन प्रतिवर्ष नागरिकों द्वारा होता था। नागरिक दो प्रकार के थे—१ पितृवंशज (patricians) तथा २. साधारण (plebians)। यद्यपि दोनों प्रकार के नागरिक सम्मति देने का अधिकार रखते थे किन्तु कोन्सल प्रथम प्रकार के नागरिकों ही में से हो सकते थे। यह भेद रोम के आरंभिक काल में तो पूर्ण रूप से था किन्तु रोम के बढ़ते हुये गौरव के साथ वह नष्टप्राय सा हो गया था। यह स्पष्ट ही है कि रोम के प्रजातन्त्र का यह नियम आर्यों के पैतृक कुटुम्ब का विकसित रूप था। कोन्सलों की सहायता के लिये एक व्यवस्थापिका सभा के समान "सेनेट" नामक समिति थी। इस समिति के सदस्यों की नियुक्ति कोन्सलों द्वारा ही होती थी किन्तु उन्हें परंपरागत-प्रथा का इस विषय में पूर्ण विचार रखना पड़ता था जिसका प्रभाव यह था कि सेनेट में अनुभवी राजनीतिज्ञ ही होते थे। रोम के शासन विधान में दो नागरिक-सभाओं का उल्लेख मिला है जिन में से एक जन-समिति थी जो प्राय: आर्यों की प्राचीन जन-समिति के समान थी तथा दूसरी शत-समिति थी जिसमें नागरिक शत-समूहों में सम्मिलित होते थे। जन-समिति से शत-समिति अधिक प्रतिनिधित्व वाली समिति थी अतएव आगे चल कर शासन-शक्ति शत समिति के हाथ में आ गई थी। कौन्सलों के अतिरिक्त चौधरी (prators) भी नागरिकों द्वारा नियत राज कर्मचारी होते थे जिनके कर्त्तव्य आधुनिक न्यायाधीशों के समान थे। यह भी प्रतिवर्ष चुने जाते थे। कोन्सल तथा टर एक वर्ष रोम में कार्य करने के पश्चात् रोम के प्रान्तों के शासक तथा सेनानायक बना कर भेज दिये जाते थे।

रोम की अपनी उन्नति में सबसे पहले फिनिशन जाति से सामना

करना पड़ा। फिनिशन यहूदियों के समकक्ष थे तथा अनुभवी व्यापारी थे। उनके सर्व प्रथम नगर फिलस्तीन के समुद्रतट पर बसे थे किन्तु उनका व्यापार भूमध्य सागरीय देशों में फैलता हुआ दूरवर्ती ब्रिटेन तक फैल गया। भूमध्य सागर के तटों तथा द्वीपों में उनके अनेक नगर प्रस्तुत हो गये। इनमें सिसली द्वीप के समक्ष उत्तरी अफ्रीका के तट पर कार्थेज नामक नगर सब से बड़ा तथा उन्नतिशील हो गया तथा कार्थेज निवासियों ने सिसली का द्वीप विजय करके इटली के प्रायद्वीप को विजय करने की ठानी। अतएव रोम तथा कार्थेज में तीन भयानक युद्ध हुए। अन्त में रोम की विजय हुई तथा कार्थेज समूल नष्ट हो गया। रोम की विजय पताका इटली, सिसली तथा उत्तरी अफ्रीका पर फहराने लगी किन्तु इस निरंतर युद्ध का प्रभाव रोम के प्रजातन्त्र पर बड़ा बुरा हुआ। विजयोन्मत्त सैनिक रोम तथा इटली के अन्य नगरों में विलासी जीवन व्यतीत करने लगे। इन के आमोद प्रमोद बड़े भयानक थे। रथों की दौड़, सशस्त्र दासों के युद्ध, वन्य पशुओं के युद्ध या वन्य पशुओं तथा दासों के युद्ध इनके उदाहरण हैं। यदि इन सैनिकों के भोग विलास आदि में न्यूनता आती थी तो ये लूटमार, वध तथा झगड़ों पर उतारू हो जाते थे। प्रजातन्त्र की संस्थाएँ ऐसे वातावरण में ढीली हो गई तथा शक्ति धीरे धीरे सेनानायकों के हाथ में चली गई। सेनानायकों में वही प्रबल हो सकता था जो अधिक कठोर हो। सेनानायकों में प्रजा को प्रसन्न करने की होड़ सी लग गई तथा वे सेनाएं ले ले कर नवीन प्रान्त विजय करने को जाने लगे क्योंकि जब वे विजयी हो कर लौटते थे तो उनका आदर तथा शक्ति दोनों ही बढ़ती थीं।

यह स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा था कि कोई चतुर तथा विजयी सेनानी राज्य शक्ति को सदा के लिये ले बैठेगा। ऐसा ही हुआ। अन्त में जूलियस सीजर नामक वीर सेनापति रोम के अत्यन्त प्राचीन नियमों

को भंग करके विजयी सेना के सहित रोम को लौटा तथा रोम का स्वेच्छाचारी शासक बन बैठा। सेनेट ने भयभीत हो कर उसे जीवन भर के लिये तानाशाह (dictator) स्वीकार किया तथा चार वर्ष तक उसने एक चतुर शासक की भांति शासन किया। उसके अनेक शत्रु थे जिनमें से कुछ ने जिनमें उसका अनन्य मित्र ब्रूटस भी था उसका प्रजातन्त्र के नाम पर वध कर दिया। किन्तु वधमात्र ही से सीजर का निश्चित कार्य न रुका। उसका स्थान शीघ्र ही उसके भतीजे अक्टे वियस सीजर ने ले लिया जो रोम का प्रथम तानाशाह हुआ, अपने ४१वर्षों के शासन में उसने अपने चाचा के समस्त विचारों को कार्यान्वित किया। रोमराज्य की सीमायें सुरक्षित करके उसने निश्चय किया कि साम्राज्य को विस्तृत बनाने का प्रयत्न न किया जाये। उसने प्रान्तीय शासन की उचित व्यवस्था की। सुदूरवर्ती भागों तक अखंड शांति स्थापित हो गई। लूट, मार, तथा घूस बन्द हो गई। सीजर के कुल के पाँच तानाशाह हुए रोम एक सन्नद्ध, शान्त तथा उन्नत राज्य हो गया।

'ईश्वर का पुत्र'—जिस समय रोम में रहे सहे प्रजातन्त्र का अन्त हो रहा था तथा रोम राज्य का संगठन किया जा रहा था, उस समय रोम राज्य के अन्तर्गत फिलस्तीन में एक महान् आत्मा का जन्म हुआ "ईश्वर का पुत्र" ईसा यद्यपि यहूदी था किन्तु यहूदियों के नियम एवं धर्म की कठोरता उसे बहुत खलती थी। अतएव यहूदी आरंभ ही से उसके विरुद्ध थे। ईसा की शिक्षा सरल और सुन्दर थी। ईश्वर सब मानवों का पिता है तथा हम सबको पुत्र के समान प्यार करता है, अतएव सब मनुष्यों को प्रेम-पूर्वक भाई-भाई के समान रहना चाहिये अपने शत्रुओं से भी हमें भ्रातृ के समान प्रेम होना चाहिये। यदि हमें कोई कष्ट दे तो हमें उसे कष्ट देकर प्रतिहिंसा दिखाने की आवश्यकता नहीं, हमें उसकी भलाई करनी चाहिये। प्रत्येक मनुष्य समान हैं,

देश या जाति के भेद किसी को बड़ा या छोटा नहीं बना सकते। यहूदियों की धर्म पुस्तकों में भविष्य में होने वाले एक अवतार का उल्लेख था। ईसा के अनुयायियों ने यह कहा कि ईसा ही वह अवतार है अतएव यहूदी और भी अधिक क्रुद्ध हो गये। ज्यों ज्यों ईसा के अनुयायियों की संख्या बढ़ती गई यहूदी उसके वध कराने की योजना बनाने लगे। अन्त में उन्होंने रोमराज्य के स्थानीय प्रतिनिधि की सहायता से उसे मृत्यु दंड दिलवाया। ईसाई मत के अनुसार भौतिक मृत्यु के पश्चात् भी यह अवतार चालीस दिन तक जीवित रहा तथा फिर उसका स्वर्गारोहण हो गया।

ईसा के बलिदान ही से ईसाई धर्म की नींव न पड़ी। ईसाई मत को अब तक यहूदी धर्म का एक पन्थ माना था एक संगठित धर्म बनाने वाला ईसा का एक अनुयायी पाल नामक पादरी सन्यासी था, उसने ईसा की शिक्षाओं का प्रचार किया तथा उन्हें एक नवीन और विभिन्न धर्म का रूप दिया। ईसाइयों की संख्या बढ़ी तथा इस नवीन धर्म के प्रचारार्थ सन्यासियों के मण्डल प्रस्तुत होते चले गये। साथ ही साथ ईसा के सीधे सादे सिद्धान्तों का रूप भी विकृत हो गया। तीन सौ वर्ष तक रोम राज्य की ओर से इस नवीन धर्म के प्रसार का विरोध किया गया जिसका कारण यह था कि समस्त रोम राज्य में सम्राट् की पूजा का प्रचार हो गया था और ईसाई धर्म केवल ईश्वर की पूजा का समर्थन करता था। किन्तु सन् ३३७ में रोमन सम्राट कान्स टेन्टाईन (Constatine) ने इस धर्म को स्वीकार किया। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि सम्राट् गिरते हुई शक्ति वाले रोम राज्य में नवीन धर्म से नवीन स्फूर्ति उत्पन्न करना चाहता था जिससे असभ्य लोगों के आये दिन के आक्रमणों से रक्षा हो सके ईसाई धर्म इस प्रकार राजधर्म हो गया तथा रोम राज्य में इसके अनुयायी शीघ्र ही बहुसंख्यक हो गये। इस प्रकार "पवित्र रोम राज्य" की नींव पड़ी।

रोम का मानव जाति को दान—सीजर के राज कुटुम्ब के अन्तिम शासक विलासी तथा दीर्घसूत्री थे। उनके समय में राज्य की अवनति होने लगी किन्तु एक और राजकुटुम्ब ने शासन की बाग डोर हाथ में ली जिसमें कितने ही स्वनामधन्य सम्राट हुए। इन सम्राटों में सर्व प्रसिद्ध मरकस अरिलियस था। यह सम्राट् स्वयं तो एक सन्यासी का जीवन व्यतीत करता था किन्तु सारे रोम राज्य को एक दृढ़ सूत्र में बाँध कर शक्तिशाली बनाने की क्षमता रखता था। उसके समय का रोम राज्य कितने ही दृष्टिकोणों से आदर्श राज्य था। किन्तु महान् सम्राट् अशोक की भाँति इसके उत्तराधिकारी भी अयोग्य थे। मारकस अरिलियस की मृत्यु के पश्चात् रोम राज्य का ह्रास आरंभ हो गया।

यह कहना कठिन है कि रोम नगर में सम्राट्सत्ता की स्थापना के साथ साथ प्रजातन्त्र का अन्त हो गया। सम्राट् वैधानिक रूप से कौन्सिल से अधिक अधिकार वाला राजकर्मचारी मात्र था यद्यपि वास्तविक रूप में उसकी शक्ति एक स्वेच्छाचारी राजा की सी ही थी। कौन्सिल, प्रेटर आदि राजकर्मचारी अब भी नियत किये जाते थे तथा रोम में अपना वर्ष पूर्ण कर लेने के पश्चात् प्रान्तों में भेजे जाते थे। राज्य में कितने ही नगरों में शासन के बहुत से अधिकार प्रजा के हाथ में थे। रोम राज्य के नष्ट हो जाने के पश्चात् भी मध्ययुग में योरोप में अनेक नगर प्रजातन्त्र शासन के अन्तर्गत थे। यह उल्लेख किया जा चुका है कि रोम राज्य में सम्राट का देवता की भाँति पूजन होने लगा था। यद्यपि एक दृष्टिकोण से ऐसा करना हेय है किन्तु इस प्रथा का परिणाम राजनैतिक उन्नति में सहायक हुआ। रोम राज्य के प्रान्तों की राजधानियों में प्रायः किसी सम्राट् का मंदिर होता था तथा वर्ष के विशेष दिनों पर वहां प्रान्त के निवासी पूजा के लिये एकत्रित होते थे। प्रान्तीय शासकों के लिये यह प्रजा की सम्मति जानने का

अच्छा अवसर था। कालान्तर में प्रान्त की एक प्रकार की व्यवस्था सभाएं इन्हीं मन्दिरों की पूजा के अवसर पर प्रस्तुत होने लगीं। जो अनुमानतः आधुनिक व्यवस्थापिका सभाओं की जननी थीं। इसके अतिरिक्त रोम राज्य की अद्भुत शान्ति, नियम व्यवस्था सुन्दर एवं उपयोगी सड़कें, सुन्दर इमारतें संसार मे नवीन वस्तुएँ थीं। जब से राज्य की श्रृङ्खला शिथिल होने लगी थी साम्राज्य को दो भागों में विभक्त किया गया। प्राचीन रोम राज्य की राजधानी रही तथा उसमें इटली, फ्रांस, स्पेन, ब्रिटेन एवं उत्तरी अफ्रीका थे। पूर्वी रोम राज्य की राजधानी कोन्सटेन्टिनोपिल (आधुनिकस्तम्बुल) बनाई गई तथा इसमें बाल्कन प्रायद्वीप, टर्की, शाम, मिश्र आदि देश थे। पश्चिमी राज्य बर्बर हूणों के आक्रमणों से नष्ट हो गया किन्तु पूर्वी राज्य सन् १४५३ ई० तक स्थिर रहा। यहां सम्राट् जस्टीनियन के समय रोम राज्य के कानून को एकत्रित करके सन्नद्ध किया गया तथा प्रेटरों के न्यायालयों के असंख्य अभियोगों के पत्रों से अन्वेषण करके कानूनी कार्यवाही तथा टिप्पणी की पुस्तकें बनाई गईं। योरोप के अनेक राज्यों के कानून का आधार रोमन कानून है। यह संसार का प्रथम कानून था जो शताब्दियों के अनुभव के आधार पर निर्माण हुआ।

रोम राज्य के शासन का ढँग आज भी साम्राज्यवादी राष्ट्रों के लिये आदर्श बना हुआ है।

हूण—जिन बर्बर हूणों ने निरंतर आक्रमण करके रोम राज्य को नष्ट कर दिया वे वास्तव में गृहविहीन आर्य जातियाँ थीं जो मध्य एशिया में निवास करती थीं। मध्यएशिया में शुष्कता बढ़ती जा रही थी तथा इस समय भी बढ़ रही है। इन गृहविहीन पशुपालकों को अब नवीन गोचर-भूमि की आवश्यकता थी। अतएव उन्होंने समीप वर्ती देशों पर आक्रमण किया तथा इनके निवासी जो अनुमानतः शक तथा कुशन थे भारत पर आक्रमण करने को विवश हुए। हूण, चीन

की ओर भी बढ़े। यदि वहाँ कन्फूशियस के समय की सी सामन्त प्रथा का शासन होता तो देश हूणों से परास्त होकर योरोप, फ्राँस तथा भारत के समान दुर्दशा में फँस जाता। किन्तु चीन में प्रबल सम्राटों का राज्य था। इनमें से सर्व प्रथम ने हूणों के रोकने के लिये चीन की बड़ी दीवार बनवानी आरंभ कर दी। अतएव चीन में हूणों को मनमानी करने का अवसर न मिला तथा वे पश्चिम में सुदूरवर्ती योरोप में बढ़ने का प्रयास करने लगे। रोमराज्य ने प्रथम तो सीमान्त आर्य पशु पालकों को मित्र बनाया तथा इनके द्वारा हूण आदि ब र्रों को रोकने का प्रबन्ध किया तथा फिर साम्राज्य को दो भागों में विभक्त करके साम्राज्य को बचाना चाहा। पश्चिमी रोम साम्राज्य को तो बर्बरों ने नष्ट ही कर डाला। भारत में भी कनिष्क तथा मिहिर कुल वास्तव में आक्रमणकारियों ही के सरदार थे। सभ्य भारत एवं रोम राज्य का इन विजयी विदेशियों पर गहरा प्रभाव पड़ा वे लगभग विजित जातियों से सम्मिलित हो गये तथा उनके पृथकत्व का विनाश हो गया। किन्तु पूर्वी रोमराज्य कई बार इन गृहविहीन आर्यों से कांप कर भी बच गया। उसके विनाश से प्रथम हमें इस्लाम के प्रगतिशील प्रसार पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।

मरुभूमि में ईश्वर दूत—अरब-देश नितांत मरुस्थल है। उसके निवासी अनेक मूर्तिपूजक कुटुम्बों में विभक्त थे तथा असभ्य थे। अशोक द्वारा प्रसारित बुद्धधर्म का वहाँ अनुमानतः यह प्रभाव ही शेष रह गया था कि वे अनेक प्रकार की विकृत एवं भयावह आकृति वाली बुतों बुद्धों की पूजा करते थे तथा उनका केन्द्रीय पूजा-स्थान कावा मक्का में था जहाँ कितनी मूर्तियाँ विद्यमान थीं। मुहम्मद साहब जो मक्का निवासी थे उनकी अनेकता एवं असभ्यता पर बड़े क्षुब्ध थे। उन्हें अनेक वाद-विवादों के पश्चात् दृढ़ निश्चय हो गया कि ईश्वर एक है तथा पूजनीय है एवं उसने इहलोकवासियों को इब्राहीम, मूसा, ईसा, मुहम्मद

आदि दूत भेज कर सन्मार्ग पर लाने का प्रयोग किया है। उन्होंने यह भी प्रकाशित किया वे स्वयं एक ईश्वर-दूत हैं तथा उन्हें ईश्वर की ओर से आज्ञाएँ "श्रुति" या इलहाम द्वारा प्राप्य हैं। ये आज्ञाएं कुरान में मिलती हैं। इन आज्ञाओं के मानने वाले उनके अनुयायी मुसलमान या आज्ञापालक कहलाये। मक्का के निवासी उनका विरोध करने लगे अतएव उन्हें समीपवर्ती नगर मदीना को अपना प्रचार केन्द्र बनाना पड़ा। उनका मक्का से मदीना को "पलायन" करने का दिवस इस्लाम का जन्म दिन माना जाता है तथा इस्लाम का संवत् इसी दिवस से आरंभ होता है। इस्लाम का प्रसार बड़ी शीघ्रता से हुआ मुहम्मद साहब के समय ही में समस्त अरब मुसलमान हो गया। उनकी मृत्यु के पचीस वर्षों के भीतर इस्लाम का धर्म गुरु (खलीफा) मिश्र, शाम, इराक, फारस तथा तुर्की पर राज्य करता था और मुसलमान फारस साम्राज्य तथा पूर्वी रोम राज्य को परास्त कर चुके थे। अगले सौ वर्ष में इस साम्राज्य में पूर्व की ओर सिंध, पंजाब तथा अफगानिस्तान, पश्चिम की ओर समस्त उत्तरी अफ्रीका और स्पेन तथा उत्तर की ओर तुर्की स्थान सम्मिलित हो गये थे। इस्लाम के इस प्रगतिशील प्रसार का कारण मुसलमानों का पारस्परिक भ्रातृभाव था। इस समय अधिकतर देशों में मानव राजा अथवा पुरोहित या दोनों द्वारा दलित था। इस्लाम उसे इस गहन दुर्दशा से छुटकारा देता था। कोई अन्य विश्व-धर्म उसके इस प्रकार के उद्धार की आशा न दिलाता था। इस्लाम का प्रचार ऐसे अनेक देशों में हुआ था जहां यूनान का प्रभाव फैल चुका था। अतएव अरबों को यूनान के ज्ञान-विज्ञान से परिचय हुआ। उन्हें सिंध की विजय से भारत के विद्वानों से भी परिचय हुआ खलीफाओं की राजधानी में बड़ा विश्व-विद्यालय स्थापित हुआ जहां इन विद्याओं का अध्ययन ही नहीं उन्नति भी की गई। अरबों ने चीन से कागज बनाना सीखा जिससे विद्या प्रसार में बड़ी सहायता

हुई। बीज गणित (Algebra) प्रथम बार भारतीयों से सीख कर उन्होंने उन्नत किया तथा फिर योरोप में फैलाया। अरबों ने गणित आयुर्वेद, रसायन तथा तर्कशास्त्र में सराहनीय उन्नति की। बग़दाद, काहिरा तथा कार्डोबा (स्पेन) में उनके महान् विश्व विद्यालय थे।

अराजकता की रोकथाम—जिस प्रकार इस्लाम के प्रसार से उत्तरी अफ्रीका तथा पश्चिमी एशिया में हूणों के आक्रमण एवं पूर्वी रोम राज्य तथा फारस साम्राज्य की निरन्तर लड़ाइयों द्वारा बढ़ती हुई अराजकता रुक गई, इसी प्रकार भारत में हूणों द्वारा विध्वंस किये हुए गुप्त साम्राज्य के स्थान पर क्रमशः हर्ष साम्राज्य तथा गुर्जर साम्राज्य स्थापित हुआ और योरोप में फ्रैंक जाति के नेता महान् चार्ल्स ने जर्मनी, आस्ट्रिया, इटली आदि को विजय करके पवित्र रोम राज्य की स्थापना की। चीन में भी महान् साम्राज्य के विनाश के पश्चात् इसी काल में ताँग साम्राज्य स्थापित हुआ। संसार के सभी देशों में विजयी गृह विहीन आर्य अपनी सभ्य प्रजा से प्रभावित होकर अराजकता को नष्ट करने को प्रस्तुत हो गये। इन नवीन साम्राज्यों में मानव ने सार्वभौम उन्नति की। भारत में हर्ष के समय से ही देश उन्नत तथा सम्बद्ध था राज्य कर हल्का था एवं अखंड शान्ति विराजमान थी। प्रजा सत्य-भाषी तथा सत्य व्यवहार वाली थी धार्मिक सहिष्णुता—जो भारत का संसार को महान् उपदेश है—सार्वभौम थी। विद्या शिक्षा में सराहनीय उन्नति थी नालन्दा विश्व विद्यालय जिसमें ३०,००० से ऊपर विद्यार्थी थे, जहाँ एक सहस्र से ऊपर शिव के कमरे, एक महान् पुस्तकालय तथा सहस्रों शिक्षक थे। भारतीयों की विद्या-प्रियता का उदाहरण है। विश्व विद्यालय के भवन इतने भव्य तथा ऊंचे थे कि प्रातःकाल के कुहरे में ऊपर के भाग विलीन हो जाते थे। इस प्रकार के अन्य विश्व विद्यालयों की भी कमी न थी। चीन में नवीन साम्राज्य के समय में चित्रकला, काष्ठ-पात्रों का निर्माण, बारूद का आविष्कार पत्थर के

कोयले तथा गैस का प्रयोग, लकड़ी के छापे से पुस्तकें छापना आदि अनेक नवीन अविष्कार हुए जो कितनी ही शताब्दियों के पश्चात् योरोप पहुँचे तथा वहाँ से समुन्नत होकर संसार में फैले।

ये सब नवीन साम्राज्य वास्तव में सामन्त सत्ता के आधार पर स्थित थे। सामन्त प्रथा का वर्णन पहिले आ चुका है। संसार में बढ़ती हुई अराजकता के समय यह स्वभाविक था कि जन साधारण अपनी रक्षा के लिये किसी सामन्त के आधीन हो जाये जो अपनी 'जमींदारी' के केन्द्र स्थान में एक दुर्ग बना ले और अधीन जनों की सुरक्षा तुरन्त समय पर प्रस्तुत करने का प्रबन्ध करे। इस प्रकार के सामन्त अपनी रक्षा के लिये किसी महान् सामन्त या राजा के आधीन होने का प्रयास करते थे तथा यह समझते थे कि राजा को अपनी सैनिक सेवा अपर्ण करने के बदले वे अपनी भूमि को राजा से प्राप्त किये हुए हैं। महा सामन्त तथा राजा भी प्रायः इन्हीं शर्तों पर अपने को किसी महाराजा या सम्राट् के आधीन कर लेते थे। योरोप में सामन्त श्रृंखला में सर्वोपरि पवित्र रोम राज्य का सम्राट् तथा रोम का पादरी जो इस समय तक संसार में ईसा का प्रतिनिधि या पोप बन बैठा था। इन दोनों में परस्पर बड़ी स्पर्द्धा रही किन्तु मध्य युग में प्रभुत्व पोप के हाथ रहा। फिर सामन्त प्रथा ही इतनी दुर्बल पड़ गई कि सम्राट् अपना प्रभुत्व स्थापित कर सका। पोप तो अपने धार्मिक अधिकारों के बल पर राजा, सामन्तजन एवं साधारण प्रजा पर तानाशाही चला लेता था किन्तु सम्राट् की शक्ति सैनिक शक्ति के बल पर ही निर्भर हो सकती थी, इतनी विशाल सेना रखना उसके लिये संभव न था,भारत में जब तक सम्राट् महान् सेना प्रस्तुत रख सका उसकी शक्ति बड़ी रही। कन्नौज की महान् शक्ति के हटते ही भारत अनेक सामन्त राज्यों में विभाजित हो गया है जिन में नित्य प्रति झगड़े रहते थे। इस्लाम के नवीन सम्राट् खलीफाओं के दुर्बल होते ही वहाँ भी

यही दशा हुई। इस साम्राज्य विहीन स्थिति में मध्य एशिया की नवीन पशुपालक जाति तुर्कों ने जो इस्लाम धर्म स्वीकार करचुके थे खलीफाओं को छिन्न भिन्न करके अपने राज्य स्थपित किये तथा पूर्वी रोमराज्य की राजधानी कुस्तुन्तुनिया को भी विजय करके उसकी इतिश्री कर दी। तुर्क सम्राटों ने भी आगे चल कर ख़लीफा की उपाधि धारण की। यही तुर्क भारत में भी उतर पड़े तथा इनके पीछे पीछे पठानों ने आकर भारत को विजय किया। चीन में भी अराजकता फैल गई और योरोप में नार्थमैन (उत्तरी मानव) जो रूस के निवासी थे अपने पोतों में बैठ कर योरोप के सारे समुद्र तट पर आक्रमण करते रहे। इनका एक दल तो अमरीका तक पहुँच कर लौट आया। जनता प्रथम इस अराजकता को रोकने में निष्फल रही।

राष्ट्रीयता का उदय—संसार में कोई भी निष्फल प्रथा स्थित नहीं रह सकती। योरोप में सामन्त-सत्ता के साथी पोप द्वारा अधिकृत कैथोलिक ईसाई मत पर आक्रमण आरंभ हुए जो इतिहास में सुधार (Reformation) के नाम से प्रसिद्ध हैं इस सुधार-आन्दोलन के पीछे यूनान की विद्या का पुनःप्रसार Renaissanceथा जो पूर्वी रोमराज्य के पतन के पश्चात् योरोप में हुआ। यूनानी विद्या के प्राचीन केन्द्र अलक्षेन्द्रिया तथा कुस्तुन्तुनिया से विद्वान् योरोप भाग आये तथा उनके शिक्षण से प्रत्येक देश के विद्वान् पोप तथा अन्य पादरियों की अज्ञानतापूर्ण धर्मान्धता के विरुद्ध हो गये। इधर चीनी अविष्कारों का योरोप में प्रसार हुआ। बारूद तथा तोप-बन्दूकों के अविष्कार ने राजाओं की शक्ति बढ़ादी और मुद्रण यंत्रों से पुस्तकों का निर्माण सुलभ हुआ तथा ईसाई मतावलम्बियों को प्रथम बार अपनी धर्म पुस्तकों के अवलोकन का अवसर मिला। राजाओं ने सामन्त प्रथा पर दुहरा आक्रमण आरंभ कर दिया। एक ओर तो इन्होंने सम्राट् तथा पोप के विरुद्ध अपने देश निवासियों का राष्ट्र के नाम पर झंडा खड़ा किया तथा

कितने ही राजाओं ने सुधारवादियों Protestants को अपनाया और मध्ययुग के पवित्र रोमराज्य की रही सही सत्ता को कुचल दिया। दूसरी ओर नवीन तोप-बन्दूकों से उन्होंने अपने आधीन सामन्तों को दुर्बल बना दिया तथा उनका कार्य केवल राजसभा की शोभा बढ़ाना मात्र रह गया। इस प्रकार सार्वभौम सत्ताओं के स्थान पर स्थानीय सत्ताओं की स्थापना होने लगी। ये नवीन सत्ताएं राष्ट्र के नाम से सम्बोधित हुईं। भारत में विदेशी तुर्कों, पठानों एवं मुग़लों के विरुद्ध मेवाड़ तथा महाराष्ट्र में राष्ट्रीयता के आदर्श पर गौरव पूर्ण युद्ध किये गये। महान् साम्राज्यों के विरुद्ध प्रान्तों या देशों ने राष्ट्रीयता की भावना का आश्रय लेकर आवाज़ उठाई। इसी नियम के अनुसार योरोप में स्पेन के विरुद्ध 'राष्ट्रीय' आन्दोलन उठा कर हालेंड ने स्वतंत्रता प्राप्त की। अठारह तथा उन्नीसवीं शताब्दियों में तुर्की साम्राज्य के योरोपीय भाग में राष्ट्रीयता के आदर्श को समक्ष रखते हुए बाल्कन प्रायद्वीप के देश स्वतन्त्र हुए। वास्तव में स्पेन राष्ट्र की उत्पत्ति वहाँ के मुस्लिम राजाओं के विरुद्ध आन्दोलन करने से हुई। फ्राँस तथा इंग्लैण्ड के राष्ट्र उन आक्रमणों के कारण उत्पन्न हुए जो इंग्लैण्ड के राजा फ्राँस पर अपने कौटुम्बिक अधिकारों के लिये करते थे, तथा स्पेन के राजाओं के भय से इंग्लैण्ड का राष्ट्र और भी संगठित हो गया। चंगेज़ खां के भयानक आक्रमणों के कारण रूस में राष्ट्रीय एकता की लहर दौड़ गई। राष्ट्रीयता का यह प्रवाह अब भी निरंतर जारी है। भारत में अंग्रेज़ों के स्वार्थ पूर्ण साम्राज्यवाद ने सर्वप्रथम स्वनामधन्य राजा हैदर तथा टीपू के हृदय में इस भावना को उत्पन्न किया तथा ज्यों-ज्यों अंग्रेज़ों का अत्याचार पूर्ण साम्राज्य देश में फैलता गया, इस भावना में वृद्धि होती गई। पानीपत के तृतीय युद्ध में शाहशुजा यद्यपि विदेशी आक्रमणकारी अहमदशाह के बरबस था किन्तु हृदय से मराठों के विरुद्ध न था राष्ट्रीय भावना से प्रेरित

होकर सन् १८५७ में सारे देश में प्रथम स्वतंत्रता युद्ध हुआ। जिससे विदेशी शासकों की आंखें खुल गई, साम्राज्यवाद ने यहाँ अपना विनाश साधन स्वयं उत्पन्न किया—जिसका नाम है भारत की राष्ट्रीयता। जापान की राष्ट्रीयता की जागृति रूसियों के उद्दण्डतापूर्ण आक्रमण से हुई।

राष्ट्रीयता ने मानव को सहस्रों वर्षों की धार्मिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता की आशा दिलाई। राष्ट्र के सभी व्यक्ति समान माने जाते हैं तथा सामन्त प्रथा वाला छोटे बड़े का भेद मिट जाता है। राष्ट्रीय संगठन द्वारा मानव की अनेक समस्याएं राष्ट्रीय पैमाने पर हल हो सकती हैं। सार्वभौम सत्ताओं में इन समस्याओं पर पूर्ण दृष्टिपात कठिन होता है। राष्ट्र धार्मिक बन्धन से स्वतंत्र होता है तथा पारस्परिक प्रेम की वृद्धि करता है। किन्तु यह सब होते हुए भी राष्ट्रीयता वास्तव में मानव के उन प्रयोगों में से एक हैं जो उसने अपने संगठन के लिये किये हैं।

राष्ट्रों के ऐश्वर्य पूर्ण शासक—राष्ट्रों की उत्पत्ति प्रायः राजाओं के अन्तगत हुई। ये राजा अपनी शक्ति में बृद्धि करते चले गये तथा अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि समझने लगे। फ्राँस के राजा चौदहवें लूई ने तो यहां तक कहा कि मैं ही राज्य हूं।" योरोप के अन्य राष्ट्रों में भी इस समय ऐश्वर्य पूर्ण शासक हुए। इन शासकों का उद्देश्य अपने राष्ट्र का धन, वैभव एवं शक्ति बढ़ाना था किन्तु इनकी धारणा यह थी कि राजा, राजसभा एवं सामन्तों के वैभव ही में राष्ट्र की उन्नति है। दूसरे राष्ट्रों पर अपने राष्ट्र का प्रभुत्व स्थापित करने में भी ये अपनी उन्नति समझते थे। इनकी इस प्रकार की नीति पूर्ण करने में अतुल धन राशि की आवश्यकता होती थी जो प्रजा पर कर लगाने ही से मिल सकती थी। परिणाम स्वरूप जनता पर जो भार पड़ता था वह धीरे-धीरे कठोर होता गया। विशेष कर इंग्लैण्ड

में व्यापारी, कलाकार तथा पेशेवर लोग तो इस प्रकार की स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध खड़े हो गये तथा अपने राजा से लड़ने लगे। राजा तथा प्रजा की यह लड़ाई पार्लियामेंट या व्यवस्थापिका सभा से आरंभ हुई जो आरंभ में तो एक सामन्तों की सभा थी तथा सामन्तगण इस सभा के द्वारा राजा पर नियंत्रण करते थे। कालान्तर में इस सभा में मध्य कक्षा—अर्थात् सामन्त प्रथा से स्वतंत्र व्यापारियों आदि की सामूहिकशक्ति-प्रबल हो गई जो राष्ट्रीय स्वतंत्रता के नाम पर राजा से लड़ गई तथा राजाशक्ति पार्लियामेंट को मिल गई। किन्तु इंग्लेण्ड के अतिरिक्त अन्य देशों में इस प्रकार की जागृति न हुई। प्रजा ऐश्वर्य पूर्ण शासकों द्वारा पिसती रही। विशेष रूप से फ्रांस में तो लगभग दो सौ वर्ष तक प्रजा की दशा दयनीय ही होती चली गई तथा अन्त में सन् १७८९ में प्रजा राजसत्ता के विरुद्ध संसार की सबसे बड़ी राज्य क्रान्ति आरंभ की। राष्ट्रों के ऐश्वर्य पूर्ण शासकों ने राष्ट्रों को संगठित करके एकता के सूत्र में बाँध दिया किन्तु उनकी स्वेच्छाचारिता ने उन्हें अप्रिय बना दिया। अब राष्ट्र प्रजातँत्र की ओर बढ़ने लगे। योरोप में फ्राँस ने नेतृत्व संभाला और धीरे-धीरे अन्य राष्ट्र भी स्वतंत्रता के पद पर अग्रसर हो गये।

प्रतिनिधित्व प्रजातंत्र—आधुनिक प्रजातंत्र यूनान तथा रोम के प्राचीन प्रजातंत्र से कई बातों में भिन्न है प्राचीन प्रजातंत्र छोटे-छोटे नगर राज्यों के योग्य था जहां सब नागरिक एक बड़े मैदान में एकत्र होकर शासन के नियम बना सकते थे और निर्वाचन कर सकते थे। किन्तु नवीन राष्ट्रों में जब संख्या कई करोड़ भी होती थी अतएव इस प्रकार प्रबन्ध संभव न था। अतएव इस युग में प्रतिनिधि प्रजातन्त्र का आविष्कार हुआ। इसके लिये आदर्श प्रतिनिधि सभा इंग्लण्ड की पार्लियामेंट थी। इस प्रकार के प्रजातंत्र में नागरिक केवल प्रतिनिधि चुनते हैं तथा प्रतिनिधि सभा नियम भी बनाती है और शासन के

इस प्रकार के प्रजातंत्र की स्थापना हो चुकी है। अन्य देशों में भी कई बार स्थिति बिगड़कर अन्तिम दशातक पहुंच चुकी है, इंग्लैण्ड में युद्ध के पश्चात् इन सिद्धान्तों के मानने वाले मजूदल को शासन शक्ति मिल गई है। जर्मनी, फ्राँस, इटली में १६१४-१८ वाले महायुद्ध के पश्चात् ही जनता का झुकाव इस ओर हो गया था किन्तु यह एक महान् परिवर्तन है अतएव बिना क्रान्ति के हो जाना असंभव है। इटली में इसके विरुद्ध पुकार उठी तथा इसके नितान्त विरुद्ध एक योजना बनाई गई जो "फासिज़्म" के नाम से प्रसिद्ध है तथा जिसका बाह्य रूप निष्ठुर तानाशाही है। फासिज्म का समस्त युक्तिवाद साम्यवाद के युक्तिवाद के विरुद्ध है किन्तु दोनों प्रकार के राज्य प्रबन्ध में सर्वोपरि तानाशाही ही होती है। साम्यवाद के अनुसार पूंजीपतियों के अन्त के पश्चात् पूंजी रहित लोगों का प्रजातन्त्र स्थापित हो जाना चाहिये किन्तु रूस में भी अब तक ऐसा नहीं हुआ है। संभव है भविष्य में ऐसा हो जावे। गत युद्ध में रूस ही एक ऐसा देश था जो जर्मनी के भयंकर आक्रमण से बच ही नहीं गया किन्तु उसको परास्त करने में सफल हुआ। अतएव संहार की दृष्टि में साम्यवाद का महत्व बढ़ गया है। पूंजीपति देश भी इस प्रकार की गौरवपूर्ण विजय के परिणाम को समझते हैं तथा रूस के विरुद्ध प्रगतिशील हैं। जनयुद्ध वास्तव में फासिज्म की पराजय तथा प्रजातन्त्र और साम्यवाद की विजय थी। आगामी युद्ध पूंजीवाद और साम्यवाद में होगा। यदि हम मनुष्य के अतिरिक्त अन्य सामाजिक जन्तुओं के समाज का निरीक्षण करें तो इस परिणाम पर जा पहुंचते हैं कि साम्यवाद ही समत्व की पराकाष्ठा है। साम्यवाद के अनेक सिद्धान्त सभी को मान्य हैं तथा आजकल के प्रमुख राजनीतिज्ञों के विचार में तो हम सभी साम्यवादी हैं, प्रश्न केवल यह है कि हम कितनी सीमा तक इन सिद्धान्तों को मानते हैं।

अध्याय ११

देश-काल से संघर्ष

क्षुद्र मानव—पृथ्वी का व्यास लगभग २५,००० मील है। अथवा यदि पृथ्वी पर पर्वत उपत्यका समतल-भूमि आदि ऊंचाई-नीचाई नहीं तो पृथ्वी की एक परिक्रमा में हमें २५,००० मील चलना पड़ेगा। मनुष्य की औसत लम्बाई छः फीट से कम है, उसका एक पग लगभग डेढ़ फीट होता है मनुष्य सरलता से बिना अधिक क्लान्त हुए बारह घंटे के दिवस में निरंतर चलकर छत्तीस मील की यात्रा कर सकता है किन्तु वह निरंतर चल नहीं सकता। पृथ्वी भी ऊंची-नीची हैं जिससे दूरी भी बढ़ जाती है तथा चलना-फिरना भी कठिन होता है चलने में ऊंचाई पर चढ़ना तथा उतरना दोनों ही कठिन हैं। यदि हम मानव की क्षुद्रता की तुलना ऊंचे पर्वतों, गहन बनों, कांटेदार झाड़ियों दुस्तर पथरीले भागों, रेतीले मैदानों, पादप विहीन ऊसरों से करें तो इस क्षुद्र कण-समान जीव की महान् आपत्तियों का किसी सीमा तक अनुमान कर सकते हैं। मनुष्य का जीवन-काल छोटा है तथा उसके सामने यात्रा की कठिनाइयां सदैव खड़ी रहती हैं। यदि आवश्यक यात्राओं के लिये उसे केवल अपने पैरों पर ही निर्भर रहना पड़े तो उसके जीवन का आवश्यक भाग तथा उसकी बहुत सी शक्ति इसी कार्य में समाप्त हो जाये। मनुष्य बुद्धि-जीवी है। हिरन को अपनी रक्षा के लिये तीव्रता से दौड़ने की आवश्यकता पड़ी तो उसकी विकासात्मक बुद्धि तथा अभ्यास ने उसकी टांगों में अद्भुत शक्ति उत्पन्न की शशक का मस्तिष्क चाहे अत्यन्त छोटा है किन्तु गति कितनी तीव्र है। ऊँट ने अपने में मरुस्थल की दुरुह यात्राओं के लिये लगभग सभी गुण उत्पन्न किये हैं। ऐसे उदाहरण अनेक हैं। किन्तु मनुष्य ने यात्राएँ सरल करने के लिये अपने शरीर का आश्रय नहीं लिया। उसने बुद्धि

बल से देश-काल पर विजय प्राप्त करने के लिये एक महान् संघर्ष उत्पन्न किया जिसमें पग-पग पर उसे सफलता मिलती रही।

यात्रा आरंभिक मानव के लिये आवश्यक ी नहीं स्वाभाविक थी। मानव विकसित हो रहा था तथा उसका पशुता से संघर्ष चल रहा था। मानव उस समय अनेक वन्य पशुओं में से एक था। उसका कोई घर नहीं था। उसे जीवन यात्रा में सफलता के लिये स्थानान्तरित होना आवश्यक था। अपने आखेट के पीछे-पीछे अनुमानतः वह नवीन स्थानों पर जा पहुँचता होगा तथा यदि वहां कुछ सुविधा देखता होगा तो पिछले स्थान पर लौटने की आवश्यकता ही क्या थी। इस े अतिरिक्त इतिहासातीतकाल में मानव-यात्राएं जलवायु परिवर्तन के कारण भी हुआ करतीं थीं। जिस प्रकार पशु-पक्षी ऋतु परिवर्तन के साथ-साथ विभिन्न स्थानों की यात्रा किया करते है उसी प्रकार मानव भी प्राचीन काल में शीत ऋतु में शीतल प्रदेशों से उष्ण प्रदेशों की ओर लौटते थे तथा ग्रीष्म में फिर पुराने स्थानों पर जा पहुँचते थे। यह यात्राएँ भौगोलिक कारणों से आवश्यक थीं। मानवों के समूह इस प्रकार से यात्रा करते-करते नवीन देशों में जा पहुँचते थे तथा नवीन वातावरण में प्रायः उनके जीवन में भी परिवर्तन हो जाते थे। एक पिछले अध्याय में मानव के उद्गम तथा विकास तथा जातियों के निर्माण के संबंध में इतिहासतीत काल की अनेक मानव-यात्राओं तथा विस्तार का ऊल्लेख किया गया है, ये यात्राएं शनैः शनैः नवीन निवासस्थानों खाद्यपदार्थों तथा उत्तम जलवायु की खोज में हुई थीं। मानव समूहों में जिन्हें अब जातियों के नाम से पुकारते हैं, सम्मिश्रण खूब हुआ है तथा यह भी प्राचीन यात्राओं का ही फल है। मंगोल जाति में किसी किसी व्यक्ति में आर्यों के सा रूप तथा आर्यों में मंगोल या नीग्रो जैसा रूप पाया जाना भी उन समूहों की प्राचीन यात्राओं का द्योतक है। मानव में जो नवीन खोज की आकाँक्षा है वह भी अनेक यात्राओं की जननी है।

भूमि यात्रा—नैसर्गिक रूप से भूमि ही सर्व प्रथम यात्रा का साधन है। मानव स्थल पशु है, तथा स्थल ही उसके विचरने का स्थान है, प्रथम भूमि पैदल यात्रा के लिए ही थी। आरंभ में मानव के पास भार वाहक पशु गाड़ियां या मोटर न थे। मानव यात्रा की अनेक आपत्तियों के कारण समूहों में यात्रा करते थे। इन यात्राओं में भूमि की सुगमता एक आवश्यक वस्तु थी। गहन वनों में, दुस्तर पथरीले मार्गों में, विशाल दलदलों में, दुःसह भूमि आदि में होकर यात्राएं दुर्लभ थीं। यात्राओं के लिए अच्छे मार्गों की खोज मानव का अत्यन्त प्राचीन कार्य रहा है। हम यह सरलता से समझ सकते है कि एशिया तथा योरोप के घास के मैदानों पर यात्रा की बड़ी सुगमता रही होगी। मध्य योरोप के पहाड़ों तथा उपत्यकाओं से ये मैदान कैस्पियन सागर को आवृत्त करते हुए मध्य एशिया में बड़े विस्तृत हो जाते हैं। इन्हीं मार्गों पर आर्यों की महान् यात्राओं से ले कर ऐतिहासिक काल में अनेक बड़ी बड़ी यात्राएं हुई हैं जिनका संक्षेप में पीछे उल्लेख किया गया है। हम इन यात्राओं की जानकारी प्राप्त करने पर सरलता से इतिहासातीत कालिक यात्राओं का अनुमान लगा सकते हैं। एशिया योरोप-अफ्रीका को मिलाने वाला दूसरा मार्ग उत्तरी अफ्रीका को शाम, तुर्की, फारस, आदि के द्वारा भारत तक विस्तृत था। यद्यपि यह मार्ग मध्य एशिया, के मैदानों के समान सरल नहीं है, फिर भी इसमें दुर्गम भूमिस्थल प्रायः नहीं है। पठारों के किनारे पर निरन्तर सरल मार्ग चला गया है। इतिहासातीत काल में भूमध्य सागर, जो उस समय सागर नहीं था किन्तु एक विस्तृत देश था, इसी मार्ग का एक भाग था। निःसन्देह सहारा मरुस्थल भी उस समय आजकल के जैसा शुष्क तथा दुर्गम नहीं था। अतएव मानव के लिये यह विस्तृत प्रदेश यात्रा के लिये अच्छा रहा होगा। इस मार्ग के द्वारा इतिहासातीत काल में जो मानव का विस्तार हुआ था उसका पीछे उल्लेख हो चुका है। इतिहा-

सातीत काल में द्राविड़ों का भारत में आगमन इसी मार्ग से हुआ। मिश्र, बेबीलोनिया तथा भारत की प्राचीन सभ्यता का सामंजस्य इसी सुगम मार्ग के कारण हुआ। पारस के आर्यसाम्राज्य का विस्तार, अलक्षेन्द्र की दिग्विजय एवं इस्लाम का सौ वर्षों के भीतर सिंध से लेकर स्पेन तक फैल जाना इसी मार्ग की सुगमता के कारण संभव हुए।

भूमियात्रा में सुगमता एवं सरलता का सबसे प्रथम प्रयास भारवाहक पशुओं का प्रयोग था। पशु-पालन का मुख्य उद्देश्य खाद्य सामग्री का प्रस्तुत रखना था। पशुओं के दुग्ध का प्रयोग भी पश्चात् की बात है। इसी प्रकार से पशुओं का प्रयोग भारवाहन तथा आरोहण के लिये करना भी सर्वप्रथम प्रयोग नहीं था। लगभग सभी बड़े पशु इन कार्यों के लिये उपयुक्त हो चुके है किन्तु अश्व यात्राओं के लिए अत्यन्त उपयोगी रहा है। यदि अश्व न होता तो चंगेज खाँ अपने जीवन-काल ही में समस्त योरोप तथा एशिया को न हिला देता। अमरीका के प्राचीन निवासी, जो अतीत से पैदल यात्रा करते रहे थे योरोप वालों के अश्व प्राप्त करने के पश्चात् सुदूरवर्ती कुटुम्बों पर आक्रमण करने में समर्थ होगये। एक प्रकार से वहाँ क्रान्ति खड़ी हो गई भारवाहक पशुओं के प्रयोग से अलग गाड़ियों का अविष्कार तथा विकास था। भारत में बैलगाड़ी रथ आदि का विकास ही चरम सीमा थी किन्तु योरोप में घोड़ा गाड़ी में बड़ी उन्नति हुई तथा अट्ठारहवीं शताब्दी में द्रुतगामी 'स्टेज कोच' का सर्वत्र प्रयोग था जो रेल के समान समय का पालन करते थे। भारत में अत्यन्त प्राचीन ग्रंथ अर्थशास्त्र में पक्की सड़कों के माप तथा निर्माण करने के ढंग का उल्लेख है। चीन, फारस, योरोप, मिश्र आदि में कृत्रिम मार्ग अर्थात् सड़कें बनाई जाती थीं। रोम राज्य की सड़कें सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। ऐतिहासिक काल में फाह्यान, ह्वेन्सांग, इबनबतूता, अलबरुनी, मार्कोपोलो

आदि प्रसिद्ध यात्रियों के वर्णन मिलते है। वास्तविक यात्रियों की संख्या इससे कहीं अधिक रही होगी।

भूमि यात्रा में रेल, मोटर आदि नवीन साधनों की उत्पत्ति का वर्णन आगे किया जायेगा।

जल यात्रा—यद्यपि मानव स्थल चर है किंतु जल मार्ग भी लग भग स्थल मार्ग के समान ही प्राचीन है। तैरना मनुष्य को सीखने से आता है फिर भी यह कला प्राचीनतम कलाओं में से एक है तथा अत्यन्त सरल एवं बोधगम्य है। जल पर तैरने में काष्ट खंडों की सहायता अत्यन्त प्राचीनकाल से ली जाती रही है तथा महान् वृक्षतनों के मध्यभाग को अग्नि या औजारों की सहायता से खोखला करके नौका प्रस्तुत करना इसी प्रयोग का अग्रिम विकास है। अनुन्नत जातियों की नौकाएँ इस समय भी ऐसी ही हैं। पशुचर्म में वायु भर कर काष्ठ खंड के समान प्रयोग करना भी एक प्राचीन कला है तथा ऐसे पशुचर्म पर लकड़ी के तख्तों के बने बजरे यात्राओं के लिये संसार में अनेक स्थानों में प्रयोग हुए हैं। समुद्र यात्रा से प्रथम मानव ने नदियों तथा छिछली खाड़ियों को पार करना सीखा। संसार में केवल थोड़े से ऐसे प्रदेश हैं जहां नौका चालन तथा नौका निर्माण का विकास होता रहा तथा अन्त में समुद्र पार करने योग्य पोतों का निर्माण हो सका। ऐसे समुद्रों तथा देशों के एक समूह को हम 'पोत-प्रदेश' (meitime province) कह सकते हैं। संसार के प्राचीन पोत प्रदेशों में से मुख्य मुख्य निम्नलिखित हैं:—

(१) पूर्वी भूमध्य सागर—जिसमें प्राचीन मिश्र, क्रीट, एवं यूनान सभ्यता के उदय के साथ नौचालन आरंभ हुआ। कार्थेज तथा रोम के निवासियों ने इस पोत-प्रदेश का विस्तार बढ़ाया। निःसन्देह समस्त भूमध्य सागर एक ही पोत प्रदेश हो गया। अनुमानतः इसकी सीमा ब्रिटेन तक तथा पश्चिमी अफ्रीका के उत्तरी तट तक बढ़ गई।

(२) बाल्टिक सागर, उत्तरी समुद्र, एवं समीपवर्ती उत्तरी एटलांटिक महासागर का भाग। इस प्रदेश में नौ-चालन की उन्नति भूमध्य सागर पोत-प्रदेश से बाद में हुई। डेन, नोर्स मैन, वाईकिंग, ब्रिटन आदि जातियों ने नौका निर्माण में बड़ी उन्नति की। उत्तरी एटलांटिक को पार करके सर्वप्रथम अमरीका में जा पहुँचने का इसी पोत-प्रदेश को श्रेय है।

कालान्तर में ये दोनों पोत-प्रदेश समुन्नत हो कर एक हो गये। यह योरोपीय पोत प्रदेश सर्वप्रथम इस योग्य हुआ कि संसार के बड़े से बड़े सागर को पार कर संसार को व्यापारिक तथा राजनैतिक सूत्र में बाँध सका।

(३) अरब सागर, फारस की खाड़ी, लाल सागर-इस पोत-प्रदेश की प्राचीनता के विषय में स्पष्ट प्रमाण न होते हुए भी अनुमानतः प्राचीन बेबीलोनिया तथा भारत की सभ्यता के समय ही से उसमें नौचालन आरंभ हुआ। फारस के आर्य साम्राज्य तथा फिर अरबों के उन्नति काल में इस पोत-प्रदेश की बड़ी उन्नति हुई। भारत के गुजरात, कोंण तथा मालावार के प्रान्त भी इस उन्नति में सम्मिलित थे।

(४) बंगाल की खाड़ी, मलाया के समीपवर्ती समुद्र, पूर्वी द्वीप समूह—इस पोत-प्रदेश की उन्नति का श्रेय भारत के दक्षिणी प्रायद्वीप के निवासी द्राविड़ों तथा आर्यों को है। अपने वैभव काल में यह पोत-प्रदेश भारत से जावा तक फैला हुआ था।

(५) चीनी पोत-प्रदेश—यह पोत प्रदेश भी अत्यन्त प्राचीन एवं समुन्नत था। अपने वैभव काल में दक्षिण में जावा से ले कर जापान तक फैला हुआ था।

(६) मावरी पोत प्रदेश—न्यूजीलैण्ड के आदिम निवासी मावरी नौ-चालन तथा निर्माण में किसी सीमा तक समुन्नत थे।

समुद्र से महान् संघर्ष—पहिले लिखा जा चुका है कि पूर्वी रोम राज्य पर कड़े आक्रमणों के पश्चात् १४५३ ई० में तुर्कों ने कुस्तुन्तुनिया को विजय किया। इससे प्रथम ही अलक्षेन्द्रिया तथा अन्य नगरों से यूनानी-विद्या के वेत्ता योरोप में फैल रहे थे। विद्या के इस पुनर्जन्म से योरोपीय पोत-प्रदेश को बड़ा उत्साह प्राप्त हुआ। ईसाई योरोप से भारत का जो व्यापार पहले स्थल तथा अरब सागर के जल मार्गों द्वारा होता था तुर्कों की धर्मान्धता तथा कुप्रबन्ध से प्रायः समाप्त सा हो हो गया। भारत के मसाले वस्त्र, तथा विलास के साधन योरोप पहुँचने बन्द हो गये। भारत को योरोप से स्वतंत्र जलमार्ग की प्रबल आवश्यकता थी। नवीन विद्या के प्रसार से—जिसमें मुद्रण यंत्र की बड़ी सहायता थी—यह विषय सब को ज्ञात हो गया कि पृथ्वी गोल है तथा समुद्री मार्ग से भारत एवं चीन आदि देशों में पहुँचना संभव है। पृथ्वी के विस्तार के संबन्ध में जो उलटी-सीधी धारणाएं थीं वे विलीन हो गईं। मार्को पोलो की इटली से चीन तक की विशद यात्राओं के तथ्य पूर्ण विवरण अब तक "करोड़ी गल्प" के नाम से प्रसिद्ध थे किन्तु नवीन ज्ञान के प्रसार के पश्चात् उनमें सत्य की स्पष्ट झलक देख पड़ने लगी। चुम्बकीय दिग्यंत्र या कुतुबनुमों का आविष्कार चीन में हुआ था और मुगलों द्वारा योरप पहुँचा था। इस यंत्र की योरोप में और उन्नति हुई तथा इसके द्वारा दिशा-ज्ञान में जो सुविधा हुई उससे नाविकों को प्रोत्साहन मिला दिग्यंत्र की महत्ता नवीन ज्ञान द्वारा सिद्ध हो गई। साथ ही साथ यूनानी विद्वानों का अक्षांश एवं देशान्तर के जानने का ढंग ऐसा अच्छा था कि नाविकों के हृदय से अनन्त समुद्र में खो जाने का भय निकल गया। दिग्यंत्र, ज्योतिष तथा गणित द्वारा वे भू-पटल पर अपनी स्थिति सदैव जान सकते थे और तट से दूर कितने ही दिनों तथा सप्ताहों तक रहने में कोई आपत्ति न देख पड़ती थी। इस प्रकार

योरोपीय पोत-प्रदेश नवीन-युग में समुद्र से सफल संघर्ष करने के लिये प्रस्तुत हो गया तथा भारत से उसे नित्य की आवश्यकता की वस्तुएँ लाने के लिये बाध्य होना पड़ा।

भारत के लिये स्वतंत्र जल-मार्ग की यह महान् खोज तेरहवीं शताब्दी के मध्य से आरंभ हो गई। यूनान, इटली आदि देश इस खोज को अच्छी दृष्टि से न देखते थे। इन देशों के व्यापारी भारत तथा योरोप के प्राचीन मार्गों से होने वाले व्यापार से लाभ उठाते थे। नवीन मार्गों की प्राप्ति से उन्हें बड़े संकटों की संभावना थी। इटली के व्यापारिक नगरों की समृद्धि तो मानो इस पर तुल गई थी। नवीन जल मार्ग की खोज में पश्चिमी योरोप के देशों का ही लाभ था। भू-मध्य सागरीय देशों के व्यापारी भारतीय वस्तुओं का मनमाना मूल्य इन देशवासियों से लेते थे। किन्तु इंग्लैण्ड, हालैण्ड फ्रांस आदि में इस समय नौचालन में उन्नति नहीं हुई थी। हालैण्ड तो इस समय पराधीन था। वास्तव में पुर्तगाल तथा स्पेन के निवासी इस विषय में बड़े उत्साही थे। इस प्रायद्वीप में ईसाई तथा मुसलमानों का महान् युद्ध होकर चुका था जो वास्तव में यहाँ एक स्वतंत्र युद्ध था। इस युद्ध की सफलता से जो उत्साह उत्पन्न हुआ वह भी इन देशों की आगामी सफलता का कारण हुआ।

इस नवीन प्रयास का भौगोलिक आधार बड़ा स्पष्ट था। भारत पूर्व में है। यदि अफ्रीका के पश्चिमी किनारे पर निरन्तर दक्षिण की ओर चलें तो अफ्रीका के दक्षिण से निकल कर अफ्रीका के पूर्वी किनारे पर पहुँच सकते हैं। फिर निरन्तर पू॰ की ओर—बस पहुँच गये भारत। दूसरे, यदि निरन्तर पश्चिम की ओर महान् सागर की हिलोरों में बढ़े चले जायें तो पृथ्वी गोल है, अतएव पहुंच जायेंगे मार्को पोलो द्वारा उल्लिखित शिपाँगु (जापान) तथा केथे (चीन) में। फिर भारत रह ही कितनी दूर जाता है। कितना सरल तथा स्पष्ट भौगोलिक विश्लेषण

है किन्तु धरातल का विस्तार पूर्णतया से न जानने के कारण, ये उत्साही नाविक इन महान् यात्राओं की कठिनाइयों को न समझ सके।

इटली के ख्यातनामा नाविक क्रिस्टोफर कोलम्बस के महाप्रयास की अमर कथा एक महाकाव्य के समान प्रसिद्ध है। उसके विशाल उत्साह द्वारा ही उसके मस्तिष्क में पश्चिमी जल मार्ग के द्वारा प्राच्य देशों में पहुँचने की लगभग विक्षिप्त योजना समा गई। जिन राजाओं के द्वार उसने खटखटाये, उनके कठोर उत्तर से भी उसका उत्साह मंद न हुआ। अन्त में स्पेन की रानी ने उसकी पुकार सुनी तथा तीन जहाज और मल्लाहों का कार्य करने के लिये कैदी दे दिए। कोलम्बस इन जहाजों को लेकर अपनी योजना पूर्ण करने के लिए चल पड़ा। इन में से एक भी जहाज सौ टन से ऊपर न था। दो मास तक निरन्तर सूर्यास्त की ओर नौचालन करते करते कोलम्बस तथा उसके नाविकों ने प्रथम भूमि समीप होने के चिन्ह देखे। वे लोग अमरीका के पूर्व में स्थित द्वीप समूह में पहुँचे तथा कोलम्बस ने इन द्वीपों को भारत के समीपवर्ती द्वीप समझा। अपने जीवन काल में यह प्रसिद्ध नाविक कई बार अमरीका पहुँचा किन्तु उसका यह भ्रम दूर न हुआ। अमरीका के पास के ये द्वीप अब भी पश्चिमी भारतीय द्वीप समूह कहलाते हैं तथा वहाँ के प्राचीन निवासी 'भारतीय' या 'लाल भारतीय' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

किन्तु कोलम्बस की असाधारण सफलता से पूर्व ही पुर्तगाल निवासी अफ्रीका के दक्षिण से होकर भारत के लिए जल मार्ग की खोज में थे। उनका यह प्रयास सन् १४४५ ई० से आरम्भ था तथा उनके नाविक अफ्रीका के पश्चिमी तट पर निरन्तर दक्षिण की ओर बढ़ रहे थे। अनेक विद्वानों की यह धारणा थी कि अफ्रीका दक्षिण में ध्रुव तक फैला हुआ है तथा इसके दक्षिण से किसी जल मार्ग की

सम्भावना नहीं है। वैज्ञानिक अन्वेषण से जहाँ अन्य प्रबल धारणाएं निर्मूल सिद्ध हुई हैं, वहाँ यह भी वृथा निकली। सन् १४८६ ई० में बारटोलोमियो डिआज ने अफ्रीका की दक्षिणी सीमा का अन्तरीप ढूँढ़ निकाला और उसका नाम उत्तमाशा अन्तरीप रख दिया क्योंकि भारत पहुंचने की अब पूरी आशा थी। डिआज के शिष्य वास्कोडीगामा ने सन् १४८८ ई० में अपने शिक्षक के मार्ग से यात्रा करके अरब नाविकों की सहायता से भारत तक की सफल यात्रा की। पुर्तगाली नाविक कुछ वर्षों ही में पूर्वी द्वीप समूह तक जा पहुँचे तथा अनेक व्यापारी कोठियाँ बना कर एशिया तथा योरोप के व्यापार की स्थापना में सफल हुए।

इस समय तक यह भेद खुल चुका था कि अमरीका, भारत तथा एशिया से पृथक् है। स्पेन तथा पुर्तगाल में नौचालन का अतीव उत्साह था। सन् १५२० तक संसार की सब से बड़ी जल यात्रा हुई। एक पुर्तगाल का नाविक मैगेलन जो इस समय स्पेन के शासक का कर्मचारी था पाँच जहाज तथा दो सौ अस्सी मल्लाहों के साथ जल यात्रा के लिए दक्षिणी अमरीका की ओर अग्रसर हुआ। इस महाद्वीप के दक्षिण में एक भयंकर जल संयोजक—जो अब मैगेलन जलसंयोजक कहलाता है—से अपने पोतों को निकाल कर मैगेलन प्रशांत महासागर में प्रविष्ट हुआ तथा फिर तीन मास से भी अधिक समय तक ये वीर नाविक बिना भूमि के दर्शन किये निरन्तर पश्चिम की ओर बढ़ते चले गये तथा अन्त में चीन के समीपवर्ती उस द्वीप समूह में पहुँचे जिसका नाम इन्होंने अपने राजा फिलिप के नाम पर फिलिपाइन रखा। यहाँ के आदिम निवासियों से इनका युद्ध हो गया जिसमें मैगेलन और अनेक नाविक मारे गये। चार पोत भी इनके हाथ से निकल गये। शेष नाविक एक पोत के द्वारा अफ्रीका के दक्षिण से होते हुए बड़ी लम्बी जल यात्रा करके स्पेन पहुँचे। लौटने वालों की

संख्या केवल एकतीस थी किन्तु संसार के इतिहास में सर्वप्रथम भू-प्रदक्षिणा करने वाले ये वीर सदा अमर हैं।

महासागरों के उस पार इन नवीन देशों की खोज का तात्पर्य व्यापार और धन का लाभ था। इस समय स्पेन तथा पुर्तगाल दो देश ही ऐसे थे जो इस कार्य में सफल थे। इन देशों के राजाओं ने धर्म गुरु पोप से यह निर्णय करा लिया था कि दक्षिणी अफ्रीका के थोड़े से पूर्वी भाग को छोड़कर समस्त अमरीका स्पेन वालों का था तथा संसार का शेष भाग पुर्तगाल वालों का था। यह मनमाना विभाग पश्चिमी योरोप के अन्य देशों को अनुचित जान पड़ा। संसार के व्यापार के स्वामी बन कर स्पेन तथा पुर्तगाल वाले धनी होते जा रहे थे। उत्तरी अमरीका में मेक्सिको देश में अज़टेक्स नामक सभ्य जाति निवास करती थी। इसी प्रकार दक्षिणी अमरीका में पेरू नामक देश में इन्का नाम की सभ्य जाति रहती थी। अमरीका महाद्वीपों के शेष भाग बर्बर मानव कबीलों से भरे पड़े थे। स्पेन वालों के पास कठोर धर्मान्धता के साथ साथ तोप बन्दूक भी थी। उन्होंने इन सभ्य मानवों का धन लूटने के लिए धर्म के नाम पर इन सभ्यताओं पर भयानक आक्रमण किए तथा इन्हें संसार से उठा दिया। इन सभ्य निवासियों के मन्दिरों, राजभवनों आदि से अतुल धन राशियाँ स्पेन को मिलीं जिसके बल पर एक शताब्दी के लिए योरोप में स्पेन का बोल बाला हो गया। किन्तु उस लाभ को देख कर पश्चिमी योरोप के इंगलैंड तथा हालैंड के निवासियों के मुँह में पानी भर आया। प्रथम तो इन देशों ने पुर्तगाल तथा स्पेन की सबल नौसेनाओं से भयभीत होकर भारत के लिए नवीन जल मार्गों की खोज निकालने का प्रयास किया। इस नवीन खोज का भौगोलिक आधार भी स्पष्ट था। अमरीका के उत्तर से निकल कर, या यूरेशिया के उत्तर से निकल कर पोत जापान तथा चीन पहुँच सकते हैं। निरंतर जल मार्ग इन दोनों

दिशाओं में संभव अवश्य है किन्तु हिमप्लावित उत्तरी महासागर में से उस समय के पोतों का निकालना प्राय: असम्भव था। फिर भी जिन नाविकों ने इन मार्गों की खोज में प्राण लगाए उनके प्रयत्न श्लाघनीय हैं। जब नवीन जल मार्गों की खोज में सफलता की आशा न रही तो इन देशों ने स्पेन तथा पुर्तगाल के पोतों को लूटना आरंभ किया। अंग्रेजी नौसेना के संस्थापक—जो सेना इस समय संसार में प्रबल सेनाओं में से है—समुद्री लुटेरे थे। इनके पोत अवश्य ही छोटे तथा द्रुतगामी थे और प्राचीन नौसेनाओं के बड़े पोतों से खूब लोहा ले सकते थे। सोलहवीं शताब्दी में यह लूटमार ऐसी प्रबल थी कि स्पेन के राजा फिलिप ने एक महान् बेड़ा—"अजेय नौसेना"—इंगलैण्ड को विजय करने के लिये भेजा किन्तु भाग्य और अंग्रेज नाविकों की कुशलता ने स्पेन के इस प्रयास को निष्फल कर दिया। अंग्रेज तथा डच नाविक अब व्यापार तथा लूट के लिए समस्त संसार में स्वच्छन्द हो गये। इन्होंने भी नवीन खोज की ओर ध्यान दिया। अंग्रेजी नाविक फ्रांसिस ड्रेक ने सफलता पूर्वक भू-प्रदक्षिणा की तथा अन्य नाविकों ने अनेक नवीन द्वीप खोज निकाले। सत्रहवीं शताब्दी में डच तथा अंग्रेज नाविक अमरीका और दक्षिणी एशिया में फैल गये तथा पूर्वी द्वीप समूह की खोज करते करते आस्ट्रेलिया तक जा पहुंचे। अट्ठारहवीं शताब्दी में इंगलैंड ने आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड पर अधिकार जमाया। इन दो शताब्दियों में ब्रिटिश तथा अन्य साम्राज्यों की उन्नति हुई। अंग्रेजों ने उत्तरी अमरीका में सुधारवादी तथा अंग्रेजों के राज्यों की स्थापना की जो अट्ठारहवीं शताब्दी में स्वतंत्र हो गये। किन्तु अनेक देशों और द्वीपों पर इनका अधिकार बना रहा। अमरीका के राज्यों की स्वतंत्रता से ब्रिटिश साम्राज्य में योरोपीय तथा अन्य जातीय देशों के साथ नीति में भेद किया गया। योरोपीय जिन देशों में रहने लगे उनको स्वतंत्रता देने में अद्भुत उदारता से काम

लिया गया किन्तु और देशों को परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ कर कुशलता पूर्वक लूटा गया। इस समय तक नौचालन क्रिया की बड़ी उन्नत हो चुकी थी तथा संसार पहले से कहीं छोटा हो गया था। महासागर अब यातायात में बाधक नहीं रह गया था प्रत्युत एक सरल मार्ग बन गया था।

वाष्पीय शक्ति के आविष्कार से भूमि पर रेल तथा समुद्र पर वाष्पीय पोत दौड़ने लगे जिनके विकास का विवरण अन्यत्र दिया जायेगा। विद्युत् के अन्वेषणों द्वारा मानव ने तार, टेलीफोन, रेडियो आदि को आविष्कृत करके किस प्रकार देश-काल पर पूर्ण विजय प्राप्त की, यह मनोरंजक विषय है जिसका थोड़ा उल्लेख आगे किया जायेगा। इनके अतिरिक्त मानव ने एक तीसरा मार्ग भी खोज निकाला है—वह है वायु मार्ग। यह संभव है कि भविष्य में मानव भूमि मार्ग तथा जल मार्ग को सर्वथा हेय समझ कर वायु मार्ग ही को अपनावे। वायुयानों के आविष्कार तथा उन्नति की गाथा भी आगे कही जावेगी।

अध्याय १२

क्रान्तियाँ तथा युग परिवर्तन

राज्यक्रान्ति—पोप तथा पवित्र रोम राज्य के पतन का मूल कारण राष्ट्रीयता का उदय था, यह पहले कहा जा चुका है। राष्ट्रीयता द्वारा मानव को कुछ स्वतंत्रता प्राप्त हुई किन्तु राजाओं का अत्याचार बढ़ गया। अट्ठारहवीं शताब्दी में जब इंग्लैण्ड के राजा जार्ज तृतीय ने अपने अमरीका में स्थित उपनिवेशों पर मनचाही करने का प्रयास किया तो वहाँ के निवासी अंग्रेजों ने जार्ज वाशिंगटन के नेतृत्व में इंग्लैण्ड से स्वतंत्रता युद्ध किया तथा स्वार्थवश फ्रांस के राजा ने उनकी सहायता की। अमरीका के उपनिवेश स्वतंत्र हो गये तथा इस समय यह देश संयुक्त राज्य के नाम से संसार का सर्वोपरि राष्ट्र है। फ्रांस के राजा को यह सहायता बड़ी मंहगी पड़ी। विजयी फ्रेंच सेना स्वातंत्र्य की भावना से परिपूर्ण थी, तथा दूसरी ओर फ्राँस के राजा का अत्याचार प्रबल था। कुछ ही वर्षों के पश्चात् फ्रांस में ऐसी प्रबल राज्यक्रान्ति खड़ी हुई कि पच्चीस वर्ष तक योरोप में युद्ध की अग्नि धधकती रही। इस महान् क्रान्ति ने मध्य युग के रहे सहे प्रभाव को निर्मूल करके योरोप में एक नवीन युग उपस्थित कर दिया। इस क्रान्ति के पश्चात् तो योरोप में फ्राँस के साथ क्रान्ति करने का समस्त देशों में एक फैशन सा हो गया। स्वतंत्रता की जो लहर फ्राँस की राज्यक्रान्ति से उठी थी वह उन्नीसवीं शताब्दी में निरन्तर बढ़ती

रही तथा योरोप के लगभग समस्त देश स्वतन्त्रता मार्ग पर प्रवृत्त हो गये ।

व्यवसायिक क्रान्ति—स्वतन्त्र शिल्पीगणों के स्थान पर सामूहिक शिल्प का सँगठन इतिहास में व्यवसायिक क्रांति के नाम से प्रसिद्ध है । स्वतन्त्र शिल्पी अपने गृह में अपने पुराने ढँग के यंत्रों द्वारा कार्य करता था तथा प्रायः उसके कुटुम्ब के लोग उसकी सहायता करते थे । हमारे देश में इस समय भी यही ढँग है । प्रत्येक ग्राम में एक शिल्पियों का छोटा सा समूह होता है । इसमें एक बढ़ई, एक जुलाहा, एक कुम्हार,एक लोहार आदि होते हैं तथा अन्य शिल्पी भी पाये जाते हैं । देश की आजकल की निर्धनता तथा विदेशी वस्तुओं के सरलता से मिल जाने के कारण, ये शिल्पी संख्या में भी कम हो गये हैं, निर्धन भी हैं तथा गुणग्राहकता की कमी से पहिले जैसे चतुर भी नहीं रहे है । अब से कई शताब्दी पहिले भारत के विशिष्ट प्राँत किसी विशेष प्रकार के शिल्प के लिये प्रसिद्ध थे । कहीं वस्त्र अच्छे थे,कहीं चाकू, छुरे, कहीं पीतल के बर्तन । चीन,योरोप तथा एशिया के अन्य भागों में भी यही दशा थी । ज्यों ज्यों यातायात के साधन उन्नति करते गये शिल्पी गणों द्वारा प्रस्तुत वस्तुओं की माँग बढ़ती गई तथा इन लोगों को अधिकाधिक वस्तुएं प्रस्तुत करनी पड़ीं । भारत में योरोपीय व्यापारियों के आगमन के पश्चात् यहाँ के वस्त्रों का निर्यात् कई गुना बढ़ गया । देश की बढ़ती हुई अराजकता के कारण इन विदेशी व्यापारियों ने अपनी कोठियों के समीप जुलाहों को बढ़ा लिया तथा प्रायः निश्चित वेतन पर उनसे कार्य कराया । ये स्थान 'फेक्टरी' या कोठी कहलाते थे । भारत के उत्तम कपड़े का योरोपीय देशों में प्रसार हुआ । इस वस्त्र को योरोपीय व्यापारी भारत से चाहे सस्ता ले लें योरोप में बड़े मूल्य पर बेचते थे । भारत में योरोपीय व्यापारी प्रायः अंग्रेज होते थे तथा यहाँ के व्यापार से जो समृद्धि इंगलैण्ड को प्राप्त हो रही थी उस से

उस जाति में बड़ा उत्साह था। व्यापार ही नहीं अराजकता पूर्ण एवं देश प्रेम से सर्वथा रहित सीधा भारत योरोपीय लोगों की कूटनीति का शिकार होकर उनकी राजनैतिक सत्ता के आधीन होता जा रहा था। इंगलैण्ड में भारतीय व्यापारी अँग्रेज अपने धन-वैभव के कारण 'नवाब' के नाम से प्रसिद्ध थे तथा सर्वसाधारण की ईर्षा के पात्र थे। इंगलैण्ड-निवासी भी भारत की भांति वस्त्र निर्माण करके, धनी होना चाहते थे। अतएव कपड़े के निर्माण करने में वे नवीन साधनों के अविष्कार की ओर ध्यान दे रहे थे। अनेक विद्वानों का विचार है कि यदि इंगलैण्ड को भारत के व्यापार तथा राज्य से समृद्धि तथा प्रोत्साहन न मिलता तो ये नवीन आविष्कार एवं आविष्कारक नष्ट हो जाते।

नवीन आविष्कारों के प्रचार से पूर्व इंगलैण्ड में भारत की भांति शिल्पी गणों के सामूहिक रूप से किसी सामन्त अथवा धनिक के वेतन भोगी के रूप में कार्य करने की प्रथा का प्रचार हुआ। यही व्यवसायिक क्रान्ति का सूत्रपात था। शिल्पी या श्रमजीवियों को अपना गृह तथा स्वतन्त्रता का त्याग करके किसी 'फेक्टरी' में कार्य करने जाना पड़ता था। जो फेक्टरी-स्वामी श्रमजीवियों से अधिक समय तक कार्य ले ले तथा कम वेतन देवे वही अधिक लाभ उठा कर धनी हो सकता था। इन कारखानों के पास निवास करने की कितनी ही कठिनाइयाँ श्रमजीवियों को उठानी पड़ती थीं एवं श्रमजीवियों का जीवन दुःखमय तथा स्वास्थ्य के लिये हानिकर था। पूँजीपति नित्य इस खोज में रहते थे कि यँत्रों में क्या नवीन परिवर्तन किया जाये कि कार्य न्यूनातिन्यून व्यय से चले, चाहे श्रमजीवियों को इस से कठिनाई हो, चाहे उनका वेतन कम हो जावे तथा चाहे उन्नत यँत्रों से उनकी जीविका भी संकटापन्न हो जावे। अविष्कारकों की चाँदी थी क्योंकि पूँजीपति उनके संरक्षक थे। श्रमजीवियों के लिये नवीन आविष्कारक शत्रु के

समान थे तथा ऐसी घटनाएं प्रायः होती थीं कि श्रमजीवी किसी आविष्कारक तथा उसके आविष्कार को नष्ट करने का प्रयास करें।

यह स्वभाविक ही था कि सर्वप्रथम आविष्कार वस्त्र-निर्माण-कला में हो। साधारण चर्खे के स्थान पर हारग्रीव ने सन् १७६६ में एक ऐसा चर्खा निर्माण किया जिस पर एक धागे के स्थान पर तीस धागे तक सरलता से काते जा सकते थे तथा केवल दो या तीन मनुष्य ही इस चर्खे को चलाने के लिये पर्याप्त थे। कुछ व र्ष पश्चात् आर्कराइट नामक आविष्कारक ने सूत कातने का ऐसा यंत्र निर्माण किया कि जो जलप्रपात या वायु की शक्ति से चल सकता था तथा यह सूत प्रस्तुत कर सकता था, सूत कातने की क्रिया में इतनी उन्नति होते ही, कार्टराइट नामक आविष्कारक ने शक्ति से चलने योग्य वस्त्र बुनने का करघा निर्माण किया। नवीन करघों तथा चर्खों की पक्तियाँ शक्ति द्वारा चलती थीं तथा थोड़े से मनुष्य उन्हें चलाने तथा देख भाल के लिये पर्याप्त थे। श्रमजीवियों को इन दोनों आविष्कारों से भारी धक्का लगा।

अब तक इन नवीन यंत्रों के संचालन में प्राकृतिक रूप से बहते हुए जल या वायु की शक्ति ही काम में आती थी। शक्ति का उत्पादन तथा नियन्त्रण इस क्रान्ति का अन्तिम भाग था। सर्वप्रथम वाष्पीय शक्ति की ओर ध्यान दिया गया। यह पहले लिखा जा चुका है कि वाष्प की शक्ति का प्रयोग चीन तथा यूनान में आविष्कृत हो चुका था। किन्तु इस प्राचीन काल के वाष्पीय यंत्र खिलौनों के समान थे। यूनान की विद्या के पुनः प्रसार के पश्चात इस प्राचीन अविष्कार का ज्ञान योरोपीय-निवासियों को हो गया। सत्तरहवीं शताब्दी के अन्त में यूनानी वैज्ञानिकों के इस आविष्कार को उन्नत एवं उपयोगी बनाने का प्रयास फ्राँस के वैज्ञानिक पेविन तथा इंगलैण्ड के निवासी सेवरी ने किया। इनके बनाये एंजिन अपूर्ण एवं धीरे से चलने वाले थे। इस

विषय में किसी सीमा तक सफल प्रयत्न सन् १७०९ ई० में इंगलैण्ड के एक लोहार न्यूकमेन ने किया। इसने एक पानी खींचने वाला एंजिन प्रस्तुत किया जो कोयले की खानों से जल बाहर फेंकने के कार्य में प्रयुक्त होने लगा। जेम्स वाट जो वाष्पीय एंजिन का आविष्कारक कहलाता है वास्तव में न्यूकमेन के इंजन का सुधारक था। इसने उस एंजिन की न्यूनता पहचान ली तथा उसे दूर करके वाष्पीय एंजिन को इस योग्य बनाया (१७७८ में) कि वह पानी ही बाहर न फेंक सके प्रत्युत और कार्यों में भी उसकी शक्ति प्रयुक्त की जा सके। कपड़े के मिलों में यह शक्ति सस्ती पड़ती थी तथा जल और वायु की शक्ति से प्रबल थी। एक एंजिन सैंकड़ों श्रमजीवियों का कार्य कर सकता था।

वाष्पीय शक्ति तथा यातायात—जेम्सवाट का वाष्पीय एंजिन अनेक कार्य कर सकता था। सन् १८०९ ई० में सीमिंग्टन ने ऐसा एंजिन एक नौका में लगाया। इस एंजिन द्वारा नौका में लगा हुआ जलपहिया चलता था तथा नौका स्वयं ही नहीं चलती थी किन्तु पीछे बंधे बजरों की पंक्ति को भी ले जा सकती थी। इसके पश्चात् फुल्टन नामक अमरीकन ने कितनी ही सफल वाष्पीय नौकाएं बनाईं तथा अटलांटिक महासागर को पार करने वाला प्रथम पोत भी अमरीका ही में निर्माण किया गया था। आरम्भिक पोतों में तथा आधुनिक पोतों की बनावट में बड़ा अन्तर है जो धीरे धीरे अनेक अनुभवों एवं आविष्कारों का फल है। कोलम्बस का पोत सौ टन से भी कम था किंतु आधुनिक डाक ले जाने वाले पोत १९,००० टन के होते हैं।

यातायात के साधनों में रेल का स्थान मुख्य है। आधुनिक व्यापार रेल तथा वाष्पीय पोतों पर निर्भर है। संसार में समुन्नत देशों की समृद्धि का कारण अनेक स्थानों पर रेल ही है। वाष्पीय एंजिन से चलने वाली रेल में प्रथम मनुष्य तथा घोड़े की रेल का आविष्कार हुआ था। कोयले की खानों में भारवाहन के लिये लकड़ी या धातु की

बनी रेल पटरियों पर चलने वाले ठेलों में कम शक्ति लगती थी। घोड़ों द्वारा खींची जाने वाली रेल गाड़ियों का प्रयोग भी मिलों एवं खानों में होता था। वाष्पीय एंजिन का प्रयोग कई स्थानों पर रेल-पटरी पर चलने वाले ठेलों को खींचने के लिये भी होता था तथा इस कार्य के लिये लम्बी लम्बी जंज़ीरें प्रयुक्त होती थीं। स्वयं चालित (Locomotive) एंजिन का आविष्कार होना अगला पग था। ऐसे एंजिन का आविष्कारक स्टेफेन्सन था जो एक खान में एक जंजीरों द्वारा ठेले खींचने वाले एंजिन की देखभाल करता था। उसने सन् १८१४ ई० में प्रथम स्वयं चालित एंजिन निर्माण किया जो कोयले से भरे ठेले खींचता था। इस प्रकार के एंजिन भारवाहन के लिये अनेक स्थानों पर प्रयुक्त होने लगे। फिर १८२५ ई० में यात्रियों के लिये प्रथम रेल बनाई जो इंगलैण्ड के दो छोटे छोटे नगरों को मिलाती थी। प्रथम बड़ी रेल इंग्लैण्ड के दो बड़े नगरों—लिवर पुल तथा मैन्चैस्टर— के बीच बनाई गई सत्तर मील लम्बी थी। इस रेल के लिये स्टेफेन्सन द्वारा निर्मित स्वयं चालित एंजिन ही सर्वोत्तम प्रमाणित हुआ, यातायात का यह नवीन साधन—रेलवे इतना सर्वप्रिय तथा उपयोगी रहा कि केवल इंग्लैण्ड में ही आविष्कार के पश्चात दस वर्षों के भीतर दो सौ पचास रेल कम्पनियाँ निर्मित हुईं। संसार के अनेक भागों में रेलें बनीं तथा स्टेफेन्सन का नाम अमर हो गया।

रेल, कपड़े बुनने आदि के यंत्र एवं अनेक प्रकार के अन्य यंत्रों से व्यवसायिक क्रान्ति लगभग सम्पूर्ण हो जाती है। यंत्र-एवं शक्ति-निर्माण के बल पर स्वतंत्र कारीगर को परतंत्र श्रमजीवी हो जाना, अल्प वेतन पर उनका न्यून जीवन साधनों द्वारा, नगरों के गंदे भागों या दुखों (solms) में जीवन व्यतीत करना, धनी का और धनी होना तथा निर्धन का और भी निर्धन होना, उपयोगी वस्तुओं का प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत होना, समस्त संसार का व्यापार-सूत्र में बंध जाना आदि

इस महाक्रान्ति के विशेष युग हैं। नव पाषाण युग से—जब कृषि कला मानव के हाथ पड़ गई थी—इस क्रान्ति के समय तक मानव के रहन-सहन में कोई विशेष परिवर्तन न हुआ था। इस काल में व्यवसायिक तथा सामाजिक जीवन में विप्लवकारी परिवर्तन हुए। भारत में यह क्रान्ति अभी पूर्ण नहीं हो पायी है।

बौद्धिक क्रान्ति—व्यवसायिक क्रान्ति वास्तव में इतना बड़ा विप्लव था कि संसार के विद्वानों के हृदय में उथल पुथल मचा देवे। जर्मन विद्वान् कार्ल मार्क्स (जन्म सन् १८१८ ई०) का सिद्धांत वास्तव में व्यवसायिक क्रान्ति का ही फल है। इस क्रान्ति के फल स्वरूप श्रमजीवी, छोटे जमींदार, छोटे किसान अर्थात् समस्त छोटी स्थिति वाले मानव एक बड़े संकट में फंस गये। बड़े मिलों में तथा बड़े कृषि-क्षेत्रों में कार्य सस्ता हो सकता है अतएव छोटे पूंजीपति नष्ट होते चले गये। श्रमजीवियों के लिये तो मानो दासता का युग प्रारम्भ हो गया। रेलों तथा वाष्पीय यानों से सुदरवर्ती देशों का सस्ता माल या अन्न दूसरे देशों में पहुँच कर वहाँ विचित्र प्रकार के आर्थिक संकट उपस्थित कर देता था, इंग्लैण्ड में कनाडा तथा संयुक्त राज्यों के सस्ते अन्न ने एक अन्न संकट समुपस्थित कर दिया। इन संकटों के अतिरिक्त व्यवसायिक क्रान्ति ने व्यवसायिक देशों में साम्राज्य निर्माण की उत्कट इच्छा उत्पन्न कर दी। अठारहवीं शताब्दी में योरोप के अनेक राजनीतिज्ञों की सम्मति में समुद्र पार देशों में व्यापार या राज्य करना ठीक नहीं माना जाता था, किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में योरोपीय देशों के शासकों में साम्राज्य निर्माण की दौड़ सी लग गई। कारण स्पष्ट था कि नवीन मिलों का माल बेचने के लिए ग्राहक देशों की आवश्यकता थी तथा मिलों की कच्चे माल की मांग पूरी करनी थी। जिन देशों को इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दास बनाया जाता था उनकी व्यवसायिक उन्नति

को रोक दिया जाता था तथा वहां यदि पहले व्यवसाय उन्नत दशा में था तो उसे मिलों में बने सस्ते माल से नष्ट करना बड़ा आवश्यक था। इस प्रकार व्यवसायिक क्रान्ति ने "साम्राज्यवाद" को उत्पन्न किया जो इस समय संसार की सबसे बड़ी समस्या है तथा महान् युद्धों एवं अशान्ति का मूल कारण है।

व्यवसायिक क्रान्ति द्वारा अर्थशास्त्र के अध्ययन तथा निर्माण की प्रगति हुई। सामाजिक शास्त्रों में यह नवीन शास्त्र था तथा इससे आर्थिक प्रगति तथा उसके नियमों एवं परिणामों पर विचार होता था। यह एक सामाजिक शास्त्र था किन्तु इसके शास्त्रियों ने वैज्ञानिक निष्ठुरता से इसके कठोर नियमों का प्रतिपादन किया जो वैज्ञानिक रूप से कुछ-कुछ पूँजी-पतियों के अनुकूल पड़ते हैं। कितने ही विद्वानों ने इस शास्त्र का बड़ा विरोध किया। इंग्लैंड के लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यिक जॉन रस्किन ने इस शास्त्र को "अन्धकारमय विज्ञान" कह कर इसकी अवहेलना की। कार्ल मार्क्स का साम्यवाद भी इसी शास्त्र एवं व्यवसायिक क्रान्ति के हेय परिणामों के विरुद्ध एक अमर विधान है।

साम्यवाद का उल्लेख पहले किया जा चुका है। मार्क्स इस मत का जन्मदाता था। उसका दृढ़ विचार था कि पूंजीवाद का परिणाम यही हो सकता है कि सम्पत्ति गिने चुने बड़े पूँजीपतियों के अधिकार में चली जायगी तथा जनता केवल धनरहित श्रमजीवी और कृषकों के रूप में उनके ऊपर सर्वथा निर्भर हो जावेगी। ज्यों-ज्यों व्यवसायिक क्रान्ति अग्रसर होगी जनता की दशा दयनीय होती चली जायेगी। अन्त में जनता को अपनी दशा सुधारने का एक मात्र साधन यही रह जायेगा कि वह पूँजी-पतियों का सर्वस्व छीन कर व्यवसायों एं कृषि पर सामूहिक रूप से अधिकार कर ले। यह स्पष्ट है कि पूँजी-पति स्वेच्छा से अपनी पूँजी नहीं त्याग देंगे अतएव जनता

को इस के लिये विप्लव करने के लिये बाध्य होना पड़ेगा। मार्क्स कहता है कि विप्लव को पूर्ण रूप से सफल बनाने के लिये तथा पूँजीवाद का समूल नाश करने के लिये यह आवश्यक होगा कि श्रमजीवी तथा खेतीहर अपनी तानाशाही निर्माण करें और बलपूर्वक अपने उद्देश्यों में सफल होवें। पूँजी तथा पूँजीवाद को मिटाने के पश्चात् समस्त पूँजी जनता में वितरण कर दी जायेगी किन्तु वास्तव में समस्त पूँजी जनता की पंचायतों की देख रेख में रहेगी। जैसे सरकार जजों पुलिस वालों, सैनिकों, डाक वालों आदि को वेतन देकर कार्य कराती है, इसी प्रकार मार्क्स के विधान में सरकार इन कार्यों के अतिरिक्त मिलों, खानों कृषि आदि सभी की, स्वामिनी होगी तथा जनता का प्रत्येक व्यक्ति सरकार से आवश्यक तथा उपयोगी जीवन सामग्री पाकर, सरकार के प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा करेगा। जब पूँजी का सर्वथा नाश हो जायेगा तो जनता प्रजातंत्र निर्माण करेगी तथा पूँजी के नष्ट करने के लिये जो तानाशाही बनाई गई थी उसकी आवश्यकता नहीं रहेगी। मार्क्स का सिद्धान्त साम्यवाद (Communism) कहलाता है। इस मत के अनेक मतान्तर बने हैं जिनमें सर्व प्रसिद्ध समाजवाद (Soeialism) । समाजवादी मार्क्स द्वारा प्रतिपादित विप्लव की आवश्यकता नहीं मानते। उनके विचार में पूँजी-पतियों का नाश शान्तिमय साधनों द्वारा भी संभव है। साम्यवाद के मूल में जो विचार-धारा है उसका और चित्र सभी स्वीकार करते हैं अर्थात् किसी सीमा तक अब हम सभी समाजवादी हैं।

बौद्धिक क्रान्ति का महान् अंग विकासवाद की पुष्टि तथा उसकी सर्वमान्यता है। संसार एवं मानव की उत्पत्ति तथा उसकी सामाजिक, राजनैतिक एवं वैज्ञानिक उन्नति के विषय में विकासवाद से पहले विचित्र धारणाएँ थीं। विकासवाद ने इन विषयों को युक्तियुक्त एवं सल बना दिया तथा विकास समस्त विज्ञान एवं सामाजिक शास्त्रों

का आधार हो गया। हम एक पहले अध्याय में विकासवाद का विवेचन कर चुके हैं तथा उसके अमर अन्वेषक डार्विन पर भी प्रकाश डाल चुके हैं। वास्तविक स्थिति यह है कि विकास के आधार पर विचार करना तथा लिखना—चाहे विषय कोई भी हो—एक ऐसी ही वैज्ञानिक स्थिति है जैसे श्वास प्रश्वास।

सामाजिक क्रान्ति—जहाँ व्यवसायिक क्रान्ति ने मानव को 'अर्थस्य मनुजो दासो' के सिद्धान्त के अनुसार पशुत्व की ओर धकेलने का प्रयास किया, वहाँ उसकी तात्कालिक हीनता का अनुभव करके अनेक सुधारक तथा मानव प्रेमी उत्पन्न हुये जिन्होंने संसार में सर्व प्रथम मानव में मानवता का आरोप किया तथा मानवता के लिये एक उच्चादर्श की स्थापना की। प्रत्येक मानव समान रूप से सांसारिक सुख एवं उन्नति का अधिकारी है—यह सिद्धान्त समाजवाद के मूल में है दलित मानव समुदायों का उद्धार मानवता के प्रति एक आवश्यक वस्तु है। मानव-समाज का प्रत्येक प्राणी आदरणीय है तथा किसी भी व्यक्ति या समुदाय के साथ अमानुषिक व्यवहार मानव-समाज का अपमान है। यदि उन्नीसवीं शताब्दी की इस विचारधारा तथा इसके कार्य रूप परिणत करने के प्रयास की तुलना इसके पहले के समाज से करें, तो कह सकते हैं कि समाज विषयक नवीन विचार अवश्य ही क्रान्तिकारक हैं।

मानव का मानव को दास बनाना एक बड़ी प्राचीन प्रथा है। मेगस्थनीज के भारत पदार्पण करने के समय भारत में यह प्रथा न थी किन्तु जाति भेद के बल पर पंचम वर्ण पर जो छाप प्राचीन काल ही से लगी है वह दासता के समान है इस अत्याचार के विरुद्ध भारत में वारम्बार पुकार उठाई गई है। दासता के अपराध से ईसाई मत तथा इस्लाम भी नहीं बचे हैं। किन्तु जिस प्रकार की दासता अमरीका के स्वतंत्र राज्यों में पिछली शताब्दी तक प्रचलित थी उसका दूसरा

उदाहरण इतिहास में नहीं है। अफ्रीका से निर्दोष हब्शियों को वन्य पशुओं की भांति पकड़ कर अमरीका के नव-निवासियों गोरों को कृषि में सहायता देने के लिये बेच दिया जाता था। ये दास तथा उनकी सन्तानें चाहे योरोपीय गोरों द्वारा ही उत्पन्न क्यों न हों सदा दास ही रहते थे तथा पशुओं की भाँति बेच दिए जाते थे। उनके साथ पशुओं से भी जघन्य व्यवहार होता था। इन दासों की करुण कहानी 'टाम काका की कुटिया, नामक पुस्तक में अमर हो गई है। व्यवसायिक क्रान्ति ने इस हेय प्रथा को बड़ा प्रोत्साहन दिया। अमरीका में रूई सरलता से उत्पन्न हो सकती थी तथा योरोपीय मिलें इस रूई के अच्छे दाम दे सकती थीं। इस क्रान्ति से पहले संयुक्त राज्यों में दासों की संख्या सात लाख थी किन्तु इसके पश्चात् इनकी संख्या चालीस लाख हो गई। किन्तु बौद्धिक क्रान्ति के साथ २ लोग इस प्रथा को बुरी समझने लगे। विलियम विलवरफोर्स नामक अंग्रेज़ ने इस दूषित प्रथा के विरुद्ध इंग्लैण्ड में आन्दोलन खड़ा किया जिसके फल स्वरूप ब्रिटिश साम्राज्य की यह प्रथा सन् १८२४ में उठा दी गई तथा अनेक योरोपीय देशों ने इस निर्णय का अनुकरण किया। किन्तु अमरीका में यह प्रथा अब भी पूर्ववत् चलती रही। दक्षिणी राज्य इसे अपनी समृद्धि का मूल कारण समझते थे क्योंकि रूई की उपज इन्हीं राज्यों में होती थी। जब संसार मानवता को प्रत्येक मानव में आरोप करना चाहता था तो इन राज्यों का हठ एक प्रकार से व्यर्थ ही था। सन् १८६० ई० में संयुक्त राज्यों का प्रधान अब्राहम लिंकन हुआ जो सभ्य मानव की भांति इस मानवता के कलंक को धो डालना अपना कर्त्तव्य समझता था। यह पूर्ण रूप से जानते हुए कि दासता को मिटाने में गृहयुद्ध अवश्य होगा, उसने साहस न छोड़ा तथा एक नियम बनाकर दासता को कानून के विरुद्ध ठहराया और समस्त दासों को मुक्त कर दिया। दक्षिणी राज्यों ने नवीन नियम के

विरोध में केन्द्रीय सरकार से युद्ध किया परन्तु पराजित होकर दासता से हाथ धोना पड़ा। यद्यपि दास नियमानुसार स्वतन्त्र हो गये किन्तु अमरीका में हब्शियों के साथ इस समय भी बड़ा असभ्यता पूर्ण व्यवहार होता है।

लिंकन का नाम इतिहास में अमर है यद्यपि उसका उद्देश्य पूर्ण नहीं हो पाया है। लग-भग ऐसा ही पुण्य कार्य इंग्लैण्ड में एलिजाबेथ फ्राई ने आरम्भ किया। इस महिला का लक्ष्य कारागारों में बन्दी मानवों की अवस्था सुधारना था। उस काल में कारावास जीवन अत्यन्त भयानक था। वहाँ वन्दियों के स्वास्थ्य, भोजन, स्वच्छता विश्राम तथा उनके सुधार की ओर कभी ध्यान भी न दिया जाता था। फ्राई के विचार में कारावालों का उद्देश्य अपराधियों की दशा तथा मनोवृत्ति का सुधार होना चाहिये था, केवल दंड नहीं। अतएव उन्हें रुग्ण तथा मलीन रखना वृथा ही नहीं असभ्य है। वे मानव हैं, केवल अपराधी हो गये हैं। फिर से मानव बनाये जा सकते हैं। उन्हें मानव की भाँति जीवन व्यतीत करने की शिक्षा होनी आवश्यक है। फ्राई के आन्दोलन से केवल इंग्लैण्ड ही में नहीं किन्तु संसार भर में कारावासियों की दशा सुधारना ही कारावास का उद्देश्य माना गया तथा उसके विचारों को बहुत सीधे तक कार्यान्वित किया गया। कारावास से बुरी दशा मिलों में कार्य करने वाले बालकों की थी। व्यवसायिक क्रांति का यह अनुमानतः सबसे दुःखद परिणाम था। पूंजीपति धन लोलुपता में मिलों की देख भाल तथा उनके चलाने के लिये कम वेतन पर छोटे-छोटे बच्चों से कार्य लेते थे। आकार में छोटे होने के कारण वे बच्चे ऐसे स्थानों पर भी कार्य कर सकते थे जहां पूर्ण मनुष्य घुस नहीं सकता। कार्य अधिकतर दुस्तर एवं कष्टदायक होता था तथा काम करने का समय कभी-कभी सोलह घण्टे प्रति दिन था। बालकों द्वारा धनिकों के गृहों की धुएं निकालने वाली चिमनियाँ भी

साफ कराई जाती थीं । यह बड़ा निर्दय तथा कठोर कार्य था। इंग्लैंड के स्वनाम धन्य लार्ड शेफ्टन बरी (Lord shaftenbury) ने इन अत्याचारों के विरुद्ध जीवन भर आन्दोलन किया। उसके इस प्रशंसनीय कार्य से बच्चों के कष्ट कम हो गये। उसने व्यवसायिक क्रान्ति इन छोटे पीड़ितों के सुधार के लिये विद्यालय खोले और उनकी जीवन यात्रा सुखमय तथा सफल बनाने के लिये अनेक साधन प्रस्तुत किये।

विकासवाद की सर्वमान्यता ने मानव-मात्र को वह सिखाया कि संसार के सभी मानव—छोटे–बड़े श्वेत-काले, धनी-रंक आदि एक ही प्रकार के मानव-समाज हैं तथा भेद-भाव कृत्रिम ही नहीं अवैज्ञानिक है। इस सिद्धान्त ने मानव-समाज में युगान्तर उपस्थित करने वाली उथल-पुथल मचा दी है। मानव समस्त संसार का एक मानव-समाज बनाकर मानवता की ओर अग्रसर है। महात्मा गांधी लिखते हैं— "किसी भी मानव की अवहेलना करते समय हम उन सब ईश्वरीय शक्तियों की अवहेलना करते हैं जो हमारे में हैं। सामाजिक उन्नति का जो चरम आदर्श है वह इस वाक्य में कितनी सुन्दरता से स्पष्ट किया गया है।

युगान्तर लाने वाली प्रगति-आविष्कार--व्यवसायिक क्रांति के साथ साथ वैज्ञानिक उन्नति होती रही। विज्ञान समुन्नत होकर ऐसी अवस्था को पहुँच गया था कि प्रकृति के गहन से गहन भेद खुलते जा रहे थे। सृष्टि का मूल स्वरूप विद्युत्चुम्बकीय कण तथा लहरें हैं एवं जब वैज्ञानिकों ने विद्युत् का आविष्कार करके उसके धर्म का पता लगाना आरंभ किया तो प्रकृति के मूल तत्व का अन्वेषण होने लगा। इस अन्वेषण के आरंभ करने वाले वैज्ञानिक डेवी, फैरेडे, तथा फ्रांक लिन थे। विद्युत् के साधारण धर्म का ज्ञान होते ही मोर्स ने तार का आविष्कार किया जिससे समाचार भेजना इतना सरल तथा शीघ्र हो

गया कि संसार का आकार ही मानो न्यून हो गया हो। तार भूमि पर ही नहीं, समुद्र में भी डाले गये और समस्त संसार में विद्युत् द्वारा समाचार भेजना सम्भव हो गया। किन्तु विद्युत् के विषय में निरन्तर प्रयोग होते रहे। ग्राहम बेल नामक वैज्ञानिक ने टेलीफ़ोन का आविष्कार किया जिसके द्वारा मीलों दूर बैठे हुए किसी व्यक्ति से वार्तालाप संभव हुआ। ख्यातनामा वैज्ञानिक एडीसन फ़ौन को इस योग्य बनाया कि सारे संसार में उसका प्रयोग सरल हो गया। इस वैज्ञानिक ने अनेक उपयोगी आविष्कार किये हैं। विद्युत् का प्रयोग प्रकाश के लिये बहुत कम होता था क्योंकि विद्युत् का प्रकाश अत्यन्त प्रखर होता था तथा खतरे से खाली नहीं था। एडीसन ने विद्युत् के ऐसे वाहक को खोज निकाला कि विद्युत् द्वारा साधारण प्रकाश वाले बल्ब प्रस्तुत हो गये। उसने विद्युत् के उचित वाहन के लिए समुन्नत यंत्र बनाये तथा विद्युत् मापक यंत्र भी आविष्कृत किये। इस प्रकार विद्युत् जन साधारण के प्रयोग की वस्तु हो गई। एडीसन ने अपने जीवन-काल में १, ३०० उपयोगी-आविष्कार किये। इनमें से कुछ सर्व प्रसिद्ध हैं। फोनोग्राफ का आविष्कार इसी वैज्ञानिक की संसार को देन है। इस यंत्र के द्वारा संगीत, व्याख्यान आदि को सुरक्षित करके जब चाहें सुन सकते हैं। किनेटो स्कोप नामक प्रसिद्ध यंत्र भी इसी ने निर्माण किया जिससे सिनेमा संभव हुआ तथा किनेटोफोन बनाकर इसने सशब्द सिनेमा की नींवें रखीं। प्रथम संसार युद्ध (१९१४-१८) में इसने एक ऐसा यंत्र बनाया जिसके द्वारा समुद्री पोत घातक तारपीडों को बहुत दूर से अनुभव कर सकते थे। एडीसन अपने युगांतर समुपस्थित करने वाले आविष्कारों के कारण जादूगर के नाम से प्रसिद्ध था। परन्तु वैज्ञानिकों को इससे भी संतोष नहीं था। वे ज्ञान की खोज के लिए अतृप्त जिज्ञासा रखते हैं। विद्युत् के अन्वेषण में उन्होंने प्रथम तो वायु में प्लावित विद्युत्लहरों का पता लगाया तथा फिर

स्वतंत्र आकाश में रहने वाली विद्युत्चुम्बकीय लहरों का ज्ञान प्राप्त किया जिनका विवरण हम अन्यत्र दे चुके हैं। इन्हीं लहरों के आधार पर इटली के स्वनामधन्य वैज्ञानिक मारकोनी ने बेतार के तार तथा रेडियो का आविष्कार किया। इसी पंक्ति में जो अन्य बड़े उपयोगी आविष्कार हो रहे हैं उनका अन्यत्र उल्लेख किया गया है।

युगान्तर लाने वाली प्रगति-वायुयान:—बीसवीं शताब्दी के सर्वोच्च आविष्कारों में से एक वायुयान का निर्माण एवं उसकी उन्नति है। इस आविष्कार का आधार तेल-एंजिन का निर्माण था। इस प्रकार के एंजिन में अन्तर्धूम(internal Combustion)से शक्ति उत्पन्न होती है अर्थात् पेट्रोल एंजिन के भीतर जल कर शक्ति-गैस में परिवर्तित होती है। ऐसा एंजिन किसी व्यक्ति विशेष द्वारा आविष्कृत नहीं हुआ किन्तु अनेक व्यक्तियों ने इसे समुन्नत किया है। सन् १८६० ई० में फ्रांस के इन्जीनियर लैन्से ने अपने से पूर्व हुये आविष्कारों के आधार पर एक इस प्रकार का एंजिन प्रस्तुत किया, किन्तु उपयोगी एंजिन का निर्माण डेमलर नामक जर्मन ने सन् १८८६ ई० में किया। जर्मनी तथा फ्राँस में इसके पश्चात् मोटर का प्रयोग साधारण रूप से होने लगा। वायुयान का आविष्कार इन्हीं एंजिनों के द्वारा संभव हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य ही से वायु में उड़ने के लिये प्लावकों (gliders) का प्रयोग हुआ जिनमें योरोपीय तथा अमरीकन दोनों ही का हाथ था। लिलि अन्थल नामक जर्मन तो प्लावक उड़ान में बड़ा सफल था। प्लावक बिना एंजि के वायुयान होते थे। अमरीका के राइट भ्राताओं (Wright brothers) ने बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अत्यन्त सफल प्लावक प्रस्तुत किये जिनमें किसी उच्च स्थान से उड़ान आरंभ करके लगभग एक फर्लांग तक उड़ सकते थे। सन् १९०३ ई० में इन आविष्कारों ने प्लावकों में अन्तर्धूम एंजिन लगाये तथा प्रथम वायुयान निर्मित हो गये। वायुयान में बड़ी तीव्रता

से उन्नति हो गई। सन् १९०८ ई० तक ऐसे वायुयान बन गये थे जो चौबीस मील तक उड़े चले जाते थे। प्रथम संसार युद्ध (१९१४-१८) में अनेक वायुयान सैकड़ों मील तक उड़े तथा वायु में भी बहुत ऊँचे चले गये। इस युद्ध में इनका प्रयोग बम वर्षा के लिये तो बहुत थोड़ा होता था। अधिकतर शत्रु सैन्य निरीक्षण के लिये ही ये उपयोगी थे। युद्ध के पश्चात् वायुयान में इतनी उन्नति हुई कि एक प्रकार से युगान्तर समुपस्थित हो गया। सन् १९१९ ई० में केवल साढ़े छत्तीस घन्टों में वायुयान द्वारा अटलांटिक पार किया गया तथा सन् १९२६ ई० में बर्ड नामक अमरीकी नाविक वायुयान द्वारा उत्तरी ध्रुव की यात्रा करने तथा परावर्तन में सफल हुआ। सन् १९३३ ई० में दो वायुयान संसार के सर्वोच्च पर्वत-शिखर गौरीशंकर (एवरेस्ट) के ऊपर से उड़े। इसी बीच में बड़े-बड़े वायुयानों का निर्माण करने में सफलता हुई तथा इनका प्रयोग मानव के विनाश के लिये चीन, हबश तथा स्पेन के युद्धों में निरीह जनता के ऊपर बम डालने में किया गया। गत महायुद्ध में वायुयानों द्वारा इतना विनाश किया गया कि भय है कि आगामी युद्धों में मानव सभ्यता ही नष्ट न हो जावे। कुछ हो वायु मार्ग अब भूमि मार्ग एवं जल मार्ग का समकक्ष हो गया है तथा संभव है कि इनसे अधिक उपयोगी होकर इनका सर्वथा स्थान ग्रहण कर ले।

युगान्तर लाने वाली प्रगति-परमाणु-शक्ति:—हमने अत्यन्त परमाणु के विश्लेषण का उल्लेख किया है तथा परमाणु-खंडन और उसके मूल तत्वों के परीक्षण में साइक्लोट्रन नामक यंत्र की उपयोगिता का विवरण भी दिया है। पदार्थ के रासायनिक अन्वेषणों में वह सर्वोच्च है। गत महायुद्ध (१९३९-४५) में शत्रु के विनाश के लिए नात्सी जर्मनी के वैज्ञानिकों ने इस अन्वेषण में बड़ा परिश्रम किया तथा वे परमाणु परिवर्तन में सफल हुए। यदि वे कुछ दिन

और स्वतंत्रता पूर्वक कार्य कर सकते तो परमाणु-बम द्वारा अवश्य ही विजयी होते, किन्तु उनके शत्रुओं ने समय पर पता लगा कर उनके प्रयास को निष्फल कर दिया तथा जर्मनी से भागे हुए वैज्ञानिकों की सहायता से स्वयं परमाणु-बम प्रस्तुत किया जिससे जर्मनी की पराजय के पश्चात् जापान को आत्मसमर्पण करना पड़ा। पहले लिखा जा चुका है कि परमाणु-परिवर्तन में महाशक्ति की उत्पत्ति होती है जो सापेक्षवाद के अनुसार पदार्थ का शक्ति में परिवर्तन है। परमाणु-परिवर्तन की शक्ति को पूर्ण रूप से हस्तगत करके मानव की वाष्प विद्युत् एवं तैलीय शक्ति अत्यन्त क्षुद्र जान पड़ेगी एवं इस समय तक के ये महान् आविष्कार बालकों के खिलौने प्रतीत होंगे। परमाणु-शक्ति का प्रयोग एवं अन्वेषण इस समय मानव के विनाश में केन्द्री भूत है। इस प्रलयकारिणी शक्ति का नियंत्रण मानव के भावी अस्तित्व के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इस शक्ति का प्रयोग समस्त मानव समाज के हाथ होना चाहिये। वर्तमान युग के स्वनामधन्य वैज्ञानिक तथा लेखक—एन्साटाइन एवं वैल्स—मानव को चेतावनी दे चुके हैं कि अन्य प्राचीन जीवधारियों के समान मानव भी अब ऐसी स्थिति में पहुँच गया है कि उसको आगामी जीवन के लिये नवीन वातावरण के अनुकूल बनाने की आवश्यकता है। उसके हाथ में परमाणु-शक्ति है जो एक ऐसा खिलौना है कि खेलने वाले का विनाश कर सकता है। यह भयानक खेल समझ कर खेलने की आवश्यकता है अन्यथा 'काचे-घट जिमि' इस पृथ्वी का नाश समीप है। वैल्स तो यहाँ तक कह गया कि मानव में बुद्धि का विकास इतना नहीं हो पाया है कि वह नवीन खिलौने से समझदारी के साथ खेल सके अतएव मानव का विनाश निकट भविष्य में अवश्यम्भावी है। वैज्ञानिक उन्नति की प्रखरता तथा बौद्धिक उन्नति की शिथिलता इस भावी दुर्घटना के मुख्य कारण होंगे। हम प्रकृति की मूल शक्तियों को हस्तगत करते जा रहे है किंतु

अभी तक स्वार्थ-भावना, विलासिता, एवं लोभ लिप्सा को पकड़े बैठे हैं तथा राष्ट्रीय दंभाचरण के पुष्ट पोषक हैं। ऐसी दशा में वैल्स की निराशापूर्ण भविष्यवाणी कम से कम अनैसर्गिक नहीं है।

युगान्तर लाने वाली प्रगति-अहिंसात्मक युद्धः—व्यवसायिक क्रान्ति, साम्राज्यवाद, एवं वैज्ञानिक अन्वेषण ने मानव को जिस भयंकर परिस्थिति में डाल दिया है उससे निकलने की आशा संसार के अनेक विद्वानों के मन में केवल दुराशा मात्र है। विकास के इतिहास में हमने देखा है कि संसार से जो अनेक प्राणी सदा के लिए उठ चुके हैं उनके सामने बचने के उपाय भी प्रस्तुत थे तथा यदि वे बुद्धि से काम लेते तो बच सकते थे। वे अपने रक्षा के यत्न इस लिए नहीं कर सके कि वे समय पर उचित मार्ग अवलम्बन न कर सके। यही स्थिति मानव की है। भारत में उत्पन्न विश्वविभूति महात्मा गाँधी ने मानव को इस निराशात्मक परिस्थिति में भी एक मात्र आशा किरण दिखलाई है। बापू का सन्देश है—अहिंसा, जिसके द्वारा निर्मित आत्मबल के समक्ष बड़े से बड़ा अस्त्र-शस्त्र, भी वृथा है। यह केवल सन्देश ही नहीं है किन्तु परीक्षा किया हुआ सफल सिद्धान्त है। भारतवासी सबल एवं सशस्त्र साम्राज्य-वाद के शिकार होते हुए भी स्वराज्य के समीप पहुंच गये हैं तथा अहिंसा मार्ग के अवलंबन से जो जागृति उत्पन्न हुई है उसका दूसरा उदाहरण संसार में नहीं है। मानव चाहे तो एक दुःसह परिस्थिति से निकल कर अपनी रक्षा के लिए अनुमानतः अन्तिम प्रयत्न कर सकता है तथा संसार में एक नवीन युग—'अहिंसा युग' आरंभ हो सकता है।

प्रकृति मानव संघर्ष मानव के लिये बड़ा सफल संघर्ष रहा है। अपनी इस सफलता के कारण मानव इस समय एक विचित्र स्थिति में जा पहुँचा है। जीवन तत्व के विकास में मानव जैसा बुद्धिजीवी पशु एक नवीन वस्तु है तथा जिन परिस्थितियों में यह जीव अपने

उत्पत्ति काल से पड़ता रहा है वे विचित्र ही रही हैं मानव की मानव-रूप में आयु लगभग ४०, ००० वर्ष है। यद्यपि व्यक्ति के लिये यह काल बहुत बड़ा जान पड़ता है, किन्तु जाति के लिए न्यून ही है। मानव की विशेषता जहाँ बुद्धि में है, वहाँ उसकी सदा अतृप्त रहने वाली जिज्ञासा भी उसकी महती विशेषता है। उसकी उन्नति का मौलिक कारण जिज्ञासा ही है। मानव को मानव बना रहने के लिए अपनी जिज्ञासात्मक प्रवृत्ति की निरन्तर रक्षा करनी चाहिये। व्यक्तिमात्र में जो जिज्ञासा होती है उसकी रक्षा व्यक्तिगत स्वतंत्रता से ही हो सकती है। चाहे हम उचित गठन के लिए स्वयं को कितने भी बंधनों एवं नियमों में जकड़ लें, हमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सदैव पुष्टि करनी चाहिये। प्रत्येक नवीन नियम और विधान की जाँच के लिए यह सर्वोत्तम कसौटी है।

—:o:—

अध्याय १३

मानव का भविष्य

प्रत्येक काल में उस समय की परिस्थिति के अनुसार विद्वानों ने संसार का भविष्य चित्रित करने का प्रयास किया है। भारत में 'भूत' भविष्य एवं वर्तमान का एकीकरण कल्प की कल्पना करके किया गया था। इस शृंखला के अनुसार कल्प एक सहस्र चतुर्युग, सतयुग त्रेता युग, द्वापर युग, कलियुग—के प्रामाणिक काल के समान है। कलियुग का समय ४,३२,००० वर्ष है तथा शेष युग इसके दूने, तिगुने तथा चौगुने हैं। कल्प के प्रारम्भ में सृष्टि बनती है तथा अन्त में प्रलय होती है। इस प्रकार एक कल्प के पूर्ण हो जाने के पश्चात् दूसरा कल्प आरम्भ हो जाता है तथा यह प्रवाह अनादि है। बाइबिल में ईसा की अनेक भविष्य वाणियाँ हैं तथा इस्लाम में भी भविष्य का पर्याप्त उल्लेख पाया जाता है। जैनी विद्वानों के मतानुसार आधुनिक काल पंचम काल है तथा छठे युग में प्रलय अवश्यम्भावी है।

वैज्ञानिक एवं आधुनिक लेखक भी भविष्यवाणी करने से चूके नहीं हैं। उनकी भविष्यवाणियाँ युक्तियों पर निर्भर होती हैं। विकासवाद की सर्वमान्यता के पश्चात् से तो विभिन्न दृष्टिकोणों से अनेक भविष्यवाणियाँ हुई हैं। विकास के मध्य काल में रहने वाले विशालकाय जीवों के निरीक्षण से अनेक विकासवादियों की यह धारणा बनी है कि स्तनपायी जन्तु संसार में अभी नये हैं तथा अपने

पूर्ण आकार तक विकसित नहीं हो पाये हैं। अतएव भविष्य में मानव भी विशालकाय हो जायेंगे यद्यपि ऐसा लाखों वर्षों में हो सकेगा। यह भविष्यद्वाक्य कोरी प्रवंचना नहीं है। अन्वेषण करके देखा गया है कि योरोप तथा अमरीका में मानव के शिर का आकार सूक्ष्म रूप से बढ़ गया है। अब से सहस्र वर्ष पहले के समय के लौह शिर-त्राण(helmets) आज कल प्रायः सभी के लिये छोटे हैं, तथा प्राचीन खोपड़ियाँ भी माप में छोटी उतरी हैं। इस से यह सिद्ध होता है कि मानव विशालकाय बनने की ओर अग्रसर है। जब कुछ सहस्र वर्षों में ज्ञातव्य वृद्धि हो चुकी है तो इस सरलता से अनुमान कर सकते हैं कि अगले लाखों वर्षों में हम किस प्रकार के हो जायेंगे। एक ओर भविष्यवाणी अमरीका के प्रसिद्ध विद्वान् लूकास ने की है। वह कहता है कि ऐसा विश्वास करने के प्रमाण हैं कि उत्तरी गोलार्ध हिमयुग के समीप हो तथा शनैः शनैः किन्तु निष्ठुरता पूर्वक हिम सम्राट् की सेनायें मानव से उसकी पैतृक सम्पत्ति हरण करने के लिये प्रस्तुत की जा रही हैं। धीरे धीरे ये सेनायें एकत्रित की जा रही हैं तथा ये मानव का इसी प्रकार विनाश करेंगी जैसे पहले इन्होंने महागज-आदि विशाल काय जीवों को मिटा दिया था।.........कौन कह सकता है कि अब से एक लाख वर्ष पश्चात् जब कि पृथ्वी फिर से आजकल की सी दशा में आ जायगी तो उत्तर की ओर बढ़ती हुई कोई महामानवों की जाति एक समय न्यूयार्क नगरवासियों की चाल ढाल का अन्वेषण कर रही होगी जो महामानवों की दृष्टि में हेय तथा निर्बुद्धि ही प्रतीत होंगे।" न्यूयार्क के स्थान में दिल्ली ही समझ लेंगे तो भी एक ही बात है। व्यवसायिक क्रान्ति के पश्चात् पूंजीपति एवं श्रम-जीवियों में जो भेद बढ़ता जा रहा था उसको दृष्टि में रखते हुए एक प्रतिष्ठित लेखक ने यह भविष्यवाणी की कि भविष्य में मानव जाति पूंजीपति एवं श्रमजीवी नामक दो जातियों में विभक्त हो जायेगी

जिन के शरीरावयवों में बड़ा भेद पड़ जायेगा। भविष्य की एक और झलक इस प्रकार दिखलाई गई है कि शरीर विज्ञान की उन्नति के साथ साथ मानव अपने शरीर के व्यर्थ एवं हानिकर अवयवों का ज्ञान प्राप्त कर लेगा तथा यह प्रथा चलेगी कि ऐसे अवयवों को शल्य द्वारा शरीर में से काट कर फेंक दिया जाये। इस प्रकार मानव शरीर रोगरहित और स्वस्थ रहेगा। मानव के सामाजिक नियमों में भावी परिवर्तन होने के विषय में अनेक भविष्यवाणियाँ की गई हैं। भविष्य में साम्यवाद, प्रजातंत्र, आदि के होने के विषय में पूर्ण सम्भावना बताई जाती है तथा यहाँ तक कहा गया है कि भविष्य में हत्या तथा आत्महत्या नियमानुकूल उचित मानी जायेगी।

लब्धप्रतिष्ठ क्रान्तिकारी लेखक बर्नार्डशा ने एक नाटक में मानव के भविष्य का पूर्ण चित्र खींचा है। सृष्टयात्मक विकास के सिद्धान्तों के अनुसार मानव की भावी आयु लगभग तीन सौ वर्ष हो जायेगी तथा मानव दो प्रकार के होंगे—१ सूक्ष्मायु २ दीर्घायु। दीर्घायु मानव बुद्धि विज्ञान एवं संगठन में इतना प्रगतिशील होगा कि वह शीघ्र सूक्ष्मायु मानव का विनाश करेगा तथा अगले तीस सहस्र वर्षों में लगभग एक सहस्र वर्ष की आयु की प्राप्ति करेगा। उसकी वैज्ञानिक उन्नति इतनी महान् होगी कि वह समस्त जीवों का विनाश करेगा तथा चाहे तो अपने जैसा मानव भी कृत्रिम रूप से बना लेगा। किन्तु यह उन्नत मानव अपने बौद्धिक विकास के कारण आज के से मानव जीवन को तुच्छ समझेगा तथा दार्शनिकों की भांति गणित एवं दर्शन के गहन तत्वों पर विचार करने के लिये शताब्दियों तक बनों एवं पर्वतों पर विचरण करता होगा तथा अन्त में किसी आकस्मिक घटना से मृत्यु को प्राप्त होगा।

इस प्रकार मानव के भविष्य पर लाखों भविष्यवाणियाँ की गई हैं। वास्तविक स्थिति यह है कि मानव की सर्वांग उन्नति हो रही है

तथा निश्चयात्मक रूप से इस विचित्र जीवधारी की आगामी स्थिति के विषय में कुछ भी नहीं कह सकता। लेखक एक और भविष्यवाणी करना आवश्यक नहीं समझता। इस पुस्तक में अन्यत्र कहा जा चुका है कि मानव समाज सामाजिकवाद की ओर जा रहा है तथा किसी सीमा तक मानवमात्र समाजवादी हो चुका है। दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि मानव के चकित जीवन को परिमित करते हुए हम समाज या राज्य द्वारा कार्य करना उचित समझते हैं। इसके मूल में दो कारण हैं। एक तो यह कि मानव जाति की प्रस्तुत सम्भावनाएँ इतनी जटिल हैं कि व्यक्ति उनको हल करने में असमर्थ है तथा दूसरे, सामूहिक रूप से हमारे कार्य अच्छी प्रकार सम्पन्न हो सकते हैं। बर्नार्डशा के एक नवीनतम लेख में साम्यवाद की अनिवार्यता पर बड़ा बल दिया गया है। वह कहता है—"सब सभ्यताओं की मूलभित्ति, साम्यवाद है। यदि हम सामाजिक सड़कों, पुलिस, सैन्य, न्यायालयों, आग बुझाने के एंजिनों, जल-नलों, बीथी-प्रकाशों समुद्र तटीय प्रकाश स्तम्भों, डाकखानों, विशाल बांधों आदि को उठा दें तो थोड़े अमरीका के आदिम निवासियों एवं कुछ चीनियों के अतिरिक्त कोई भी जीवित न रहेगा। हम सब जन्म से प्रकृति के दास हैं एवं हमारे भाग्य में परिश्रम करना या मृत्यु ही है। हम जिस सीमा तक साम्यवादी हो सकेंगे हमें उतना ही विश्राम के लिये मिल जायेगा और यही हमारा स्वतंत्र समय है।······ हम यह कहते रहते हैं कि हम जन्माधिकार से स्वतंत्र हैं। रूसी ने इससे पक्का झूठ कभी नहीं बोला।" साम्यवाद की युक्ति में यह कथन कितना बलपूर्ण है एवं वास्तविक स्थिति भी ऐसी ही आ बनी है कि हम साम्यवाद से बच नहीं सकते। इस परिस्थिति में हमें यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि हम साम्यवाद की ओर अग्रसर होने में कहीं व्यक्तिगत स्वातंत्र्य का सर्वथा गला न घोंट दें। यदि हम मानव को

परिश्रम करने के लिये बाध्य करें तथा अन्य रूप से भी उनकी स्वतंत्रता छीन कर समाज को सौंप दें फिर भी हमें उसे विचार स्वातन्त्र्य अवश्य ही देना चाहिये क्योंकि यही उसकी उन्नति का साधन और आधार है। जिन देशों में तानाशाही राज्य प्रबन्ध से व्यक्ति के विचारों पर प्रतिबन्ध लगाया गया है वहाँ विद्या तथा विज्ञान की इतनी अवनति हुई है कि वे अन्य देशों से पीछे रह गये। प्रत्येक व्यक्ति को बिना सोचे दूसरों के विचार नहीं स्वीकार करने चाहिये परन्तु स्वयं प्रत्येक समस्या पर विचार करना चाहिये। इसका यह अर्थ नहीं कि हमें विद्वानों या महापुरुषों के विचारों की अवहेलना करनी चाहिये परन्तु हमें निपट अन्ध के समान उनका अनुयायी नहीं हो जाना चाहिये। साथ ही साथ हमें— चाहे हम कितने ही बड़े हों— अपने विचारों एवं धारणाओं को इतना अच्छा नहीं समझना चाहिये कि हम बलपूर्वक उन्हें दूसरों के ऊपर थोप दें तथा उन्हें अपने विचार निर्भीकता पूर्वक प्रकाशित भी न करने दें। हम भविष्य में कोई भी संगठन अपने लिये प्रस्तुत करें हमें इस बात का पूरा विचार रखना चाहिये कि व्यक्ति के विचार स्वातंत्र्य पर अनुचित धाराएं न लग सकें। हमारी इस समय तक की एवं आगामी उन्नति की यह आधारशिला है।

— इति —